

१११

दादा जिनदलधरि अष्टम शताब्दी महोत्सव  
स्वागतकारिणी समिति अजमेर

वितरकः—श्री-जिनदलधरि सेवा मूष  
२२ ई-मारवाडी बाजार  
मन्वई २

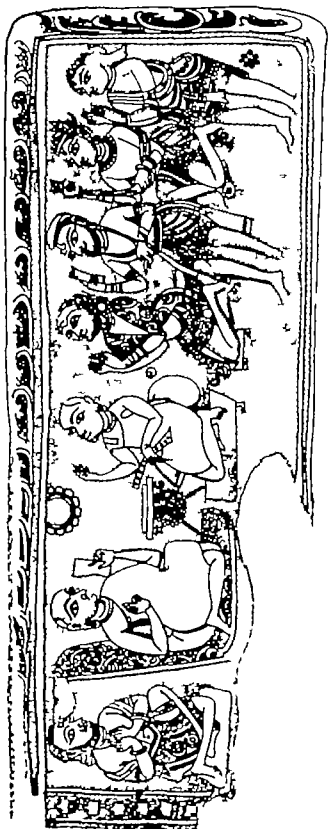
वि स २०१६

मूल्य  
३)

ई स १९५६

\*





# समर्पण

नानाशास्त्रविचक्षणो विधिपथप्रोद्धारका देशिकः,  
गच्छस्वच्छविशाससस्वरतरप्रद्योतको नैष्ठिकः ।  
भव्याम्भोजविवोधनैकतरणिः दादाभिध सूरिराट्,  
योगीन्द्रो जि न द क्ष सू रिरभवच्चारित्र्यचूडामणि ॥  
वैत्याश्रासि-गजेन्द्र-दर्प-दक्षने शार्दूलविष्कीर्णितं,  
यस्तेने जिनशासनोदितिकृते यत्नं च भागीरथम् ।  
यो धा श्रीजिनवक्त्रभस्य सुगुरो पट्टाभिषिक्तो मुनि,  
लोकानुग्रहतत्परो विजयतेऽसौ लोकत्रयो गुरुः ॥  
शताब्दीसम्महे चास्मिन्नष्टमे श्रीगुरोरिदम् ।  
भक्त्या समर्पितं श्यामासूनुना विनयेन तु ॥



# भूमिका

संवत् २०११ में युगप्रधान भार्वाच्य प्रबन्धी शिव दत्तसूरी जी के स्वर्गवास हुए ८० वर्ष पूरे हो रहे थे, इस उपलक्ष्य में उनका अष्टम शताब्दी महोत्सव मनाये जानेका विचार कई महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों का हुआ पर कई असुविधाओं के कारण यह महत्वपूर्ण कार्य इस समय सम्पन्न नहीं हो सका। तब उसे २०१२ के आषाढ शुक्ला ११ को मनाना तय किया गया और इस प्रसंग पर श्री जिन दत्तसूरी जी का एक स्मारक ग्रन्थ भी प्रकाशित करने का सोचा गया। पर इतने कम समय में इस शिराश मन्त्र की सामग्री जुटाकर प्रकाशित करना सम्भव न हो सका। इधर हमारी इच्छा थी कि अष्टम शताब्दी महोत्सव केवल भूमिगत रूप में ही मनाया न जाकर उसमें कुछ स्थायी महत्त्व का ठोस काम भी हो जिससे शताब्दियों तक इसकी यादगार बनी रहे, एक अभाव की पूर्ति हो और जनता को ज्ञानपरक व सामग्र्य उपयोगी एवं महत्वपूर्ण अभ्ययन सामग्री मिले। इसलिए मैंने यह सुझाव रखा कि इस प्रसंग पर श्री जिन दत्तसूरी जी के सम्बन्ध में एक अभ्ययन पूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो और साथ ही सरतरगण्ड का इतिहास भी प्रकाशित किया जाय। सरतरगण्ड इतिहास की सामग्री गत २५ वर्षों से हम संग्रह कर ही रहे थे। उसका पूर्ण उपयोग तो इतने समय में किया जाना सम्भव नहीं था पर सिलसिलेवार कुछ इतिहास प्रकाशित हो जाय तो भी एक स्थायी काम होगा। इस काम के सम्पादन व प्रकाशन के लिए महोपाध्याय बिनयसगर जी से मैंने अनुरोध किया और अपने संग्रह की आधारक सामग्री उन्हें हस्त भेज दी। उन्होंने भी बड़ी तत्परता से काम आरम्भ किया पर बीच में अस्वस्थ हो जाने से स्वयं अपेक्षित समय एवं धन नहीं दे सके। इधर महोत्सव अत्यन्त सन्निकट था। इसलिए उन्होंने जिन दत्तसूरी संबंधी अभ्ययन पूर्ण ग्रन्थ जो प्रो० स्वामी सुरजनदास जी से लिखवाया और सरतरगण्ड के इतिहास का काम भी अपनी देख रेख में ग्रन्थ सहायक जुटाकर जैसे जैसे पूरा कर दिया। महोत्सव के समय वे सुरजनदास जी के लिखित ग्रन्थ की समग्र प्रतियाँ और सरतर इतिहास की भी २०० प्रतियाँ लेकर अजमेर प्यारे पर कुछ विरोध करवाया तो सरतरगण्ड का इतिहास अब तक प्रकाशित न हो सका था। बिना विमर्षान्तर पृथक् बुद्धि मुनिजी को अपभोक्त व संशोधनार्थ इसकी मुद्रित प्रति भेजी गई व उन्होंने अनवरत धन कर संशोधन कर दिया, इस कृपा के लिये हम पृथक् बुद्धि मुनि जी के बहुत आभारी हैं, आधारक संशोधन सहित इसका प्रथम भाग प्रकाशित करते हुये हमें अत्यन्त हर्ष होता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में सरतरगण्ड की एक महत्वपूर्ण 'युगप्रधानाचार्य गुर्वाचसी' एवं श्री समाख्याण जी वृत्त पद्मवती का अनुवाद प्रकाशित किया जा रहा है। उनमें से प्रथम सरतरगण्डसंस्कार युगप्रधानाचार्य गुर्वाचसी भारतीय ऐतिहासिक ग्रन्थों में अपने ढंग का अद्वितीय एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें बड़े मान सूरि से लेकर जिनेश्वर सूरि द्वितीय (संवत् १३०५ तक) का वृत्तवाही मन्थानन जिनपति सूरिजी के शिष्य जिनपालोपाध्याय ने दिल्ली निवासी साधु साहसि के पुत्र माह देवा की अध्यक्षता से लिखा है। इस भाग में जिन दत्तसूरी जी तक का वृत्तवाही गणधर साहू रातक वृद्ध प्रति पर आधारित लगता है जो वृत्तवाही जिन पतिसूरी जी के ही दूसरे पित्रात् शिष्य सुमति गणि ने संवत् १२३५ में पूर्ववत् गणि कथित वृद्ध सम्प्रदायानुसार लिखा था। सुमति गणि के शिष्य हुए वृत्तवाही वृद्ध ही संतो सारी और सरस माया में जिन पालोपाध्याय न इस गुर्वाचसी में निरुद्ध किया है और जिन दत्तसूरी जी के बाद का पट्टर मखिपाटी जिन चंद्रसूरी जी से लेकर संवत् १३०५ तक का वृत्तवाही जिनपालोपाध्याय न संशोधनकर्म से दिया है। इसके बाद इस गुर्वाचसी की पूर्ति अन्य विद्वानों द्वारा होती रही है। इसकी वपसन्ध (एक मात्र) प्रति में जिन सुरासूरी जी के पट्टर भी जिन पट्टर जी का वृत्तवाही संवत् १३३३ तक का संशोधनानुसार से लिखा हुआ प्राप्त हुआ है। हमके बाद भी इसी ढंग से भाग का वृत्तवाही अवरुध ही लिखा गया होगा पर उसकी कोई प्रति प्राप्त नहीं हुई।

श्री श्री जिनपतिसूरी वंश संघ श्री श्री उक्त महोत्सव प्रसंग पर ही रचयिता की गई।

मुग प्रधानाचार्य गुर्वाक्षी की एक मात्र प्रति बौकानेर के उपाध्याय जगन्नाथ जी के ज्ञान मंडार में है जो कि संवत् १४०३ के आसपास की सिद्धी हुई है। लेखन जैसा बाह्य, हाथ नहीं है। इस महत्वपूर्ण प्रति की ओर सर्व प्रथम मेरा ध्यान २०-२२ वर्ष पहले गया जबकि जगन्नाथ जी के ज्ञान मंडार की सूची में गुर्वाक्षी पत्र ८६ का उल्लेख देखने में आया। सरदरगछ्छ की कोई इतनी बड़ी गुर्वाक्षी अन्वय करी भी प्राप्त न होने से मुझे उसे देखने की बहुत उत्सुकता हुई और तुरन्त प्रति निकलवाकर देखी ता आनन्द का पारवार न रहा। हालाँकि करोड़ों की सम्पत्ति पकड़कर मिल जाने पर किसी बनेच्छु व्यक्ति के तथा वर्षों की प्रतीक्षा के बाद पुत्रेच्छा वाले व्यक्ति के यहाँ पुत्र बन्म होने से जितना आनन्द होता है उससे भी अधिक आनन्द इस अनुपम ग्रन्थ की उपलब्धि से मुझे हुआ। मैंने पूज्य हरिसागर सूरि जी को इसकी सूचना दी तो वे भी बहुत प्रसन्न हुए और पूर्व देश के सम्बन्ध विहार में होते हुए भी इस प्रति को मंगवाकर उन्होंने स्वयं अपन हाथ से इसकी प्रतिलिपि की। कलकत्ते के चतुर्मास में उन्होंने इसका हिन्दी अनुवाद भी करवाया। उसका हमने उस समय मूल से मिलान भी किया था पर वह अब तक प्रकाशित नहीं हो हो सका था, उसका उपयोग प्रस्तुत ग्रन्थ में संशोधित रूप में किया गया है। गुर्वाक्षि को मूल रूप में प्रकाशित करने के लिए मैंने पुरातत्वाचार्य मुनि जिन विजय जी से बातचीत की तो उन्होंने बहुत मम पूर्वक समझान करके सिधी जैन ग्रन्थमाला से मुद्रित करवायी। पर वह भी कई वर्षों तक ऐसे ही पड़ी रही, गलत वर्ष ही प्रकाशित हो सकी है। इसके ऐतिहासिक महत्व के सम्बन्ध में मुनिजी सम्पादित 'भारतीय विद्या' में मैंने एक लेख प्रकाशित करवाया था और मेरे विद्वान मित्र बा बरारयजी शर्मा ने भी इसके ऐतिहासिक महत्व के संबंध में कई लेख प्रकाशित किये थे। ऐसे विशिष्ट और महत्वपूर्ण ग्रन्थ रत्न का हिन्दी अनुवाद पाठकों की सेवा में उपलब्ध करते हुए मुझे बहुत ही प्रसन्नता का अनुभव होना स्वाभाविक है।

जैसे तो उपाध्याय जयसोम, महोपाध्याय समयसुन्दर आदि अनेक विद्वानों के रचित सरदरगछ्छ की पट्टावलि प्राप्त हैं पर उनमें जगन्नाथ जी रचित पट्टावली विशेष प्रसिद्ध है। उपाध्याय जगन्नाथ जी सरदरगछ्छ के उल्लेखनीय विद्वान् हैं। स्वर्गी, परमगीतार्थ और अनेकों ग्रन्थों के रचयिता के रूप में वे बहुत प्रसिद्ध हैं। संवत् १८३० के फरव्रुन हाकला ६ की लीरिंगद में उन्होंने यह 'सरदरगछ्छ पट्टावली' रची थी। पर अपन विद्यमान आचार्य जिन चन्द्रसूरि जी का वृतांत भी पीछे से उन्होंने इसमें सम्मिश्रित कर दिया। इसलिये संवत् १८२६ तक का वृतांत उनके रचित पट्टावली में मिलता है। जिन पद्यसूरि जी का भी वृतांत मुग प्रधानाचार्य गुर्वाक्षी में आबूरा रह गया था वहाँ से लेकर संवत् १८२६ तक की पट्टावली का वृतांत जगन्नाथ जी का पट्टावली के अनुवाद के रूप में इस ग्रन्थ में दिस गया है। इसके बाद की अब तक की परम्परा तथा सरदरगछ्छ की शास्त्राओं और साधु परम्परा का वृतांत इस ग्रन्थ के दूसरे भाग में तथा समय प्रकाशित करने का विचार है। सरदरगछ्छ के शिलालेखों तथा साहित्य की सूची और दीक्षा नम्बी की प्राप्त सूची भी हमने ठीकर कर रली है तथा और भी बहुत से ऐतिहासिक साधन प्रस्तुत आदि हमारे संग्रह में हैं। समाज का सहयोग मिता तो भविष्य में उन्हें प्रकाशित करने की भाषना है।

पुरातत्वाचार्य मुनि जिन विजयजी ने ०७ अप्रैल "सरदरगछ्छ पट्टावली संग्रह" नामक ग्रन्थ सम्पादित किया था जिसमें सूरि परम्परा प्रकाशित तीन पट्टावलि और परिशिष्ट में आचार्य शास्त्रा की पट्टावली प्रकाशित की थी। इन उपाध्याय ग्रन्थ का प्रकाशन कलकत्ता के लक्ष्मी चन्द्र जी बाहर न अपनी धर्मपत्नी इन्द्रकुमारी के दानपत्र की तप का उपासना संवत् १६८८ में किया था। जमी में जगन्नाथ जी की पट्टावली भी प्रकाशित हुई थी। इस ग्रन्थ के 'किञ्चित् बतन्व्य' में मुनि जी जिन विजयजी ने सरदरगछ्छ

के महत्व के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा था —

“रवेताम्बर जैन संघ जिस स्वरूप में आज विद्यमान है, उस स्वरूप के निर्माण में सरतरगच्छ के आचार्य, पति, और भाषक समूह का बहुत बड़ा हिस्सा है। एक तपागच्छ को छोड़कर दूसरा और कोई गच्छ इसके गौरव की बराबरी नहीं कर सकता। कई वर्षों में तो तपागच्छ ने भी इस गच्छ का प्रभाव विरोध गौरवान्वित है। भारत के प्राचीन गौरव को अछूट्या रत्नने वाली राजपूताने की वीर भूमि का पिछले एक हजार वर्ष का इतिहास, भोसपाल जाति के शौर्य, औदार्य, बुद्धि-वातुर्भ और वाणिज्य व्यवसाय-कौरस आदि महत्त्व गुणों से प्रदीप्त है और उन गुणों का जो विकास इस जाति में इस प्रकार हुआ है वह मुख्यतया सरतरगच्छ के प्रभावान्वित मूल पुरुषों के सदुपवेश तथा हुमासीर्वाह का फल है। इसलिए सरतरगच्छ का सम्बन्ध इतिहास यह केवल जैन संघ के इतिहास का ही एक महत्वपूर्ण प्रकरण नहीं है, बल्कि समस्त राजपूताने के इतिहास का एक विशिष्ट प्रकरण है। इस इतिहास के संकलन में सहाय्यमूल होने वाली विपुल साधन-सामग्री इतर उभर नष्ट हो रही है। जिस तरह की पट्टाखिया इस संग्रह में संग्रहीत हुई हैं वेनी कई पट्टाखियाँ और प्रस्तित्यों संग्रहीत की जा सकती हैं और उनसे विस्तृत और गृहस्था बद्ध इतिहास तैयार किया जा सकता है। यदि समय अनुकूल रहा तो सिंधी जैन ग्रन्थमाला में एक भाग ऐसा बड़ा संग्रह त्रिशासुओं को भविष्य में देखने को मिलेगा।”

मुनिजी की यह आशा वास्तव में सफल हुई और सिंधी जैन ग्रन्थमाला से ही “सरतर गच्छ वृद्ध गुर्बाबली” नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। जिसमें पूर्वोक्त गुणप्रधानाचार्य गुर्बाबली के साथ प्राकृत भाषा की ‘वृद्धाचार्य प्रबन्धावलि’ भी प्रकाशित हुई है। गुर्बाबली के संबंध में मेरे उपरोक्त लेख की सम्पादकीय टिप्पणी में मुनि जी ने लिखा था कि ‘इस ग्रन्थ में विक्रम की ११वीं शताब्दी के प्रारम्भ में होने वाले आचार्य बद्धमान-सूरि से लेकर १३वीं शताब्दी के अंत में होने वाले जिन पद्यसूरि तक के सरतरगच्छ के मुख्य आचार्यों का विस्तृत चरित वर्णन है। गुर्बाबली अर्थात् गुरु परम्परा का इतना विस्तृत और विस्तृत चरित वर्णन करने वाला ऐसा कोई और ग्रन्थ अभी तक ज्ञात नहीं हुआ। प्रायः ४ हजार श्लोक परिमाण यह ग्रन्थ है और इसमें प्रत्येक आचार्य का जीवन चरित्र इतने विस्तार के साथ किया है कि जैसा अन्यत्र किसी ग्रन्थ में किसी आचार्य का नहीं मिलता। पिछले कई आचार्यों का चरित तो प्रायः बपेदार के क्रम से दिया गया है और उनके बिहार क्रम का तथा वर्षा निवास का क्रमबद्ध वर्णन किया गया है। किस आचार्य ने कब दीक्षा ली, कब आचार्य पदवी मिली किस किस प्रवरा में बिहार किया, कहां कहां चतुर्मास किये, किस जगह कैसा धर्म प्रचार किया कितने शिष्य शिष्यायें आदि लीखित किये कहां पर किस विद्वान के साथ श्राव्यायें या वादविवाद किया किस राजा की सभा में कैसा सम्मान आदि प्राप्त किया। (कहां कहां मन्दिर और मूर्तियों की प्रतिष्ठा की) आदि बहुत ही श्राव्य और तथ्यपूर्ण बातों का इस ग्रन्थ में बड़ी विराट् रीति से वर्णन किया गया है। गुजरात मेवाड़ मारवाड़, सिंध, अजमेर वंजाब और बिहार आदि अनेक देशों के, अनेक गाँवों में रहने वाले सैकड़ों ही धर्मिष्ठ और पबिक भाषक-भाषिकाओं के कुटुम्बों का और व्यक्तियों का नामोस्मरण इसमें मिलता है और उन्होंने कहां पर कैसे पूजा-प्रतिष्ठा व संयोजन आदि धर्म कार्य किये इसका विस्तृत विधान मिलता है। “ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ अपने ढंग की एक अनोखी कृति जैसा है।” मुनि जी ने इस समय इस गुर्बाबली को हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित करने का (मेरे सुझावानुसार) विचार प्रकट किया था और मैंने स्व० हरिसागर सूरिजी वाला हिन्दी अनुवाद बन्द भेज भी दिया था पर यह मुनि जी को बहुत संतोषजनक प्रतीत हुआ। इसके कुछ पृष्ठों का उन्होंने संतोषजनक किया भी, पर यह कार्य अधिक काम साम्य देखकर तथा अन्य ग्रन्थों में शग जाने से पूरा नहीं हो सका, अतः मूल ग्रन्थ ही उन्होंने प्रकाशित किया है। गुर्बाबली का ऐतिहासिक सार ‘अष्टिमासी भी जिनचंद्र सूरि जी’ और जिनपति



सूर जी के परित्र का, मेरे सुम्बधानुसार बा० वररथ शर्मा ने भी लिखा था पर वे भी उसे पूर्ण नहीं कर पाये।

अबनी साहित्य साधना के प्रारम्भ में ही हमने यह निश्चय किया था कि सरतर गण्ड के ऐतिहासिक साधनों का अधिकाधिक संग्रह किया जाय और सुप्रसिद्ध ४ वादागुरुओं का ऐतिहासिक जीवन परित्र प्रकाशित करें। तदनुसार संवत् १९६२-६४ में ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह और युग प्रधान भी जिन चंद्र सूरि नामक दो बड़े ग्रन्थ हमने अपनी अमय जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित किये। पर जिन कुराख सूरि जी और मण्णिपारी भी जिन चंद्र सूरि जी का ऐतिहासिक जीवन परित्र लिखने का कोई साधन उस समय उपलब्ध न था। जिन कुराख सूरि जी का अप्रकाशित 'पद्मभिषेक रास' हमने अपने ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित किया था पर उसमें केवल एक प्रसंग विशेष का ही विवरण था। जब उपरोक्त युग प्रधान-चार्य गुर्वाक्षी की उपलब्धि हुई और उसका हिन्दी अनुवाद पूम्ब हरि सागर सूरि जी ने करवा दिया। तो हमने मण्णिपारी भी जिन चंद्र सूरि और वादा जिन कुराख सूरि का परित्र, गुर्वाक्षी के मुख्य आचार से शीघ्र ही तैयार कर प्रकाशित किया। यदि यह महत्वपूर्ण गुर्वाक्षी उपलब्ध न होती तो यह हमारा मनोरथ सम्भव नहीं हो पाता। ऊन्हीं दिनों हमने एक विस्तृत निबंध जिनपति सूरि का सम्राट् शुष्पीराज चौहान की सभा में शारदायै नामक हिन्दुस्तानी पत्रिका में प्रकाशित किया था। यह भी इसी गुर्वाक्षी पर आधारित था। केवल सरतरगण्ड के इतिहास के लिए ही नहीं, सम्प्रदासीन भारतीय विशेषतः राजस्थान, गुजरात के इतिहास की बहुत सी अज्ञात और महत्वपूर्ण बातें इसी गुर्वाक्षी में सुरक्षित रह सकी हैं इसलिये इसका बड़ा भारी महत्व है। सुसज्जमानी साम्राज्यकाल में जो महान् विप्लव और प्राचीन मंदिर व मूर्तियों का नश्व एवं प्राचीन ग्राम नगर आदि की लूट प्रचल गई, उन सब बातों की विरलत्व सामग्री इस ग्रन्थकाल में ही सुरक्षित रह सकी हैं। बहुत से स्थानों के नाम बरत चुके गीर्ब लुप्त हो गये, मंदिर व मूर्तियाँ नष्ट भ्रष्ट हो गईं उनकी जानकारी के साथ साथ अनेक विद्वान् साधु साधवियों की हीजा एवं पत्र-पत्रिका के संकलन आदि जानने का एक मात्र साधन यह गुर्वाक्षी ही है। अतः ऐसे अतिमूल्य ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित होना एक बहुत बड़ा अभाव की पूर्ति करेगा। व इससे अनेक नये ज्ञातग्रन्थ प्रकाश में आवेंगे। ॐ ॐ ॐ

मुनि जिन विजय जी ने सरतर विरह प्राप्त करने वाले एवं इस गण्ड के अति पुरुष जिनेश्वर सूरि रचित कथा का प्रकरण का सिंधी जैन ग्रन्थमाला से १० वर्ष पूर्व प्रकाशित किया था। उसमें भी इस गुर्वाक्षी का अनेक अन्वय उपयोग किया गया है। जिनेश्वर सूरि जी का परित्र उनके ग्रन्थों का विशेष परिचय और कथा को प्रकरण के संबंध में १०१ पृष्ठों में मुनि जी ने बहुत ही विस्तार से प्रकाशित किया है। पान्ठों का उमे अवरय देन जाने का अनुरोध करता हूँ। सरतरगण्ड के संबंध में एक ग्रन्थ में मुनि जी न जा माकाद्गार प्रगट् किये हैं उनका आचरणक अंश नीचे दिया जा रहा है—

'सरतरगण्ड में अनेक बड़े बड़े महावराही आचार्य बड़े बड़े विद्यानिधि धाम्याय, बड़े बड़े प्रतिभारण्यो पंडित मुनि और बड़े बड़े सांख्यिक, तांत्रिक स्वातिरिद्ध वैद्यक विचारक आदि कमठ बसि जन दुर्ग विष्टोर्न अतन मयात्र की उमनि प्रगति और प्रविष्टा क यदने भं बड़ा योग दिया है। सामाजिक और सांख्यिक उक्तक क सिवा सरतरगण्ड अनुयायियों ने संस्तुत प्राण्य अपभ्रार एवं वैश्य भाषा के साहित्य का भी मसूदा करने में असाधारण उपम क्रिया और इसक फलस्वरूप आज हमें भाषा साहित्य, इतिहास द्वारा, स्वातिरिद्ध वैद्यक आदि विविध विषयों का निष्पण करने वाली छोटी बड़ी मीकनों द्वारा ही प्राप्त हुनियों जैन भंशारों में उपलब्ध हो रही हैं। सरतरगण्डीय विद्वानों की ही हुई यह उपामना न केवल जैन धर्म की दृष्टि ग हा महत्व वाली है (अधिनियमगण्डुप्यय भारतीय संस्कृतिकु के गौरव की दृष्टि से भी जनी ही महत्ता रखती है।

साहित्योपासना की दृष्टि से सरवर गण्ड के विद्वान् यति मुनि बड़े उत्तरा वेता मान्य होते हैं इस विषय में उनकी उपासना का क्षेत्र केवल अपने धर्म या सम्प्रदाय की बाढ़ से बच नहीं है। वे जैन और जैनेतर बाह्य मय का समान माप से अध्ययन-अभ्यापन करते रहे हैं। व्याकरण काध्य, कीप छन्द, अक्षर माटक श्लोतिप वेधक और प्रथम शास्त्र तक के अग्रलिखित अनेक ग्रन्थों पर उन्होंने अपनी पांडित्य पूर्ण टीकाएँ आदि रचकर उत्तम ग्रन्थों और विषयों के अध्ययन कार्य में बड़ा उपयुक्त साहित्य तैयार किया है। सरवरगण्ड के गौरव का प्रदर्शित करने वाली ये सब बातें हम यहाँ पर बहुत ही संक्षेप रूप में, केवल सूत्र रूप से ही उल्लिखित कर रहे हैं।

सरवरगण्ड की प्राथमिक और सबसे बड़ी सेवा चैत्यवास का उन्मूलन और सुविहित मार्ग का प्रचार है। जिनअर सूरि जी से जिनपति सूरि जी तक के आचार्यों ने चैत्यवास का प्रवर्धन और ओरो से खंडन किया। उन्हीं के महान प्रयास का यह सुफल है कि सुविहित विधिमार्ग को पुनः प्रविष्टा मिल सकी। और उसकी परम्परा आज तक अयम रह सकी। इन आचार्यों का प्रभाव चैत्य वासियों पर भी इतना अधिक पड़ा कि कई चैत्यवासी भी उनके शिष्य हो गये। मुनि जिन विजय जी ने जिनअर सूरि जी के प्रभाव के संबंध में लिखा है कि "जिनअर सूरि के प्रवर्धन पांडित्य और प्रकृत चरित्र का प्रभाव न केवल उनके शिष्य समूह में ही प्रचारित हुआ अपितु उत्कृष्टीन अन्त्यान्त्याच्छ एवं यति समुदाय के भी व्यक्तियों ने इनके अनुकरण में क्रियेन्द्र और ज्ञानोपासना आदि की विविध प्रवृत्ति का बड़े उत्साह के साथ उत्तम अनुसरण किया। जिनअर सूरि के जीवन कार्य ने इस युग परिवर्तन को सुनिश्चित स्वरूप दिया। वन से लेकर पिछले १०० वर्षों में, इस पश्चिम भारत में जैन धर्म का जो साम्प्रदायिक और सामाजिक स्वरूप का प्रवाह प्रवर्धित रहा, इसके मूल में जिनअर सूरि का जीवन सबसे अधिक विविध प्रभाव रखता है। और इस दृष्टि से जिनअर सूरि जी जो उनके पिछले शिष्य प्रशिष्यों ने युगप्रधानपद से संबोधित और स्तुति गाकर किया है, वह सर्वथा ही सत्य बस्तु स्थिति का निर्देशक है।"

जिनअर सूरिजी और अभयदेव सूरिजी के प्रारम्भिक जीवन चरित्र पर प्रभावक चरित्र महत्वपूर्ण प्रकारा बालता है। इसी तरह अन्य प्रशास्त्रियों, शिस्तानेख से भी कुछ नय तथ्य प्राप्त होते हैं। ऐतिहासिक तस, गोक आदि सामग्री भी हममें सहायक है। संवत् १४३० के महा विहंगि लेख से भी जिनोदय सूरि के समय की बहुत सी बातें सो पढ़ावली में उल्लिखित नहीं हैं, प्राप्त होती हैं। कई ऐतिहासिक तस का जैसलमेर मंदार की संग्रह पुस्तिका और जितमद्र सूरि स्वाभ्याय पुस्तिका में ये अभी प्राप्त न हान के कारण जिनलक्ष्मि सूरिजी आदि का ज्ञान बहुत ही कम होता है। अब इन तसों की खोज की जाना आवश्यक है और समस्त उपलब्ध साधनों का उपयोग किया जाकर सरवरगण्ड का एक इहद् इतिहास लिखा जाना अपेक्षित है। प्रस्तुत ग्रन्थ तो बसकी एक भूमिका मात्र है। सामग्री काही अध्ये रूप में प्राप्त है। आवश्यक है उसके संग्रह और उसके आधार से व्यवस्थित इतिहास तैयार करने की। सरवरगण्ड का गौरव और महत्त्व, तभी ठीक से प्रकटा में आ सकता है। इस गण्ड का समस्त अनुयायियों का मैं इस परमावरण और अन्वन्त महत्वपूर्ण काय की आधार प्यान आकर्षित करते हुए भूमिभ समाप्त करता हूँ।

# खरतरगच्छ का श्रमण-समुदाय

( स० अग्रचन्द्रमी नाटा, बीकानेर )

खरतरगच्छ यह नामकरण, इस गच्छ का परम्परा के अनुसार, संवत् १०५० के लगभग पाटण्ड के महाराजा दुर्लभराज की राजसभा में चैत्यवासियों के साथ आचार्य पर्यमान सूरि और जिनेश्वर सूरि के सामने होने वाले शास्त्रार्थ से सम्बन्धित है। चैत्यवासी इस शास्त्रार्थ में पराजित हुए और जिनेश्वर सूरिजी आदि सुविहित मुनियों के छोर आचारपात्रन का सूत्रक 'खरतर' संबोधन नृपति दुर्लभराज द्वारा किया गया। पर्यमान श्वेताम्बर गच्छों में यह सबसे प्राचीन भी है। अक्षयगच्छ और तपगच्छ इसके बाद ही हुए। आचार्य जिनेश्वर सूरि और उनके गुरुधत्ता बुद्धिसागर सूरि बड़े विद्वान भी थे। उनके बनाये हुए कई ग्रन्थ मिलने हैं जिनमें से 'प्रमाणाक्षय नामक जैन न्याय ग्रन्थ और पंचमन्थी नामक व्याकरण ग्रन्थ अपने शिष्य और ढंग के पहले ग्रन्थ हैं। जैसे जिनेश्वर सूरिजी रचित 'अष्टक टीका' आदि भी महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। जिनेश्वर सूरि जी के शिष्य जिनपद्म सूरि और अमयदेव सूरि हुए। इनमें से जिनपद्म सूरि रचित 'सन्नेगरंगराला' ग्रन्थ महत्वपूर्ण है और अमयदेव सूरि जी तो नर्पांगकृषिकार के रूप में प्रसिद्ध एवं सर्वमान्य हैं और अमयदेव सूरि जी के पट्टधर जिनवल्लभ सूरि जी अपने समय के विशिष्ट विद्वानों में से हैं और अमयदेव सूरिजी के शिष्य पर्यमान सूरि के भी मनोरमा, आदिनाथ परिव्रज ग्रन्थादि उल्लेखनीय हैं। जिनवल्लभ सूरिजी के शिष्य जिनशेखर सूरि से स्वयंप्रकटीय शास्त्रा और वर्धमान सूरिजी से मधुक्री शास्त्र प्रसिद्ध हुईं।

जिनवल्लभ सूरिजी के पट्टधर जिनपद्म सूरिजी बड़े ही प्रभावशाली आचार्य हुए। जिन्होंने कृषि तथा क्षाय जैन धर्माचार और बड़े बाबाजी के नाम से आज भी पूजे व माने जाते हैं। सैकड़ों स्थानों में इनके गुरु-मन्दिर और चरण-पादुकाग्रंथ स्थापित हैं। सैकड़ों स्तोत्र, स्तवन इनके सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण न बनाये हैं। इनका जन्म संवत् ११३० बीसा ११४१ आचार्य पद्मोत्सव ११६६ और स्वर्गवास संवत् १२११ में अजमेर में हुआ। आयात हुक्मा ११ को इनकी जयन्ती अनेक स्थानों पर मनाई जाती है।

जिनपद्म सूरिजी के शिष्य और पट्टधर जिनपद्म सूरिजी 'मणिधारी बाबाजी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि 'नन्द मस्तिक म मणि धी। इनका स्वर्गवास छोटी उम्र में ही हिस्ती में हो गया। और महाराष्ट्र में आज भी आचार्य स्मारक विद्यमान है। इनके पट्टधर जिनपति सूरि बहुत बड़े विद्वान और दिग्गजवाणी थे। अनेक शास्त्रार्थ इन्हीं राजसभाओं आदि में करके विजय प्राप्त की थी। पांच सौ-साठ सौ वर्षों से जा चैत्यवास न श्वेताम्बर सम्प्रदाय में अपना प्रभाव विस्तार किया था, वह जिनेश्वर सूरि से लेकर जिनपति सूरिजी तक के आचार्यों के अपरवृत्त प्रभाव से ही प्राप्त हो गया। अतः सुविहित मार्ग की परम्परा का पुनर्प्राप्ति और प्राप्त रूप में खरतरगच्छ की श्वेताम्बर जैन संघ का महान् जैन है।

जिनपति सूरिजी और उनके पट्टधर जिनेश्वर सूरिजी का शिष्य समुदाय विद्वत्ता में भी अग्रणी था। इनके रचित ग्रन्थों की संख्या और विविधता उल्लेखनीय है। कुछ अन्य पट्टधरों के बाद १५वीं शताब्दी के दरार में जिनेश्वर सूरिजी भी बड़े प्रभावशाली हुए जा छोट बाबाजी के नाम से गण्य प्रसिद्ध हैं व भक्तजनों का मनापामना पूर्ण धरन में रूपरत्न महारथ हैं। इनके भी संनिर 'चरण पादुकाग्रंथ' और सुनि गाय प्रभु परिमाण में विद्यमान है। चैत्य बन्द पुनःकृति इनकी महत्वपूर्ण रचना है।

इसी के समय में जिनपद्म सूरि नाम के एक और आचार्य बहुत बड़े विद्वान और प्रभावशाली हुए

जिन्होंने सम्भव १३५२ में सुहम्मद तुगलक को जैन धर्म का सम्बन्ध दिया। उनकी सभा में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। कन्नया की महावीर मूर्ति का इन्होंने सुहम्मद तुगलक से पुनः प्राप्त किया और सम्राट उन्हें बहुत ही आदर देता था। जैन विद्वानों में सबसे अधिक स्तोत्रों के रचयिता आप ही थे। कहा जाता है कि आपने ६०० स्तोत्र बनाये। जिनमें अब दो करीब १०० ही मिलते हैं। विधिष टीर्थकल्प विधिप्रभा, श्रेणिकचरित्र प्रथमख काव्य आदि आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। पञ्चात्रयी देवी आपके प्रत्यक्ष थी। इनकी परम्परा १७-१८ वीं शताब्दी से लुप्त प्रायः हो गई। इनके गुरु जिनसिंह सरि से 'सप्त सरतर' शाखा प्रसिद्ध हुई। इनकी जीवनी के सम्बन्ध में पं० ज्ञानचन्द्र गौधी और हमारे लिखित जीवन-चरित्र देखने चाहिये।

जिनसुखल सूरिजी के करीब सौ वर्ष बाद जिनमद्र सूरिजी हुए जिनके स्थापित ज्ञान मंडल जैसलमेर आदि में मिलते हैं। प्राचीन प्रयोगों की सुरक्षा और उनकी नई प्रतिक्रियाओं के यत्न कई स्थानों में ज्ञान मन्दार स्थापित करने का आपने उल्लेखनीय कार्य किया है।

इनके १ सौ वर्ष बाद सु० जिनचन्द्रसूरिजी बड़े प्रभावशाली आचार्य हुए जिन्होंने सम्राट अकबर को जैन धर्म का प्रतिबोध कराया और शाही फरमान प्राप्त किये। सम्राट जहाँगीर ने जैन साधुआ के निष्कासन का जो आदेश जारी कर दिया था उस भी आपने ही रद्द करवाया। आपके स्वयं के १४ शिष्य थे। उस समय के सरतरगण्ड के साधु-साधियों की संख्या सहास्रधिक होगी। जिनमें से बहुत से एक ऋषि क विद्वान भी हुए। आपकी जैसे अपूर्व ग्रन्थ के प्रयोग महापोष्याय समसुन्दर हैं आपके ही प्रशिष्य थे। विरोध जानने के लिये हमारा युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि देखना चाहिये। मे चौथे दादा साहब के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें से हमने आठ दादा साहब के चरित्र प्रकाशित कर दिये हैं। इनमें जिनचन्द्र सूरिजी का सम्राट अकबर ने युगप्रधान पद दिया था। सं १६१३ में बीकानेर में इन्होंने किचा उठार किया था। सु० म० जिनमद्र सूरिजी के सौ वर्ष बाद जिनमल सूरिजी हुए उनके शिष्य प्रीतिसागर के शिष्य अमृतधर्म के शिष्य तपाप्याय जमालग्याथजी हुए। जिन्होंने साधुआर के निम्न ग्रहण कर शिषिसाधार को इटाने में एक नई कल्पि की। सरतरगण्ड में आज सबसे अधिक साधु-साधियों का समुदाय इन्हीं की परम्परा का है। यह अपन समय के बहुत बड़े विद्वान थे। बीकानेर में सम्बन् १८७४ में इनका स्वर्गवास हुआ। आपके शिष्य धर्मानन्दजी के शिष्य रामसागरजी से सम्बन् १९६५ में सुखसागरजी ने बीजा ग्रहण की इन्हीं के नाम से सुखसागरजी का संघादा प्रसिद्ध है जिसमें आचार्य हरिसागर सूरिजी का स्वर्गवास चौथे वर्षों पहले हुआ है और अभी आनन्दसागर सूरिजी विद्यमान है। उनके आठानुषर्षी तपाप्याय कबीरसागरजी और प्रसिद्ध बख्श मुनि कल्पिसागरजी आदि १-१२ साधु और श्रमभग ० साधुविद्यमान हैं। इसी परम्परा में महापोष्याय-सुमविद्यागरजी के शिष्य आचार्य श्री जिनमणिसागर सूरिजी बड़े विद्वान लेखक व चरित्र पात्र हुए हैं जिनका शिष्य महापोष्याय जिनमसागरजी है।

अभी सरतरगण्ड में तीन साधु समुदाय हैं। जिनमें से सुखसागरजी के समुदाय का उमर उल्लेख किया गया है। दूसरा समुदाय मोहनशास्त्री महापुत्र का है जिनका नाम गुजरात में बहुत ही प्रसिद्ध है। आप पहले यति थे पर किचा उठार करके साधु बने और तपाप्याय और सरतरगण्ड-दोनों गण्डों में समान रूप से मान्य हुए। आपकी ही अद्भुत विद्युत्ता थी कि आपके शिष्यों में दोनों गण्ड के साधु हैं और इनमें से कई साधु बहुत ही क्रियापात्र सरल मरुति के धार विद्वान हैं। सरतरगण्ड में इनके पट्टधर जिनधरा सूरिजी हुए। फिर जिनधरि सूरिजी और जिनरत्न सूरिजी हुए। इनमें जिनधरि सूरिजी गुजरात आदि में बहुत प्रसिद्ध हैं। अभी आपके समुदाय में तपाप्याय कल्पिसुनिजी बुद्धि सुनिजी गुलाब सुनिजी

आदि १०-१२ बड़े क्रियापात्र साधु हैं। कुछ साधियों भी हैं। उ अम्बिमुनिजी ने करीब १०-११ हजार स्त्रोफ परिमित पद्यबद्ध संस्कृत ग्रन्थ बनाये हैं और बुद्धिमुनिजी ने भी अनेक ग्रन्थों का विद्वतापूर्णा सम्पादन किया है। जिनरत्नसुरिजी के शिष्यों में भद्रमुनिजी ने आध्यात्मिक साधना में महत्वपूर्ण प्रगति की। आत्र वे सहजानन्दीजी के नाम से एक आत्मज्ञानमयी और आध्यात्मिक-योगी, संत के रूप में प्रसिद्ध हैं। अपने ङग के सारे जैन भ्रमण समुदाय में ये एक ही आत्मज्ञानमयी बोगी हैं।

सरतरगण्ड में योग-अभ्यास की परम्परा भी उत्कृष्टतम रही है। योगिराज आनन्दचनजी मूलतः सरतरगण्ड के ही थे। उसके बाद श्रीमद् देवचन्द्रजी बड़े तबकोटि के आध्यात्म-तत्ववत्ता हो गये हैं। जिन्होंने भक्ति अभ्यास का अपूर्व मेल वैठया है। तदन्तर विद्यानन्दजी (कपूरचन्द्रजी) भी सरतरगण्ड के ही योगियों में उत्कृष्टतम थे तथा इनसे कुछ पूर्ववर्ती मस्त बोगी ज्ञानसारजी बीकानेर के रमरातों के पास यहाँ तक साधना करते रहे हैं। बीकानेर, जयपुर, किरानगढ़ और जयपुर के महापना आपके बड़े मठ में। १८ वष की वीर्षायु में बीकानेर में आपका स्वर्गवास हुआ। आनन्दचनजी की चौबीसी और कुछ पदों का मम-स्पर्शी विवेचन आपने किया है। विरोध ज्ञानने के लिए हमारा 'ज्ञानसार ग्रन्थावली' नामक ग्रन्थ रचना चाहिये। द्वितीय विद्यानन्दजी जो कपरोक सुखसागरजी के शिष्य थे वे भी उत्कृष्टतम जैन योगी थे। इनके रचित अभ्यासमालुमय योगप्रकरा स्यादावाद् अनुभव रत्नाकर, सुख देव अनुभव विचार, विद्यानुभव-रत्नाकर, आत्मभ्रमोच्छेदनमालु आदि कई विशिष्ट ग्रन्थ हैं। आपका स्वर्गवास सं० १९१६ में जादरे में हुआ। अभ्यासमालुमय योगप्रकरा ग्रन्थ से आपकी योग सम्बन्धी ज्ञानप्रद और अनुभव का विराट् परिचय मिलता है।

सरतरगण्ड का तीसरा साधु समुदाय जिनकृपाचन्द्र सुरिजी का है। कृपाचन्द्र सुरिजी भी पहले बीकानेर के सरतरगण्ड के यति थे। संवत् १९४३ में आपने क्रिया-व्यहार किया। संवत् १९७२ में आपके बन्धु में आचार्य पद मिला। संवत् १९६४ में सिद्धचैत्र पालीवाणा में आपका स्वर्गवास हुआ। आप बहुत बड़े विद्वान् क्रियापात्र तथा प्रभावशाली गीतार्थ आचार्य थे। आपके शिष्यों में जयसागर सुरिजी भी आपके विद्वान् और त्यागी साधु थे। जिनका स्वर्गवास बीकानेर में हुआ। विद्यमान साधुओं में तपाम्बाय सुखसागरजी उत्कृष्टतम हैं। इनके शिष्य काव्यसागरजी भी आपके विद्वान् और बहा हैं। जिन्होंने 'संभारों के वैभव' आदि ग्रन्थ और कई विद्वतापूर्णा लेख लिखे हैं। कृपाचन्द्र सुरि के शिष्य समुदाय में अभी करीब १ साधु और १०-१२ साधियों विद्यमान हैं।

सरतरगण्ड में भी तपागण्ड की तरह १०-१० शाखायें हुईं। जिनमें से अभी चार शाखाओं के शीष्य और यति क्रियमान हैं। शीष्य परम्परा में बीकानेर की महारक शाखा के जिन विजयेश्वर सुरिजी बड़े प्रभावशाली हैं। इसी तरह ब्रह्मरुद्र की जिनरंग सुरि शाखा के जिन विजयेश्वर सुरि और जयपुर की मन्मोहन शाखा के जिन धरेश्वर सुरिजी भी आपके विचारशील हैं। बीकानेर का चार्य शाखा के शीष्य सोमप्रभ सुरि हैं। बल्लोतरे की भावहृषीय शाखा और पल्ली की आद्यपदीयरशाखा के अब शीष्य नहीं हैं, केवल यति ही हैं। करीब १ हीरार्थ सुरि भी उत्कृष्टतम हैं।

सरतरगण्ड का प्रभाव क्षेत्र भी बहुत विस्तृत रहा है। राजस्थान तो मुख्य क्षेत्र है ही, मध्यप्रान्त और बंगाल तथा दक्षिण भारत आसाम, गुजरात आदि में भी सरतरगण्ड के अनुयायी निवास करते हैं। राजस्थान में स्थानकवासी और तेरापण्डी समुदाय का प्रभाव प्रभाव का कारण इस गण्ड के बहुत से अनुयायी स्थानकवासी व तेरापण्डी हो गये। वराट में के प्रभाव के कारण सरतरगण्ड के होते हुए भी बहुत से लोग तपागण्ड तरह विगत कुछ वर्षों में अनुयायियों

की कल्पि कमी आ गई है। फिर भी तपारगच्छ के बाद इसी का स्थान आता है। जगह २ पर सैकड़ों ज्ञान मंदार, मंदिर, तीर्थ बाबाबाबियों इस गच्छ के प्रभाव की परापठाका पढ़ा रही है।

सरतारगच्छ के प्रभाव समुदाय में साधियों का स्थान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। साधुओं की संख्या जब ३० के करीब है तो साधियों करीब २२५ हैं और उनमें कई तो बहुत ही विदुषी, सुशिक्षित ध्यानात्मिका और प्रभावशाली हैं। सुखसागरजी के समुदाय में ही सबसे अधिक साधियाँ हैं। करीब २० वर्ष पूर्व प्रवर्तिनी पुरयभी जी नामक एक साध्वी हुई उनके और उनकी गुरुबहिन का ही यह सारा साध्वी परम्परा का विस्तार है। सोहन भीजी आदि पढ़ी उच्च कोटि की साधिका इनमें हुई और वर्तमान में भी प्रवर्तिनी वरुणा भीजी, प्रमोद भीजी, विदुषी रत्न विद्यालय भीजी आदि व इनकी शिष्याएँ जैन शासन की शोभा बढ़ा रही हैं। लघुमय की अनेक साधियाँ अभी विद्याभ्ययन कर रही हैं अतः सरतारगच्छ का सन्धिप्य भी बम्बल प्रतीत होता है। वास्तव में साध्वी समुदाय अवतक बढ़ो उपस्थित रही, अन्धध्या इसके द्वारा बहुत बड़ा कार्य हो सकता था क्योंकि धार्मिक क्षेत्रों में सबसे अधिक मना स्त्री समाज होता है और उनका नेतृत्व ये साधियाँ ही सबसे अधिक कर सकती हैं। वे पाई तो स्त्री समाज में शिक्षा प्रसार और धार्मिक अभिवृद्धि बहुत सरलता से ही कर सकती हैं। मासी समाज के आशाकेन्द्र बालक-बालिकाओं को उनकी माताएँ ही योग्य और संस्कारशील बना सकती हैं। और उन माताओं की अपेक्षा तथा निर्माता यह साध्वी मंडल ही है।

वर्तमान जैनतीर्थों के निर्माण, संरक्षण, जीर्णोद्धार और स्थापना में भी सरतारगच्छीय साधु व भीप्य मति सम्प्रदाय का बड़ा योग रहा है। पूर्व देश के छुप प्रायः, अनेक तीर्थों का प्रगतीकरण सरतारगच्छ के साधु और यति समुदाय के द्वारा ही हुआ है और अन्य स्थानों के भी तीर्थों में उनके उपदेश से बनाये हुए मन्दिर, मूर्तियाँ आदि प्रचुर परिमाणों में प्राप्त हैं। जैसलमेर के सभी क्लामय मन्दिर सरतारगच्छ के श्रावकों के बनाये हुए हैं। और उनके आचार्यों के प्रतिष्ठित हैं। इसी तरह बीकानेर आदि में भी जहाँ २ सरतारगच्छ का अधिक प्रभाव रहा है, अनेक जिनालय साधु यति व भीप्यों के उपदेश से बनाये गये। अमरबाजी आदि कई तीर्थ इन्हीं के द्वारा प्रसिद्ध हुए। शत्रु जय, गिरनार, रणमकुमर, सिरोही आदि अनेक स्थानों में सरतारगच्छ ही के नाम से मंदिर हैं। भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रांतों में सरतारगच्छ के श्रावक निवास करतं थ और बहुत से प्रांतों में तो आज भी करते हैं। अतः इन सब स्थानों में मन्दिर, उपास्य, बाबाबाबियों व ज्ञान-मंडार हैं। सिन्ध प्रांत में भी सरतारगच्छ का बड़ा प्रभाव रहा है पाकिस्तान हो जाने से सिन्ध के अनेक श्रावक राजस्थान आदि में बस गये हैं। बंगाल, आसाम और मध्यप्रदेश में भी सरतार गच्छ का बड़ा प्रभाव रहा है और अब भी है। इस गच्छ के आचार्यों मुनियों और यतियों का रचित साहित्य भी विराल है। जिसका पूरा विवरण सरतार साहित्य सूची में दिया गया है।

सरतारगच्छ के श्रावक भायिकाओं ने अनेक धर्मकर्म किये, मंदिर मूर्तियों बनाई तीर्थों का जीर्णोद्धार करवाये, हजारों हस्तलिखित प्रतिबों लिखवाई विविध धर्मप्रभावना के कार्य किये इनका भी अपना महत्व है।







खरतरगच्छ का इतिहास





नमो युगप्रधानमुनीन्द्रेभ्य ।

खरतरगच्छालङ्कार

# युगप्रधानाचार्यगुर्वावल्लि



❀ मङ्गलाचरणम् ❀

वर्धमानं जिनं नत्वा, वर्धमानजिनेश्वराः । मुनीन्द्रजिनचन्द्रास्याऽमयवर्धमुनीश्वराः ॥१॥

भीजिनवृद्धमधरिः, भीजिनवृद्धमधरय । यतीन्द्रजिनचन्द्रास्याः, भीजिनपतिधरयः ॥२॥

एतेषां अरिर्हं किञ्चिन्, मन्दमत्या पदुष्यते । इदमेत्या भुतनेचृम्पस्तन्ने कथयतः शृणु ॥३॥

अन्तिम तीर्थंकर 'वर्धमान' श्री महावीर स्वामी को नमस्कार करके वर्धमानधरि, जिनेश्वरधरि, जिनचन्द्रधरि, अमयवृद्धधरि, जिनवृद्धमधरि, जिनवृद्धधरि, जिनवृद्धधरि और जिनपतिधरि इन आचार्यों का पत्तिक्रमिन् जीवन अरिष में अपनी मन्द बुद्धि के अतुष्टार कहता हूँ, जो मैंने परम्परा के जानने वाल इदों से श्राव किया हूँ । मेरे कथन को आप सुनिये—

## आचार्य वर्धमानसूरि

१ अमो हर देश में चौरासी देवधरों के मासिक चैत्यवासी जिनवृद्ध नाम के एक आचार्य थे । उनका वर्धमान नामक शिष्य था । उस शिष्य को शास्त्र पढ़ाव समय जिनमन्दिर विषयक चौरासी आशातनाओं का वर्णन पढ़ने में आया । उनका विचार करत हुवे वर्धमानक मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि—'यदि इन चौरासी आशातनाओं का रक्षण किया जाय तो कल्याणप्रद होगा' । उसन अपना यह विचार गुरु को निवेदन किया । गुरुजी ने मन में सोचा कि—'इसका मन ठीक नहीं है' । इसलिये उसे आचार्य पर स्थापित कर लिया । आचार्य पद मिलने पर भी उनका मन चैत्यगृह में बाम करक रहने में स्थिर नहीं हुआ । इसलिये अपने गुरु की सम्मति से वह बुद्ध सुनियों को साथ लेकर दिन्दी\*-नादली (?) आदि देशों की तरफ निकल आया । उस समय वहाँ पर

\* भारतवर्ष की राजधानी जिस दिन्दी योगिनीपुर भी कहत ।

भी उद्योतनाचार्य नाम के छरि विराज रहे थे। उनके पास वर्धमान ने आगम शास्त्र के तर्कों का ठीक ज्ञान प्राप्त किया और उन्हीं के समीप उपसपदा अर्थात् पुनर्दीक्षा ग्रहण की। क्रमशः वे वर्धमान-छरि बन गये। इसके बाद उन वर्धमानछरि को इस बात की भिन्ता हुई कि—'छरिमंत्र का अविच्छन्न देव कौन है?' इसके जानने के लिये उन्होंने तीन उपवास किये। तीसरा उपवास समाप्त होते ही धरधेन्द्र नामक देव प्रगट हुआ। धरधेन्द्र ने कहा कि—'छरिमंत्र का अविच्छन्नता मैं हूँ' और फिर उसने छरिमंत्र के पदों का अलग अलग फल बताया। इससे आचार्य-मंत्र स्फुरायमान हो गया। फिर वे वर्धमानछरि सार मुनि-परिवार सहित स्फुरायमान हो गये।

### आचार्य जिनेश्वरसूरि

२ इसी अयमर में परिष्ठित जिनेश्वरगण्डि ने—ओ वर्धमानछरि के शिष्य थे—निवेदन किया कि मगधन् ! 'यदि कहीं देश-विदेश में जाकर प्रचार न किया जाय तो जिनमत के ज्ञान का फल क्या है? सुना है कि गुर्जर देश बहुत बड़ा है और वहाँ चैत्यवासी आचार्य अविष्क सख्या में रहते हैं। अतः वहाँ चलना चाहिये।' यह सुनकर श्रीवर्धमानाचार्य ने कहा—'ठीक, किन्तु शकून-निमिषादिक देखना परमावश्यक है, इसमें सब कार्य ध्रुम होते हैं।' फिर वे—वर्धमानछरि-सपरह शिष्यों को साथ लेकर मामह नामक बड़े व्यापारी के सब के साथ चले। क्रम से प्रयाग करते हुये पाली पहुँचे। एक समय जब श्री वर्धमानछरि परिष्ठित जिनेश्वरगण्डि के साथ बहिर्मिमिका (शौचार्थ) जा रहे थे, उन्हें सोमपञ्च नामक बटावर मिला और उसके साथ मनोहर बतौरलाप हुआ। वाचासाय क मसग में सोमपञ्च ने गुण देखकर आचार्य वर्धमान से प्ररन किया—

का दौर्गत्यविनाशिनी हरिविरञ्जुप्रवाची च को,

धर्मा को व्यपनीयते च पथिकैरत्यादरेण श्रम ।

चन्द्र पृथ्वति मन्दिरेषु मरुता शोभाविभायी च को,

दाक्षिण्येन नयेन विश्वविदित को भूरिभिभ्राजते ॥१॥

दुर्गति का नाश करने वाली वस्तु क्या है? विष्णु-अष्टा-शिव का वाचक क्या क्या है? पथिक लोग अपने-अपने सुखपूर्वक कहीं दूर करत हैं? चन्द्र पृथ्वी है कि मन्दिरों की शोभा बढ़ाने वाली वस्तु क्या है? और जगत् में चतुरता तथा न्याय आदि गुणों से विश्वरिख्यात होकर कौन प्रकाशमान है? इन प्रश्नों का 'सोमपञ्च' इस प्रकार एक ही पद में छरिमी ने उत्तर दिया। इसमें स सच्चि विरसेव-सा, ओम्, अम्बजः, ऐसा किया जाता है। अर्थात् दुर्गति-दारिद्र्य का नाश करने

† जिनेश्वरसूरि का पूर्ववृत्त देखने के लिये बसने परमावकचर्चात्तान्तर्गत अयमरवैश्वसूरि चरित पृथ ३१ से ३०।  
१ वाओ (ओपपुर रीड)।

वाली सा-सूचमी है। ओम् यह बर्ष ब्रह्मा-विष्णु-महेश तीनों का वाचक है अर्थात् इस पद से तीनों ही ग्रहण किये जाते हैं। पक्क लोह अश्वज यानी मार्गजनित भ्रम को बड़े चाव से बुर करना चाहते हैं। देवताओं के मन्दिरों में शोभा बढ़ाने वाली वस्तु ध्वज अर्थात् ध्वजा है। मन्दिरों की शोभा ध्वजा से बढ़ती है। चतुर्थाई और नीति में विश्वविख्यात यदि कोई है तो वह सोमध्वज है।

यह उत्तर सुनकर वह तपस्वी बहुत प्रसन्न हुआ और उसने धरि जी की बहुत भक्ति की। फिर उसी मासह सेठक सप्तके सप्त वल्लते हुए गुजरात की प्रसिद्ध नगरी अनहिलपुर पाटण में पहुँचे। वहाँ नगर के बाहिर मण्डपिका अर्थात् सरकारी चुन्नी घर में ठहरे। उस समय वहाँ उसके भास-यास कोट नहीं था, जिससे सुरचा हो और शहर में सुसाधुओं का कोई मक भवक भी नहीं था, जिसके पास वाकर स्थान आदि की याचना की जा सके। वहाँ विराजमान मुनिशुन्द सह आचार्य को ग्रीष्म से आक्रान्त देखकर परिहृत जिनेश्वर ने कहा—'पूज्यपाद ! बैठे रहने से कोई कर्म नहीं होता ? आचार्य ने कहा—'हे सन्धिप्य, क्या करना चाहिये ?' तब परिहृत जिनेश्वर ने प्रार्थना की—'यदि आशा दें तो सामने जो बड़ा घर दिखाई दे रहा है, वहाँ जाऊँ।' आचार्य ने उत्तर दिया—'आओ'। गुरु की बन्दन कर वे वहाँ से चले। वह घर श्रीबुर्लमराज के पुरोहित का था। उस समय वह पुरोहित अपने शरीर में अभ्यग-मर्दन करा रहा था। उसके सामने वाकर आशीर्वाद दिया—

धिये कृतमत्तानंदा, विशेषपृपसंगता ।

भवन्तु तव विप्रेन्द्र !, ब्रह्म भीधर-शंकराः ॥

[ हे मासबभेष्ठ ! मर्कों को अलन्द देने वाले, क्रम से हंस, शयनाग और हयम ( पैल ) पर चढ़ने वाले ब्रह्मा, विष्णु, शिव आपकी सत्समी की इति करें। ]

इसको सुनकर पुरोहित बहुत प्रसन्न हुआ और हृदय में विचार किया कि यह साधु कोई बड़ा विषय-मुद्दिमान् शक्त होता है। उसी पुरोहित के घर में कई छात्र वेदपाठ कर रहे थे, उसे सुनकर पं० जिनेश्वरगन्धि ने उनसे कहा—'इस तरह पाठ मत करो, किन्तु इस प्रकार करो'। यह सुनकर पुरोहित ने कहा—'शुद्धों का वेद पठन-पाठन का आपक नही है'। परिहृत जिनेश्वर ने कहा—'अथ तथा अर्थ को जानने वाले हम चतुर्वेदी ब्राह्मण हैं'। तब पुरोहित ने प्रसन्न होकर पूछा—'आप कहाँ से पधारे हैं और वहाँ कहाँ विराज रहे हैं ?' गन्धिजी ने उत्तर दिया—'हम दिल्ली प्रान्त से आये हैं और इस देश में हमारे विरोधी मनुष्य होने का कारण हमें कोई ठोक स्थान नहीं मिला है। अभी शहर के बाहर चुन्नी घर में ठहरे हुये हैं। अठारह यति हैं, सब मेरे पूज्य हैं'। यह सुनकर पुरोहित ने कहा—'यह चतुःशाल वासा मेरा मकान है। इसमें एक तरह

पर्दा बाँध कर एक मार्ग-द्वार से प्रवेश करके आप सब सुखपूर्वक विराजें। मिथा के समय मेरा सेवक आपके साथ रहने से ब्राह्मणों के घरों से आपको सुखपूर्वक मिथा प्राप्त हो जावेगी।' इस प्रकार पुरोहित के आग्रह से ये लोग उसके चतुःशाल के एक मंग में आकर ठहर गये। तब यह बात सारे शहर में फैल गई कि 'बसन्ति-निवासी कोई नवीन यति लोग आय हैं।' स्थानीय दक्षगृह-निवासी यतियों ने भी यह बात सुनी। उन्हें इनका आगमन अच्छा मालूम नहीं हुआ और उन्होंने सोचा कि यदि रोग को उठते ही नश्वर कर दिया जाय तो अच्छा है। तब उन्होंने अधिकारियों को बालकों को—जो उनके पास पड़े थे—बसासे आदि मिठाई दफर प्रसन्न किया और उनका द्वारा नगर में यह बात फैलाई—'ये परदेश से मुनिरूप में कोई गुप्तचर आय हैं, जो दुर्लभराज क राज्य करारहस्य को खानना चाहते हैं।' यह बात सारी जनता में फैल गई और क्रमशः राजसभा तक जा पहुँची। तब राजा ने कहा—'यदि यह ठीक है और ऐसे लुप्त पुरुष आये हैं तो इनको किसने आपनय दिया है?' तब किसी ने कहा—'राजन् ! आपके गुठ ने ही अपने घर पर ठहराया है।' उसी समय राजा की आँखा से पुरोहित बहाँ झुलसा गया। राजा ने पुरोहित से पूछा—'यदि ये धूर्त पुरुष हैं तो इनको तुमने अपने यहाँ क्यों स्थान दिया।' पुरोहित ने कहा—'यह पुराई किसने फैलाई है? मैं लाख रूपों की बाजी मारने के लिये ये कौटिल्याँ फैलाता हूँ, इनमें दूषण सिद्ध करने वाला इन कौटिल्यों का स्पर्श करे। परन्तु कोई भी ऐसा न कर सका। तब पुरोहित ने राजा से कहा—'देव ! मेरे घर में ठहरे हुये यतिजन साक्षात् मूर्तिमान् धर्मपुत्र से दिखाई देते हैं, उनमें कोई प्रकार का दूषण नहीं है।' यह सुनकर छराचार्य आदि स्थानीय वैश्यवासी यतियों ने विचार किया—'इन विदेशी मुनियों का शास्त्रार्थ में कीतकर निकाल देना होगा।' उन्होंने पुरोहित से कहा कि हम तुम्हारे घर में ठहर हुए मुनियों के साथ शास्त्र-विचार करना चाहते हैं।' पुरोहित ने कहा—'उनसे पूछ कर बैसा होगा बैसा मैं उत्तर दूँगा।' फिर उसने अपने घर जाकर उन मुनियों से कहा—'महाराज ! विपरीत लोग आप पूर्व्यों के साथ शास्त्र-विचार करना चाहते हैं।' उन्होंने कहा—'ठीक ही है, तुम डरो मत और उनसे यह कहना—अगर आप लोग उनके साथ वाद-विवाद करना चाहते हैं तो वे श्रीदुर्लभराजा के सामने बहाँ तुम शास्त्रार्थ के लिये कहोगे, वहाँ करने को तैयार हैं।' इसको सुनकर उन्होंने सोचा कि यहाँ के सब अधिकारी हमारे बशीरूत हैं, इनसे कोई मय नहीं है। अतः राजा के समय रामसमा में ही शास्त्र-विचार किया जाय। तब पञ्चाशरीय पार्ष्वनाथ मगवान् के के बड़े मन्दिर में अष्टक दिन शास्त्र चर्चा होगी, ऐसा निवेदन पुरोहित की ओर से सर्व साधारण को कर दिया गया। अक्सर पाकर पुरोहित ने एकान्त में राजा से कहा—'देव ! अमान्तुक मुनि-दनों के साथ स्थानीय यति शास्त्र-विचार करना चाहते हैं और विचार न्यायवादी राजा की अप्ययता में किया गया शोभा देता है। अतः आप छपा करके उस अवसर पर समा-मन्त्र में अवश्य विराजें। इस पर राजा ने कहा—'ठीक है, यह तो हमारा कर्त्तव्य ही है।'

तदनन्तर नियत दिन उसी बड़े मन्दिर में भी सराचार्य आदि स्थानीय खौरस्त्री आचार्य अपने अपने मान मरतबे के साथ आकर बैठ गये। फिर प्रधान पुरुषों ने राजा को आमंत्रित किया। वह भी आकर अपने स्थान पर बैठ गया। तब राजा ने पुरोहित से कहा—आओ, तुम अपने मान्य मुनियों को बुला लाओ। तब पुरोहित ने वहाँ आकर भी वर्धमानधरिजी से प्रार्थना की—स्थानीय आचार्य परिवार सहित वहाँ आगये हैं और भी दुर्लमराज नरेश पञ्चाशरीय मन्दिर में आपके पधारने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। राजा ने उन स्थानीय आचार्यों को ताम्बूल देकर सम्मानित किया है। पुरोहित के मुख से यह बात सुनकर भीवर्धमानधरिजी ने भीसुधर्मस्वामी, भीजम्बूस्वामी आदि चादह पूर्वधर युगप्रधान धरियों का हृदय में ध्यान किया और पण्डित जिनेश्वर आदि कई एक गीतार्थविषय साधुओं को साथ लेकर दृम शकुन से समा-भवन का चले। वहाँ पहुँचने पर राजा से निवर्दित स्थान पर पण्डित जिनेश्वर द्वारा विज्ञापे हुए आसन पर आचार्यभी बैठ गये। पंडित जिनेश्वर भी गुरु की आज्ञा से उनके चरणों के पास बैठ गये। राजा इन्हें भी ताम्बूल भेंट करने लगा। तब सब उपस्थित बनता के ममक गुरुवर बोले—राजन् ! साधु पुरुषों को पान खानो उचित नहीं है, क्यों कि शास्त्रों में कहा है कि -

ब्रह्मचारियतीना च विधवाना च योपिताम् ।  
ताम्बूलभक्षणं विप्रा !, गोमास्तास्र विशिष्यते ॥

[“ब्रह्मचारी, यति और विवहा स्त्रियों को ताम्बूल भक्षण करना गोमांस के समान है।”] यह सुनकर वहाँ उपस्थित विवेकवान बनसध की आचार्य के प्रांत बड़ी भद्दा उत्पन्न हुई। शास्त्रार्थ विषय के विषय में गुरुजी बोले—‘हमारी तरफ से पण्डित जिनेश्वर उच्च प्रत्युच्च करेंगे और ये जो कहेंगे, वह हमें मान्य होगा’। इस सुनकर ममी ने कहा कि ऐसा ही हो। इसके बाद पूर्व पक्ष ग्रहण करते हुए, सर्वप्रधान सराचार्य ने कहा—‘जो मुनि कर्म में निवाम करत हैं, वे प्रायः पहचरण से बाध हैं। इन पद दर्शनों में लपकाक, जरी आदि का ममावेश है, इनमें से यह कीर् भी नहीं है। ऐसा अर्थ निर्याप्य करन के लिय मृत न बास्य ल नामक पुस्तक पढ़ने के लिय उन्होंने अपने हाथ में ली। उस अवसर पर ‘भावी में मृत की तरह उपचार होता है’ इस न्याय का अवलम्बन करके भीजिनेश्वरधरि ने कहा—‘भादुर्लमराज ! आपके राज्य में क्या पूर्व-पुरुषों से निर्धारित नीति चलती है या आधुनिक पुरुषों का निर्माण की हुई नवीन नीति ?’। तब राजा ने कहा—‘पूर्व पुरुषों की बनाई हुई नीति ही हमारे देश में प्रचलित है, नवीन राजनीति नहीं।’ तदनन्तर जिनेश्वरधरि ने कहा—‘महाराज ! हमारे जैनमत में मा एवं ही पूज पुरुष वा गणधर और शतुर्दश पूर्वधर हो गये हैं, उन्हीं का पताया हुआ माग प्रमाणस्वरूप माना जाता है, दूसरा नहीं।’ तब राजा ने कहा—‘बहुत ठीक है। तदनन्तर जिने-

आसुरि ने कहा—राजन् ! हम लोग बहुत दूर देश से आये हैं, अतः हमारे पूर्वाचार्यों के बनाये हुये सिद्धान्त-ग्रन्थ हम अपने साथ नहीं लाये हैं । इसलिये, महाराज ! इन चैत्यवासी आचार्यों के मतों से पूर्वाचार्यों के विरचित सिद्धान्त-ग्रन्थों की गठरी मँगवा लीजिये, जिनके आधार पर मार्ग अमार्ग का निर्याय किया जा सक ।' तब राजा ने उन चैत्यवासी यतियों को सम्बोधित करके कहा—ये वसतिवासी मुनि ठीक करते हैं । पुस्तकें खाने के लिये मैं अपने सरकारी पुपुओं को भेजवा हूँ । आप अपने यहाँ सन्देश भेज दें जिससे इनको वे पुस्तकें सौंप दी जायें । वे चैत्यवासी यति खान गये थे कि इनका पक्ष ही प्रबल रहेगा, अतः जुपी साधकर बैठे रहे । तब राजा ने ही राजकीय पुरुषों को सिद्धान्त-ग्रन्थों की गठरी खाने के लिये शीघ्र भेजा । वे गये और शीघ्र ही पुस्तकों के गड्ढे से आये । उसे खाते ही उसी समय बह खोला गया । देवगुरु की कृपा से उसमें सबसे पहिले चतुर्दश पूर्वज प्रयत्न 'दशरूपसिद्धयत्र' हाथ में आया । उसमें भी सबसे पूर्व यह गाथा निकली—

अस्मदं पगढं खोया, भङ्गज स्यग्यासया ।

उखारभूमिसंपन्न, इत्थीपसुविवज्जियं ॥

[ साधु को ऐसे स्थान में रहना चाहिये जो स्थान साधु के निमित्त नहीं, किन्तु अन्य किसी के लिये बनाया गया हो, जिसमें खान-पान और सोने की सुविधा हो, जिसमें मछमूत्र त्याग के लिये उपयुक्त स्थान निश्चित हो और जो स्त्री, पशु, पयवग आदि से वर्जित हो । ]

इस प्रकार की वसति में साधुओं को रहना चाहिये, न कि वृक्ष मन्दिरों में । यह मुनिकर राजा ने कहा—यह तो ठीक ही कहा है । और जो सब अधिकारी लोग ये उन्होंने खान लिया कि हमारे गुरु निरुपर हो गये हैं । तब वहाँ पर सब अधिकारी लोग पटबे से लेकर भी कर शर्म भी पर्यन्त राजा से प्रार्थना करने लगे—'ये चैत्यवासी साधु तो हमारे गुरु हैं । इन लोगों ने समझा था कि—राजा हमें बहुत मानता है । इसलिये हमारे सिद्धांत से हमारे साधुओं के प्रति भी पक्षपात करेगा ही ।' पर राजा पक्षपाती नहीं था, वह तो न्यायप्रिय था । इस अवसर को देखकर त्रिनेश्वरखरि ने कहा—महाराज ! यहाँ कोई भीकरख अधिकारी का गुरु है, तो कोई मंत्री का, तो कोई पटवों का गुरु है । अधिक क्या करें, इनमें सभी का परस्पर गुरु-शिष्य का सम्बन्ध बना हुआ है । और भी हम आपसे पूछते हैं कि 'इस साठी का सम्बन्ध किसके साथ है ?' राजा ने कहा इसका सम्बन्ध मेरे साथ है । तब त्रिनेश्वरखरि ने कहा—'महाराज ! इस तरह सब कोई किसी न किसी का सम्बन्धी बना ही हुआ है । पर हमारा कोई सम्बन्धी नहीं है । यह मुनिकर राजा बोला—आप मेरे आत्म-सम्बन्धी गुरु हैं । इसके बाद राजा ने अपने अधिकारियों से कहा—अरे, अन्य सभी आचार्यों के लिये रत्नपट्ट से निर्मित साठ-साठ गादियाँ बैठने के लिये हैं और हमारे गुरु नीचे आसन पर बैठे हैं,

क्या हमारे यहाँ गादियाँ नहीं ? इनके लिये भी गादियाँ लाओ। यह सुनकर आचार्य जिनेश्वर ने कहा—'राजन् ! साधुओं को गादी पर बैठना उचित नहीं है।' शास्त्रों में कहा है—

भवति नियतमेवासंयमः स्याद्विभूषा, नृपतिककृद् ! एतल्लोकहासश्च भिक्षो ।  
स्फुटतर इह संगः सातशीलत्वमुच्चैरिति न खलु मुमुक्षो संगतं गद्दिकादि ॥

[सबलु को गादी आदि का उपयोग करना योग्य नहीं है। यह तो भुङ्कार की एक बीज है, जिससे अवश्य ही असंयम-मन का पाँचन्य होता है। इससे लोक में साधु की ईर्ष्या होती है। यह आसक्ति-कारक है और इससे सुखशीलता बढ़ती है। इसलिये हे राजन् ! इसकी इमें आवश्यकता नहीं है।]

इस प्रकार इस पद्य का अर्थ राजा को सुनाया। राजा ने पूछा—'आप यहाँ निवास करते हैं ?' चरित्री ने कहा—महाराज ! जिस नगर में अनक विपत्ती हों, वहाँ स्थान की प्राप्ति कैसी ? उनका यह उत्तर सुनकर राजा ने कहा—नगर के 'कर बिहरी' नामक मोहल्ले में एक वंशीनी पुरुष का बहुत बड़ा घर खाली पड़ा है, उसमें आप निवास करें। राजा की आज्ञा से उसी चण वह स्थान प्राप्त हो गया। राजा ने पूछा—आपका भोजन की क्या व्यवस्था है ? चरित्री ने उत्तर दिया—महाराज ! भोजन की भी बेसी ही कठिनता है। राजा ने पूछा—आप किन्तने साधु हैं ? चरित्री ने कहा—अठारह साधु हैं। राजा ने पुनः कहा—एक हाथी की सुराक से आप सब सप्त हो सकेंगे ? तब चरित्री ने कहा—महाराज ! साधुओं को राजपिण्ड कल्पित नहीं है। राजपिण्ड का शास्त्र में निषेध है। राजा बोला—अस्तु, ऐसा न सही। मिषा क समय राजकर्मचारी क साथ रहने से आप लोगों को मिषा सुलभ हो जायगी। फिर वाद-विवाद में विपक्षियों को परास्त करके राजा और राजकीय अधिकारी पुरुषों क साथ उन्होंने बसति में प्रवेश किया। प्रथम हा प्रथम गुजरात में बसतिमार्ग \* की स्थापना हुई।

३ हमारे दिन विपक्षियों न सोचा कि हमारे दोनों उपाय व्यर्थ हो गये। अब इन को यहाँ से निकालने का और कोई उपाय सोचना चाहिये। उन्होंने सोचा—राजा परसली क बल में है। वह भी बढ़ती है, बढ़ी करता है। हम लिये किसी प्रकार रानी को प्रथम करके उसके द्वारा इन्हें

\* तुलना कीजिये—

वतः प्रमृति सञ्जये, वसतीनां परम्परा। महद्भिः स्यापित इदमश्रुत नात्र मशय ॥८६॥

( प्रभावक चरित )

। इसी विषय के वचनपत्र में आचार्य जिनेश्वर की पूर्ण एवं बटार माधुमा के कारण इनकी बरम्परा यही से सुविहित विधि-सरलर पद्य के नाम से प्रामाण्य हुई। वेने-इनों का शिरोय सख्य आर विनयमागर तिसिख बलम भावी' को प्रस्तुतता।



निकलवाना चाहिये। वे सब अधिकारीमात्र अपने-अपने गुरु क कथन से आम, केले, दाख आदि फस से मरी हुई बालियां तथा कई आम्रपथ सहित सुन्दर सुन्दर बस्त्रों की मेंट लेकर रानी के पास गये जिस तरह मक लोग मगवान् क सामने बलि-मेंट-पूजा रखते हैं, उसी तरह उन्होंने रानी क आगे यह मेंट घरी। इससे रानी राक्षी हुई और उनका शान्धित काम्य करन के लिये उषत हुई। उर्ध्व समय राधा की रानी स कोई बात पुछवाने की आवश्यकता आपड़ी। राजा ने एक नीकर को—वे द्विजों प्रांत का रहने वाला था—रानी क पास भजा और कहा कि यह बात रानी से कई आभो-महाराज, कई आथा हैं। ऐसा कईकर यह तुरन्त रानी के समीप गया और राजा का प्रयोजन उसके निवेदन किया। उसने उस समय वहाँ अनक उक्त प्रकार की मेंट लेकर बैठे हुए बड़े बड़े अधिकारियों को बैठ देखकर सोचा कि यह तो हमारे देश से आये हुये आचार्यों को निकालने का उपाय सोच जाना प्रयत्न होता है। अतः मुझे भी उनका कुछ परपोषण करन के लिये राजा से कहना चाहिये ऐसा विचार करता हुआ यह राजा के पास पहुँचा और बोला—महाराज ! आपका सन्देश रानी क निवेदन कर दिया है; किन्तु महाराज ! मैंने वहाँ पर एक बड़ा कौतुक देखा। राजा ने पूछा—मर सो कैसा ? सेवक ने कहा—रानी अर्धरूप सी हो रही है। जैसे अर्धवृ मगवान् की प्रतिमा का आगे बलि-पूजा-रचना की जाती है, उसी प्रकार महारानी के आगे भी अधिकारियों ने पूजा-सामग्री का ढेर लगा रक्खा है। तरह-तरह के मूपण-भजन मेंट बढ़ाये जा रहे हैं। यह सुनकर राजा समम गया कि—‘जिन न्यायवादी मुनियों को मैंने गुरु-रूप में स्वीकार किया है, उनका इष्ट लोग अब भी पोषा नहीं छोड़ रहे हैं।’ राजा ने उसी सवादाता पुरुष को शीघ्र रानी के पास भेजकर कहा—‘तुम्हारे सामन इन लोगों ने जो मेंट घरी है, उसमें से यदि तुमने एक सुपारी भी खे ली है तो तुम मेरी नहीं और मैं तुम्हारा नहीं अर्थात् तुम्हारा इमारा कोई सम्बन्ध नहीं रह जायगा। तुम तुम्हारे और हम हमारे।’ राजा का यह आदेश सुनकर रानी मयमीत हुई और बोली—‘जो पुरुष जो बस्त्र लाया है, उसे अपने घर स जाय। मुझे इन बस्तुओं से कोई प्रयोजन नहीं है।’ इस प्रकार उन विपक्षियों का यह प्रयत्न भी निष्फल हुआ।

४ फिर उन्होंने चौथा उपाय सोचा कि—‘यदि राजा विदेशी मुनियों को बहुत अधिक मानना तो हम सब देवस्थानों को शून्य छोड़कर विदेशों में चले जायेंगे।’ यह समाचार किसी ने राजा के पास पहुँचा दिया। राजा ने स्पष्ट कहा कि ‘यदि उन्हें यहाँ रहना पसन्द नहीं है तो वे खुशी से जा सकते हैं।’ वे लोग झुंझला कर वहाँ से निकल गये। उनके जाने बाद देवमन्दिरों में पूजा के लिए श्राद्धों को पुजारी बनाकर रख लिया गया। वे धन्यवासी पति जन घटनाएँ क क मश हो देवमन्दिरों को छोड़कर चले तो गय, किन्तु मन्दिरों से बाहर रहने में उन्हें बड़ी कठिनता प्रतीत होने लगी। खल, पान, स्थान, पान, आसन, आम्रपथ आदि वैभवं-सुख-उपयोग के वे इतने परवश (दास) हो

शुके थे कि मन्दिरों क बिना उनके सारे ज्ञानन्द में इतनी महती बाधा उपस्थित हो गई, जिसको वे किसी प्रकार भी नहीं सह सक और मानापमान का त्याग करके वे लोग मित्र मित्र बहानों से एक एक करके सब ही बापिस मन्दिरों में आकर रहन लग गये ।

५ श्रीवर्धमानसूरि भी राज-सम्मानित होकर अपने शिष्य-परिवार सहित उस देश में सर्वत्र विचरना करने लगे । अब कोई भी किसी भी प्रकार से इनके सामने बोलने की समता नहीं रखता था । इसके बाद भीजिनेश्वरसूरि की योग्यता और विद्वत्ता देखकर शुभ लग्न में उन्हें अपने पाट पर स्थापित किया और उनका मार्ग पुत्रिमागर को आचार्य पद दिया एव उनकी बहिन कम्पाणमति को धेष्ट प्रवर्तिनी पद दिया गया । फिर इस तरह ग्राम-ग्रामन्तरो में विचरना करते हुये आचार्य जिनेश्वरसूरि ने जिनचंद्र, अमयदेव, घनेश्वर, हरिमद्र, प्रमत्तचंद्र, धर्मदेव, सहदेव, सुमति आदि अनेकों को दीक्षा देकर अपना शिष्य बनाया । इन दिनों श्रीवर्धमानसूरिकी का शरीर वृद्धावस्था के कारण शिथिल हो गया था । अतः आठ तीर्थ में सिद्धान्त-त्रिविध अनशन लेकर देवगति को प्राप्त हुए ।

६ तत्पश्चात् जिनेश्वरसूरि ने जिनचंद्र और अमयदेव को गुणपात्र ज्ञानकर सूरि पद से भिक्षुपित किया और वे साधना करते-करते क्रम से युगप्रधान पद पर आसीन हो गये । घनेश्वर-अनिकट बिनमद्र भी नाम था-को तथा हरिमद्र को सूरि पद और धर्मदेव, सुमति, विमल इन तीनों को उपाध्याय पद से अलंकृत किया । धर्मदेवोपाध्याय और सहदेवगति ये दोनों मार्ग थे । धर्मदेव उपाध्याय ने दोनों मार्ग हरिसिंह और सर्वदेवगति को एवं पण्डित सोमचंद्र को अपना शिष्य बनाया । सहदेवगति ने अशोकचंद्र को अपना शिष्य बनाया, जो गुरुजी का अत्यन्त प्रिय था । उसको जिनचंद्रसूरि ने अच्छी तरह शिक्षित करके आचार्य पद पर आरूढ़ किया । इन्होंने अपने स्वान पर हरिसिंहआचार्य को स्थापित किया । प्रमत्तचंद्र और देवमद्र नामक दो सूरि और थे । इनमें देवमद्रसूरि सुमति उपाध्याय क शिष्य थे । प्रमत्तचंद्र आदि चार शिष्यों को अमयदेवसूरिकी ने न्याय आदि शास्त्र पढ़ाये थे । इसीक्षिप बिनवद्वामगति ने विप्रकृष्टीय प्रशस्ति में लिखा है—

सत्तर्कन्यायवर्धार्चितचतुरगिरः श्रीप्रसन्नेन्दुसूरि,  
सूरिः श्रीवर्धमानो यतिपतिहरिभद्रो मुनीद्देवभद्र ।  
इत्याद्याः सर्वविद्यार्णवसकलभुवः सञ्चरिष्यारुकीर्ति,  
स्तम्भायन्तेऽधुनापि श्रुतचरणरमारजिनो यस्य शिष्याः ॥

[ तर्क न्याय वर्धा से भूषित चतुर्णाथी वस्त्रे प्रमत्तचन्द्रसूरि, वर्धमानसूरि, हरिमद्रसूरि, देवमद्र सूरि आदि के विद्यागुरु अमयदेवआचार्य थे । ये समस्त-विद्यारूपी समुद्र क पान करने में अगस्त्य

अपि के समान थे । ऊपर फैलने वाली कीर्ति के आधार स्वप्न थे और ज्ञान-चारित्र्य की लक्ष्मी से सुशोभित थे ।]

७ श्रीविनेश्वरसहि बहाँ से बिहार करके आशापन्थी नामक नगरी में गये । वहाँ आकर कई दिन व्याख्यान हुए । व्याख्यान में बड़े २ विचित्रक पुरुष उपस्थित हुआ करते थे । वहाँ क महाराज ने अनेक अर्थों एवं वर्णन से सयुक्त वैदग्ध्यपूर्ण लीलावती कथा नामक ग्रन्थ की रचना की । वहाँ से द्विपिठ याया । ग्राम में गय । आपके पास अधिक पुस्तकें नहीं थीं । इसलिए गाँव के निवासी चैत्यवासी आचार्यों से व्याख्यानार्थ पुस्तकें माँगी । उन चैत्यवासियों का अन्तःकरण ईर्ष्या-द्वेष से मलिन था, अतः उनसे पुस्तकें नहीं दीं । विनेश्वरसहि दिन के उपचार्य में रचना करत और प्रातःकाल व्याख्यान करते । वतुर्मास में कथावाचकों के हितार्थ 'कथानकमेश' की रचना की\* । उन दिनों उसी ग्राम में कुछ साध्वियों के साथ मरुद्वी नामवाली प्रवर्तिनी आई हुई थीं । उनसे वहाँ पचास दिन का संभार लिया था । श्रीविनेश्वरसहिजी ने समाजिकता में सत्सेवना पाठ सुनाया और कहा था—'आर्ये ! इस शरीर को त्याग कर दूसरे मन में आप आँ उत्पन्न हों, वह स्थान हमें वतला दीधियेगा ।' उसने भी कहा—'अपरय निवेदन करूँगी ।' पर-परमेष्ठी का ध्यान करती हुई वह स्वर्ग को सिंधार गई । वहाँ से परमार्थिक देखसोक में उत्पन्न हुईं । उन्हीं दिनों एक भावक युगप्रधान आचार्य का निश्चय करने के लिए लखन्यन्त पर्वत के शिखर पर जाकर उपवास करने लगा । उसकी यह प्रतिज्ञा थी कि जब तक कोई भी दबता मुझे युगप्रधान नहीं वतला देगा, तब तक मैं निराहार रहूँगा । सौभाग्य से उन्हीं दिनों अमरशान्ति नामक भक्त—श्री भगवान् का परिवारक था—तीर्थंकर बन्दना क लिये महाविदेह क्षेत्र में गया था । वहाँ पर देह-रूप धारिणी मरुद्वी ने उसके द्वारा विनेश्वरसहिजी के पास यह सन्देश भेजा—

मरुद्वेषि नाम अज्जा गणियाणी जा आसि सुम्ह गच्छमि ।  
सगमि गया पढमे, देवो जाओ महिद्वीओ ॥  
टफकलर्यमि त्रिमाणे तुसागराओ सुरो समुप्पसो ।  
समणोस सिरिजियोसरसूरिस्त इमं कहिउज्जासु ॥  
टफकउरे जिणवदणनिमित्तमिहागएण सदिट्ठ ।  
चरयामि उज्जमो भे कायवो किं व सेसेसु ॥

[ आपके गण्ड्य में श्री मरुद्वी नामक प्रवर्तिनी आया थी, वह प्रथम स्वर्ग में जाकर महार्थिक देख हुई है । वह टफकननामक विमान में है और दो सागर आपुष्य के परिमाण से उत्पन्न हुई है ।

\* वर्तमान में इसे हीडगणा कहत है । जो बाबपुर स्टेट के पठसर (बिबोजन) में है ।

\* दिधी धेन प्रथमासा से मुनि जिनविजय द्वारा सम्प्रतिष्ठ रथापमूर्त्ति यह सम्प्रतिष्ठ हो चुकी है ।

सुनीन्द्र जिनेरवरसूरि को यह समाचार मेरी ओर से कह देना और कहना कि—महर्दिक देव-देहघारिणी मरुदेवी जिन-वन्दना के लिये टक्कलपुर में आई थी, वहाँ यह सन्देश दिया है कि आप चारित्र्य के लिये अधिक से अधिक उद्यम करें। शेष अन्य कर्षों से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। ]

उस प्रकाशान्ति नामक यक्ष ने यह सन्देश जिनेरवरसूरि को नहीं सुनाया; किन्तु गिरिनार पर्वत के शिखर पर युगप्रधान का निरक्षय करने के लिये उपवास करने वाले उस भावक को उठाय़ा और उसके पहिने के बस्त्र पर म० स० ट० स० ट० ४० ये अक्षर लिख दिये और कहा कि नगर में जाओ और वहाँ पर जिस आचार्य के हाथ से बोनो पर ये अक्षर मिट जायें, उसी को युग-प्रधान आचार्य समझ लेना। वह भावक वहाँ से चलकर अनेक शहरों में गया और अनेक आचार्यों को वे अक्षर दिखाये, किन्तु उनके तत्पर्य को कोई भी नहीं जान सका। बाद में सौमग्य से वह उस ग्राम में पहुँचा वहाँ जिनेरवरसूरि बिराज रहे थे। सूरिजी ने उन अक्षरों को बाँध कर जान लिया कि तीन गाथाओं के ये आदि अक्षर हैं। फिर उनको बस्त्र पर स जो दिया और सन्देश क रूप में मरुदेवी की कही हुई तीनों गाथायें ज्यों की त्यों लिख दीं। इस बात को देखकर उसको यह निश्चय हो गया कि—ये ही युगप्रधान आचार्य हैं और मुख्य रूप से उनको अपना गुरु स्वीकार किया। इस प्रकार भगवन् महावीर द्वारा प्रदर्शित धर्म को अनेक स्वामी पर अनेक प्रकार से प्रदीप्त करने भी जिनेरवरसूरिजी देवसोक पधार गये।

### आचार्य जिनचन्द्रसूरि

८ आचार्य जिनेरवर क पश्चात् सूरियों में श्रेष्ठ जिनचन्द्रसूरि हुये, जिनक अष्टादश-नाममाला का पाठ तथा अर्थ सब अच्छी तरह ज्ञिद्धाद्य उपस्थित था। सब शास्त्रों के पारङ्गत इन महाराज ने अठारह हजार प्रमाण वाली सभे गरुडशास्त्रा की स० ११२५ में रचना की। यह ग्रन्थ मध्य जीवों के लिये मोक्षरूपी महल का सोपान सा है। आपने कावालिपुर\* में बाकर भावकों की समा में—'धीरदक्षमात्रस्सय' इत्यादि गाथाओं की व्याख्या करत हुए जो सिद्धान्तसंग्रह कहे थे, उनको उन्हीं के शिष्य ने लिख कर तीन सौ श्लोकों क परिमाण का जिनचर्या<sup>१</sup> नामक ग्रन्थ तैपार कर दिया, जो भावक समाज के लिये बहुत ही उपकारी सिद्ध हुआ है। वे जिनचन्द्रसूरि भी अपने क्षल में जिनधर्म का यथार्थ प्रकाश फैलाकर देवगति को प्राप्त हुये।

† इसका संशोधन आचार्य देवमद्र और भी जिनचन्द्रमगधि ने किया था।

\* कावालिपुर 'जाबोर' को कहते हैं, जो वर्तमान में जोधपुर स्टेट में है। इसका 'रवर्गिरि' नाम भी कई मन्त्रों में मिलता है।

१ सम्भवतः यह ग्रन्थ प्राप्त नहीं है।

## आचार्य अभयदेवसूरी

६ तदनन्तर—नवाब्दी व्याख्याकार युगप्रधान भीमद्वय अभयदेवद्वयि हुए। इन्होंने नौ अष्टों की व्याख्या करने में जो अपनी बुद्धि की कुशलता प्रकट की है उसका स्वरूप इस प्रकार है—साधुओं की वर्षा में अग्रगण्य भी अभयदेवद्वयिबी क्रम से ग्रामानुग्राम विहार करते हुये शम्भा का नामक ग्राम में गये। वहाँ पर किसी रोग के कारण आपका शरीर अस्वस्थ हो गया। जैसे जैसे औषधि आदि का प्रयोग किया गया वैस वैस पटने के बजाय रोग अधिक से अधिक बढ़ता ही गया। बरा भी आराम नहीं हुआ। चतुर्दशी के दिन कई योजन दूर रहने वाले भावक भी महाराज के साथ पाषाणिक प्रतिक्रमण करने को आया करते थे। महाराज ने किसी समय अपने शरीर को अधिक रोगग्रस्त धानकर सब भावकों को बुलाकर आदेश दिया—‘आगामिनी चतुर्दशी के दिन हम संघारा लेंगे। इसलिये मिथ्या—दुष्कृत—दान समत—सामबा के बास्ते आप लोगों की उपस्थिति आवश्यक है।’ छरिबी के इस निश्चय के बाद त्रयोदशी के दिन अर्धरात्रि के समय शासनदेवो प्रगट हुई और उसने छरिबी से कहा—‘सोठे हो या जागते हो?’ दुर्बलताका मन्द स्वर से छरिबी ने कहा—‘बागला हूँ’। देवी ने कहा—‘शीघ्र उठिये और उत्तमकी हुई इस नौद्वयकपी कृष्णों को सुसम्भयो’ छरिबी बोले—‘समर्थ नहीं हूँ ‘मौ’।’ देवो बोली—‘क्यों, शक्ति क्यों नहीं है?’ अमी तो बहुत क्यों एक भीमिष्ठ रोगो। नव अष्टों की व्याख्या तुम्हारे ही हस्तों से होगी।’ आचार्य ने कहा—‘मेरे शरीर की तो यह अवस्था है, मैं व्याख्या कैसे कर सकूँगा?’ तब देवी ने उन्हें उपदेश दिया—‘सम्मनकपुर’ में सेही नदी के किनारे छाकन के बस्ते पत्तों के नीचे पार्श्वनाथ मन्वान की स्वयम्भू प्रतिमा विद्यमान है। उस प्रतिमा के आगे मक्तिमाध से स्तपना कीजिये। आपका शरीर स्वस्थ हो जायगा। ऐसा कह कर देवी अदृश्य हो गई। प्रसन्नचित्त होते ही गुरुजी अन्तिम मिथ्या-दुष्कृत दान दिये—इस अभिप्राय से स्थानीय और बाहिर के रहने वाले सब भावक एकत्रित होकर आये और भीष्मकी को बन्दना की। पूज्यकी ने कहा—‘हम पार्श्वनाथ मन्वान की बन्दना करने के लिये स्तम्भनकपुर जायेंगे। अब यहाँ नहीं रहेंगे और अब संघारा भी नहीं किया जायगा।’ छरिभर के विचार में सहसा परिवर्तन देखकर भावकों को विचाल हो गया कि महाराज को अस्वस्थ ही किसी न किसी शासन देव का उपदेश हुआ है। उन्होंने निवेदन किया—‘सम्भवतः।’ हम लोग भी भगवद्भन्दन के लिये आपके साथ चलेंगे। पात्रार्थी भावकों का संघ तैयार हो गया। महाराज के लिये यान का प्रबन्ध किया गया। हम शकून में सारा ही संघ वहाँ से रचना हो गया। रोग के कारण महाराज की भूख बन्द हो गई थी। परन्तु देवगुरु की कृपा से मार्ग में पहले ही प्रयाण में महाराज की भूख कुछ-कुछ बाधत हुई और पद रसों की अभिघाता होने लगी। चलते-चलते अब

बबलका नामक ग्राम में पहुँचे, वहाँ तक तो धरित्री का सब रोग दूर होकर शरीर स्वस्थ हो गया। स्वस्थ होने पर आचार्यभी न बाहन का त्याग कर दिया और पैदल ही यात्रा करते हुये खमात पहुँचे। वहाँ पर आत्मक लोग भी पार्षनाथ मगवान् की प्रतिमा को शासन देवी के करने के अनुसार खोजने लगे। परन्तु उन्हें कहीं भी नहीं दिखाई दी। इतना होकर गुरुजी से आकर पूछा— 'मगवान्! प्रतिमा किस स्थान पर है?' गुरुजी ने कहा— 'ढाक के पचोंके डेर के नीचे देखो।' गुरुजी की आज्ञानुसार पचों की इटाकर सबने देदीप्यमान प्रतिमा देखी। वहाँ के निवासियों से मकडबन्द को ज्ञात हुआ कि यहाँ पर एक गाय प्रतिदिन आकर मगवान् की प्रतिमा को स्नान कराने के लिये दूध म्हरती थी। मगवान् की प्रतिमा के दर्शन करके आत्मक बड़े आनन्द विमोह हुये और गुरुजी से आकर निवेदन किया— 'मगवान्! आपके बतलाये हुए स्थान पर प्रतिमा प्राप्त हो गई है। भावकों के ये बचन सुनकर आचार्य मगबन्दना के लिय चले। वहाँ प्रतिमा के दर्शन करके मक्तिपूर्वक स्तुति करते हुये आचार्य जी ने खड़े-खड़े ही शासन देवी की सहायता से 'धुप तिहुपस' आदि बचीस पद्यों का स्तोत्र की रचना की। इस स्तोत्र में अन्तिम दो गायार्थें देवताओं का आकर्षण करने वाली थी। इसलिये देवताओं ने आचार्य महाराज से कहा— 'मगवान्! नमस्कार सम्बन्धी तीस गायार्थों के स्तोत्र-पाठ से ही हम प्रसन्न होकर पाठ करने वालों का कल्याण करेंगे। अन्तिम दो गायार्थों के पाठ से तो हमको प्रत्यक्ष उपस्थित होना पड़ेगा, जो हमारे लिये कष्टदायी होगा। अतः स्तोत्र में स अन्त की दो गायार्थों का सहाय्य कर दीजिये।' देवताओं के अनुरोध से आचार्य ने स्तोत्र में से वे दो गायार्थें कम कर दीं। वहाँ पर आचार्य महाराज ने सारे समुदाय के साथ बन्दना की और अनेक उपचारों से विस्तारपूर्वक पूजा कर उस प्रतिमा की वहाँ स्थापना की और वहाँ पर एक सुन्दर विशाल देव-मन्दिर का निर्माण किया गया। वही से विश्व में श्री अमयदेवदरि द्वारा स्थापित सब मनोरथों का पूर्ण करने वाला यह भी पार्षनाथ स्वामी का तीर्थ प्रसिद्ध हुआ।

१० वहाँ से बिहार कर आचार्य महाराज पाटख शहर में आ गये। वहाँ पर स्वर्गीय विनेश्वरदरि द्वारा प्रतिष्ठित 'करडिहड़ी' धर्म में रह। सब प्रकार की सुविधा देखकर स्थानाङ्क, समवायाङ्क, विवाहप्रशस्ति आदि नौ अङ्गों की टीका का प्रणयन प्रारम्भ किया। व्याख्या करते समय कहीं पर जब-जब उन्हें सन्देह होता तो वे अपा-विभवा-अयन्ती-अप्राजिता नामक शासन देवियों का स्मरण करते थे। वे दविर्पा महाविदेह चर में विराजमान तीर्थकर मगवान् से पूछकर तब-तब उनका सन्देह निवारण करती थीं।

११ उन्हीं दिनों में सैत्यराशी आचार्यों में प्रधान श्रोशाचार्य ने भी सिद्धान्त-व्याख्या प्रारम्भ की। अपना २ पुत्रा लेकर समा आचार्य उनका पाठ श्रवण करने आने लगे। महाराज

अमयदेव खरित्री भी वहाँ जाया करते थे। द्रोणाचार्य आये हुये सब आचार्यों को अपने कान्त आसन पर बिठसाता था। सिद्धान्तों की व्याख्या करते समय जिन जिन गोपार्यों में द्रोणाचार्य के सन्देह होता था, वहाँ वे इतने मन्द स्वर से बोलते थे कि दूसरों को कुछ सुनाई नहीं देता था यह देखकर दूसरे दिन अमयदेवखरित्री ने व्याख्यान करने योग्य प्रकरण की सुन्दर व्याख्या का द्रोणाचार्य को साक्षी और कहा "इस देखकर इसके अनुसार आप सिद्धान्त की व्याख्या करें। जो कोई भी उस व्याख्या को देखता था, वह आश्चर्य-चकित हो उठता था। अतः द्रोणाचार्य व जब उस व्याख्या को पढ़ा तो उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। वे सोचने लगे—“यह व्याख्या गुरुवरों की बनाई हुई है या अमयदेव खरित्री की ?” जब उन्हें मालूम हुआ कि अमयदेवखरित्री की ही बनाई हुई है; तब तो द्रोणाचार्य के मन में अमयदेवखरित्री के प्रति सम्मान का भाव बहुत बढ़ गया। इतने दिन व्याख्यान का समय जब अमयदेवखरित्री व्याख्या भण्ड्य करने आये तब द्रोणाचार्य गरी से खरित्री होकर उनका स्वागत करने के लिये सम्मुख गये। अपने आचार्यों के द्वारा विधिमार्गानुयायी आचार्यों का प्रति प्रतिदिन इस प्रकार आदराचिन्म्य देखकर वहाँ आने वाले सब चैत्यवासी आचार्य रूठ हो गए। समास्यल से उठकर सबक सब नगर में आकर करने लगे—“अमयदेवाचार्य में हमसे कौन सा गुण अधिक है, जिसके कारण हमारे प्रधान आचार्य भी उसका इतना आदर करते हैं। ऐसा करने से हमारी प्रतिष्ठा तो सर्वथा नष्ट ही हो गई। और फिर हम तो कुछ भी नहीं रहे।” द्रोणाचार्य तो बड़े बुद्धिमान् और गुणों के पचपती थे, उन्होंने एक नूतन श्लोक बनाकर मठों में सब चैत्यवासी आचार्यों के पास मित्रवाया —

आचार्याः प्रतिसन्न सन्ति महिमा येयामपि प्राकृतैः—

मर्तु नाऽभ्यवसीयते सुखरिसेस्तेषा पवित्रं जगत् ।

एकेनाऽपि गुणेन किन्तु जगति प्रज्ञाभना साम्प्रतं,

यो भवेऽभयदेवसूरिसमर्ता सोऽस्माकन्मावेधताम् ॥

[ आजकल पर-पर में अनेक आचार्य हैं, जिनकी महिमा को भी साधारण पुरुष सबक नहीं सकते और जो अपने सचरित्रों से सारे संसार को पवित्र कर रहे हैं। यद्यपि यह सब कुछ सत्य है, फिर भी मैं विद्वान् लोगों से पूछता हूँ कि इस समय जगत् में कोई एक आचार्य भी ऐसा बल-साधक जो किसी एक गुण में भी इन अमयदेवखरित्री की समानता कर सकता हो ? ]

इस श्लोकका अर्थना को पढ़कर सब आचार्य ठंडे पड़ गये। तदनन्तर द्रोणाचार्य ने अमयदेवखरित्री से कहा—“आप सिद्धान्तों की जो इच्छियां बनाईंगे उनका संरक्षण और संशोधन मैं करूँगा।”

वहाँ पर रहते हुए श्रीअमपदेवधरिजा ने परिग्रह-वारो दो गृहस्थों को प्रतिबोध देकर उनको सम्यक्त्वी द्वादशव्रतधारी बनाया । वे दोनों ही शान्ति क साथ भावक धर्म का पालन करके देवलोक में पहुँचे । देवलोक से तीर्थकर बन्दना के लिये महाविदेह क्षेत्र में गये । वहाँ पर सीमन्धर स्वामी और युगमन्धर स्वामी की बन्दना की । उनके पास से धर्म सुनकर पूछा—“हमार गुरु श्रीअमपदेव धरिजी कौन से मय में माध पचारेंगे ?” दोनों स्वामियों ने कहा—“तीसरे मय में मुक्ति जायेंगे ।” यह सुनकर वे दोनों देव बड़ प्रसन्न हुए और अपने गुरु श्री अमपदेवधरि के पास जाकर बन्दना करके भगवान की कही हुई बात सुनाई । और वहाँ से वापिस लौटते समय उनने इस अग्रिम गोथा का उच्चारण किया—

भण्णिथं तित्थयरेहिं महाविदेहे भवमि तइयमि ।

तुम्हाण चेष गुरवो मुत्ति सिग्घं गमिस्संति ॥

[ महाविदेह क्षेत्र में तीर्थहूतों ने यह बात कही है कि तुम्हारा गुरु तीसरे मय में शीघ्र ही मुक्ति को जायगा । ] इस गाथा को स्वाध्याय करती हुई महाराज की एक साध्वी ने सुना । उसने आकर वह गाथा महाराज को सुनाई । महाराज ने कहा—“हमको पहिले ही देव सुना गये ।”

उदनन्तर किसी समय वहाँ से श्रीधरिजी विहार करके पाण्डु उदा नामक ग्राम में पधार । वहाँ पर महाराज क बहुत से भक्तसोपासक मक्त थे । उनके कई जहाज समुद्र में चला करते थे । उन्होंने जहाजों को किरान क माछ से उदा कर विदेश में भेजा था । वहाँ यात्री लोगों की जुबानी अफवाह—किमदन्ती—सुनाई दी की किराने के मरे हुये जहाज डूब गये । इस दुःखद बात को सुनकर भावक अत्यन्त उदास हो गये । और इसी कारण वे उस दिन भी अमपदेवधरिजी की बन्दना करने को ठीक समय पर नहीं जा सके । श्रीधरिजी ने किसी कमखषण उन्हें याद किया तब वे गये और बन्दना करके बैठ गये । तब महाराज ने उनसे बन्दनार्थ आने में देर हो जाने कारण पूछा । भावक बोले—महाराज ! जहाजों के डूबने की किमदन्ती सुनकर हम लोग बहुत दुःखित हो उठे हैं और यही कारण है कि आज हमारा बन्दना करने की आना नहीं हुआ । महाराज ने उनका यह कथन सुनकर जहाज सम्बन्धी कुछ बात जानने के लिये एकदम विष से चणमर कुछ ध्यान लगाया । फिर भावकों से कहा—“आप लोग इस विषय में चिन्तित न हों । कोई चिन्ता करने की बात नहीं है ।” फिर दूसरे दिन किसी मनुष्य ने आकर समाचार सुनाये कि “आप लोगों के जहाज सकुशल समुद्र पार पहुँच गये हैं ।” इस शुभ समाचार को पाकर भावक लोग सब मिलकर महाराज क पास आये और निवेदन किया—“भगवन् ! आपने जो आशा की थी वह सत्य हुई । इस किराने के व्यापार में जितना लाभ होगा उसका आधा द्रव्य हम लोग सिद्धांत की पुस्तकों की लिखाई में व्यय



करेगा। "इससे आपकी मुक्ति होगी। यह सर्वथा युक्त है। आपका यह कर्तव्य ही है।" इस तरह महाराज ने उनकी सराहना-प्रशंसा की। उन लोगों ने प्रोत्साहित होकर भीष्मदेवद्वारि विरचित सिद्धांत-ग्रंथ की अनेक पुस्तकें लिखवाईं। वहाँ से बिहार करके भीष्मित्री बापस पाठवा आ गये। उन दिनों चारों दिशाओं में यह प्रसिद्ध हो गई कि श्री भीष्मदेवद्वारिजी सब सिद्धांतों के पारंगत हैं।

### आचार्य जिनवद्वामसूरि

१३ उस समय में आशि का नगरी में शैत्यवासी जिनेश्वरद्वारि नाम के एक मठाधीश आचार्य रहते थे। उस नगरी में जितने आचार्यों के वास्तव्य थे, वे सब उनके पास मठ में पढ़ते थे। उन बालकों में एक भास्करपुत्र का नाम जिनवद्वाम था। उसका पिता उसे बचपन में ही छोड़कर स्वर्ग सिंघार गया था। उसकी माता ने ही उसका पालन पोषण किया था। जब उसकी आयु पढ़ने योग्य हुई; तब माता ने उसको अन्य बालकों के साथ पढ़ने के लिये मठ में भेजना शुरू किया। अन्य सहपाठियों की अपेक्षा वह अधिक पाठ याद कर लेता था। एक दिन जब वह—जिनवद्वाम—मठ से पढ़कर घर आ रहा था तो मार्ग में उसको एक टीपना मिला, जिसमें सर्पाकार्यणी तथा सर्प-मोक्षणी नामक दो विद्याएँ लिखी हुई थीं। उसमें बताई हुई विधि के अनुसार जिनवद्वाम ने पहले पहली विद्या के मंत्रों का उच्चारण किया। उसके प्रभाव से सब दिशाओं से सर्प आने लगे, उन्हें देखकर विद्या के प्रभाव को जानकर वह बरा भी नहीं चढ़ाया और दूसरी सर्पमोक्षणी विद्या का यथाविधि उच्चारण करके उन आठे हुये सर्पों को जैसे ही बापस लौटा दिया। यह समाचार जब गुरु जिनेश्वरद्वारिजी ने सुना तो उनका हृदय उस बालक पर आकर्षित होने लगा और वे जान गये कि यह बालक बड़ा गुणी है। तब उनने किसी भी प्रकार से उसको अपने अधिकार में ले लेने का एह संकल्प किया। छरिजी ने अनेक प्रलोभन देकर उस बालक को अपने घर में करके उसकी माता को मसुर बचनों से समझा-बुझा कर पाँच सौ रुपये दिसाये और जिनवद्वाम को अपना शिष्य कर लिया। उसे छन्द, अलङ्कार, काव्य, नाटक, ज्योतिष तथा लघुशास्त्रि सब विद्याओं का अध्ययन कराया। किसी समय उन आचार्यजी का ग्रामान्तर जाने का सयोग उपस्थित हुआ। जाते समय मठ आदि के सरसभ्य का भार जिनवद्वाम को सौंप कर बोले—'सावधानी से धार्य करना। हम भी अपना धार्य सिद्ध करके शीघ्र ही बापस आते हैं।' शिष्य ने प्रार्थना की—'भीमान् निश्चिन्त पचारं और धार्य समाप्त करके शीघ्र ही बापस लौट आऊँ।' गुरुजी के बड़े जाने बाद दूसरे दिन ही जिनवद्वाम ने सोचा, 'मण्डार में पुस्तकों की भरी हुई पेनी भरी है। उसे खोलकर देखना चाहिए कि पुस्तकों में क्या क्या लिखा है। क्योंकि पुस्तकों से ही सब प्रकार का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।' यह विचार करके उसने पटी खोलकर सिद्धान्त की एक पुस्तक निकाली। उसमें लिखा हुआ देखा—

साधु को गृहस्थों के घरों से ४२ दोषों से रहित मिथा-मधुकरी श्रुति से-लेकर संयम पालने के लिये देह-निर्वाह करना चाहिये । इस प्रकार क विचारों को देखकर उसने सोचा, 'संयम और आचार ही मुक्ति में ले जाने वाला मार्ग है । इमार वर्तमान आचार से तो हमें मुक्ति की प्राप्ति नितान्त दुर्लभ है ।' इस प्रकार गम्भीर श्रुति से विचार करते हुये जिनबद्धमजी ने पुस्तक को वैसे की तैसी पचा-स्नान घर दी और मठ के संवाहन क कार्य में पूर्ववत् संलग्न हो गये । कुछ दिन बाद गुरुजी आ गये और मठ को पहले से सुखस्थित देखकर बड़े प्रसन्न हुये उनकी प्रशंसा करने लगे कि, 'यह बड़ा चतुर है । वास्तव में वैसे हमने सोचा है यह वैसा ही निकलेगा । किन्तु इसने सब विधायें सिद्धान्त के बिना पढ़ी हैं; और वह सिद्धान्त-विद्या इस समय अमयदेवध्वरिजी के पास सुनते हैं । इसलिये इस जिनबद्धम का उनके पास भेज कर सिद्धान्तों का ठीक ज्ञान प्राप्त कराना चाहिये और तदनन्तर इसको अपनी गरी पर बिठा देना चाहिये ।' ऐसा निश्चय करके मोजन आदि प्रबन्ध के लिये पाँच सौ मोहरें देकर और सेवा के लिये जिनशेखर नामक द्वितीय साधु क साथ जिनबद्धम को सिद्धान्त-ज्ञानार्थ श्रीअमयदेवध्वरि के पास में भेज दिया । अशहिलपुर पाटण जाते हुये ये दोनों साधु मार्ग में रात्रि के समय मरुकोट में माण्ड भावक के बनाये जिन मन्दिर में प्रतिष्ठा की । वहाँ से चलकर पाण्ड्य पहुँचे और वहाँ लोगों से अमयदेवध्वरिजी का स्थान पूछकर उनकी बसति पहुँचे । गुरुजी के दर्शन करके मक्ति-भद्रा के साथ उनकी वन्दना की । गुरुजी को सामुद्रिक चूडामणि का ज्ञान था । अतः इसको देखते ही शारीरिक लक्षणों से जान गये कि—यह कोई भय्य जीव है । ध्वरिजी ने पूछा—'तुम्हारा वहाँ आगमन किस प्रयोजन से हुआ है ?' जिनबद्धम ने उत्तर दिया—'भगवन् ! हमारे गुरु ने सिद्धान्तवाचनरसास्वादन के लिये मकरन्द क सोमी अमर के सप्ताह मुझको भीमान् के चरणकमलों में भेजा है ।' इस उत्तर को सुनकर अमयदेवध्वरि ने विचार किया, 'यद्यपि यह वैश्यवासी गुरु का शिष्य है, तथापि योग्य है । इसकी योग्यता, नम्रता और शिष्टता देखकर सिद्धान्त-वाचना देने को हृदय स्वतः चाहता है; क्योंकि शास्त्र में बतलाया है—

मरिज्जा सह विज्जाप फाल्गमि आगप त्रिउ ।

अपत्त च न धाइज्जा पत्त च न विमाणप ॥

[ अरतान समय के जाने पर विद्वान् मनुष्य अपनी विद्या के साथ मले ही मरे, परन्तु कृपाव को शास्त्र-वाचना न कराये और पात्र क जाने पर उसका वाचना न कराके अपमान न करें । ]

इस प्रकार शास्त्रीय भाष्यों से पूर्वापर का विचार करके ध्वरिजी ने उससे कहा—जिनबद्धम ! तुमने बहुत अच्छा किया जो सिद्धान्तवाचना के लिए मरे पास आया । तदनन्तर अच्छा दिन देखकर महाराज ने उसको सिद्धान्त-ग्रन्थ पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया । गुरुजी त्रिउ समय सिद्धान्तवाचना देते

उस समय जिनबल्लभ बड़ा प्रसन्न होकर एकत्र चित्त से सुधारस की तरह उपदेशामृत का पान करता था। उसको ज्ञानर्षिपासा और उपदेशामृत-प्रदय करने की अद्भुत प्रतिभा को देखकर गुरुजी ने बड़ी प्रसन्नता मानी। आचार्यभी न प्रसन्न होकर इस प्रकार सिद्धान्त वाचना देना प्रारम्भ कर दिया कि जिससे सहज ही थोड़ा ही समय में सिद्धान्तवाचना परिपूर्णा हो गई।

१४ उन्हीं दिनों में कोई एक ज्योतिषी महाराज का अत्यन्त भक्त हो गया। उसने महाराज से प्रार्थना की—'यदि आपका कोई योग्य शिष्य हो तो मुझे दीजिये। मैं उसको अच्छा ज्योतिषी बना दूंगा।' महाराज ने उसका यह कथन सुनकर अपने योग्य शिष्य इस जिनबल्लभगणेश को ज्योतिष पढ़ाने के लिये उसके पास भेज दिया। ज्योतिषी न बड़ी उदारता से अपनी योग्यता के अनुसार उसको ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान कराया। यथाविधि विद्याध्ययन पूर्ण कर लेने के अनन्तर जिनबल्लभ जी न अपने आशिकनगरीस्य दीक्षा गुरुजी के पास चले जाने की इच्छा की और वहाँ से विहार करने कलिय शुभ सुहृत् निकल कर विद्यागुरु भी समयदबदबरी को महाराज से ज्ञान के लिये आज्ञा मांगने गये। गुरुजी ने जाने की आज्ञा देते हुये आदेश दिया—'मैंने सारे सिद्धान्त अपनी जानकारों के अनुसार तुम्हें दे दिये हैं। तुम्हें अपने जीवन में सिद्धान्त के अनुसार ही आचरण करना चाहिए। इ वत्स! शास्त्र के प्रतिकूल किसी भी प्रकार का व्यवहार मत करना।' जिनबल्लभगणेश ने कहा—'मगधन्! भीमान् की आज्ञा के अनुसार ही सदा बर्ताव करूँगा। गुरुजी की आज्ञा पाकर जिनबल्लभजी शुभ दिन देख वहाँ से चल कर—जिस मार्ग से पहल गये—उसी मार्ग से फिर मरुकेट\* आ पहुँचे। वहाँ पर उ होने देवमन्दिर में सिद्धान्तों के अनुकूल एक विधि लिखी; जिससे अविधि शत्य भी मुक्तिप्राप्तक विधिचैत्य बन सक्या है। वह विधि यह है—

अत्रोत्सूत्रजनक्रमो न च न च स्नात्रं रजन्या सदा,  
साधुना ममताश्रयो न च न च स्त्रीणा प्रवेशो निशि।  
जातिज्ञातिकदाग्रहो न च न च श्राद्धेषु ताम्बूलमि-  
त्याज्ञाप्रेयमनिक्षिते विधिकृते श्रीजेनचैत्यालये ॥

[ मन्दिरों में अत्रिरोषि मनुष्यों का आना-जाना अच्छा नहीं है। रात में स्नात्र-महोत्सव नहीं करना चाहिए। साधुओं को ममता के स्थान-मन्दिरों में नहीं रहना चाहिए। रात्रि के समय मन्दिरों में शिष्यों का प्रवेश सिद्धान्त विरुद्ध है। मन्दिरों में इच्छे होकर अग्नि-बिरादरी सम्बन्धी विवाद-भगवत् करना सत्यता अनुचित है। मन्दिर में कदा भी भारत वान न छाव। मन्दिर पर स्त्री का एकपिपत्य

नहीं रहना चाहिये, वह सार्वजनिक सम्पत्ति है। विधिपूर्वक स्थापन किये हुये भी जिन-मन्दिर के लिए-उपयुक्त आश्वासन-शास्त्रविहित है। अमिप्राय यह था कि इस विधि का पालन करना चाहिये, जिससे धर्म सुकिसाधक बने। ]

कदनन्तर वे अपने गुरु भीजिनेश्वरचरित्रिणी के पास गये। और 'आशिका' नगरी से तीन कोश दूरी पर माइयड नामक ग्राम में जाकर ठहरे। वहाँ एक पुरुष को हस्तक्षेप देकर गुरुजी के पास भेजा। उस पत्र में लिखा था, 'आपकी कृपा से गुरु भी 'अमपदेवचरित्रिणी से सिद्धान्तवाचना प्रवृत्त करके मैं माइयड ग्राम में आया हूँ। आप कृपा करके मेरे से यहाँ आकर मिलें।' पत्र को पढ़कर गुरुजी ने विचार किया कि "जिनवद्वाम की यहाँ आना चाहिये था। हमको यहाँ पुलाने बेसा अनुचित कार्य उसने किस कारण किया" अस्तु। दूसरे दिन गुरु जिनेश्वराचार्य अनेक नागरिकों के साथ अपने प्रिय शिष्य स मिलने के लिये पूर्वोक्त ग्राम में आये। जिनवद्वामजी गुरुजी का स्वागत करने उनके समुख आये और वन्दना की। इशाल-बेम पूछने पर जिनवद्वामजी ने अपने अध्ययन कार्य का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। गुरु क साथ में आये हुए कई एक ब्राह्मणों के प्ररन करने पर ब्राह्मणों का समाधान करने के लिये दुर्मिठ-सुमिध-वर्षा सम्बन्धी प्ररनों के उधर में जिनवद्वामजी ने ज्योतिष-विद्या के बल से कई एक आश्चर्यकारी बातें बतलाई, जिनको सुनकर गुरुजी भी आश्चर्य-चकित हो गये। तब गुरु ने जिनवद्वामगणिस स पूछा, 'तुम अपने स्थान पर न आकर दीघ में ही क्यों ठहर गये?' जिनवद्वामजी ने कहा 'भगवन्! सुगुरु क मुख से जिन वचनामत्त की पीकर विष क समान दग्गुह-निपास को सेवन करने की इच्छा नहीं है।' जिनेश्वराचार्य ने कहा, 'मेरा विचार था कि तुम्हें अपनी गारी पर बिठना कर और गच्छ, मठ, मन्दिर, भावक आदि का सब धर्ममार तुम्हारे हाथ में सौंप कर फिर किसी सुयाम्य गुरु द्वारा बसनिमार्ग स्वीकार करूँगा।' जिनवद्वामजी बाले—'यदि यही विचार है तो देरी क्यों की जा रही है? क्योंकि विवेक का फल तो यही है कि योग्य बात को स्वीकार किया जाय और अनुचित का परित्याग किया जाय।' यह सुनकर गुरु ने कहा—'हम में ऐसी निस्स्पृहता नहीं है कि जो मठ, मन्दिर, भावक, पाटिक आदि की सरपा का मार किसी योग्य उचराधिकारी पुरुष को दिये बिना ही सुयोग्य गुरु के पास आकर बसनिमार्ग स्वीकृत कर लिया जाय। अतः किसी योग्य पुत्र्य को मठादि का दापित्व देकर बसनिमार्ग स्वीकार करूँगा और तुम्हारी यही इच्छा हो तो अभी मल ही बसनिमार्ग स्वीकार करलो।' तब अपने दीघा-गुरु भी जिनेश्वरचरित्रिणी सम्मिलित करके वे बहाँ स पीछे पुनः पाटण आगये और भी अमपदेवचरित्रिणी क घरणों में शीघ्र ही आकर मक्तिपूषक वन्दना की। उनक आने से भी अमपदेवचरित्रिणी का हृदय आनन्द स उमड़ पड़ा और वे मन ही मन मोचन लगे कि—'हमने इसक विषय में बेसा विचारा था, यह बेसा ही सिद्ध हुआ। यह मरे पाट पर बैठन योग्य है। परन्तु यह चैत्य

बासा मुनि का दीक्षित है; इस कारण गण्ड्य के लोग इस कार्य में सहमत नहीं होंगे। यह सोचकर उन्होंने गण्ड्य-सातक बर्धमानाचार्य को गुरुद्वय पर आसीन किया और भिनवद्वयमगण्ड्य को अपना धोर से उपसम्पदा प्रदान कर उन्हें आज्ञा दी—‘तुम हमारी आज्ञा से सब अंगह विहार करो।’ अमयदेवधरि ने एक समय प्रसन्नचन्द्राचार्य को एकान्त में बुलाकर कहा—‘मेरे पाठ पर ध्यान से देखकर भिनवद्वयमगण्ड्य को स्थापित कर देना।’ परन्तु दैवयोग से इस प्रस्ताव को कार्यरूप परिणत करने का सुभवसर नहीं आया था कि प्रसन्नचन्द्रधरि देवलोक चले गये। उन्होंने देवलोको होते समय देवमद्राचार्य को पूर्वोक्त प्रस्ताव सुनाकर कहा कि—‘मैं इस आज्ञा को पूर्ण नहीं कर सका हूँ। तुम इस आदेश को कार्यरूप में प्रकृत लाना।’ इन्होंने यह बात सुनकर कहा—‘जैसा समय-संयोग होगा, इस आज्ञा का पालन किया जाएगा। आप अपनी आत्मा की सन्तोष हीत्रिये

१५ भी अमयदेवधरि के देवलोक पहुँच जाने के बाद बाधनाचार्य भिनवद्वयमगण्ड्य कितने ही दिनों तक पाठस्य के आस-पास विहस करते रहे। परन्तु गुजरात के लोग, चैत्यवासी आचार्य का आत्यधिक संपर्क होने के कारण अर्ध-विदग्ध थे। अतः इनमें प्रतिबोध-विधान की सफलता देखकर महाराज का मन बहो रहने को नहीं चाहा। इसलिये अपने हाथ दो अन्य साधुओं के संचर श्रम शक्य देखकर मध्य जमीनों को मगधद्रापित धर्मविधि का उपदेश देने के लिये चित्रकूट (चिचौड़) आदि देशों में विहार कर गये। उन देशों में अधिकतर चैत्यवासी साधुओं का प्रभाव तथा निवास था। अनन्त भी उन्हीं की अनुयायिनी थी। अधिक क्या कहें। अनेक ग्रामों में विहार करते हुये महाराज चिचौड़ पहुँचे। यद्यपि वहाँ पर विरोधकर्ता ने अनन्त में महाराज के विरुद्ध बहुत बड़ा आन्दोलन खड़ा किया, तथापि वे लोग महाराज का कुछ भी अनिष्ट करने में समर्थ नहीं हो सके, क्योंकि पाठस्य में रहत हुए ही महाराज की प्रतिष्ठा को सब अनन्त सुन ही चुकी थी। वे आकर महाराज ने अपने ठहरने के लिये वहाँ के लोगों से स्थान माँगा। उन्होंने किसी स्थान का प्रस्ताव कर देने का प्रयास हीसोपूर्वक कहा—‘यहाँ एक घना चण्डिका का मन्दिर है। आप उसमें ठहरें।’ महाराज ने उनके हृत्विश्रामिप्राय का ज्ञान कर लिया कि, ‘टूटे-फूटे और खूने भरे मन्दिर में भूक-प्रेत पिशाचों की शशा होती है। इसी से ऐसा स्थान मेरे अनिष्ट की बुद्धि से बने बतला रह है। परन्तु कोई चिन्ताजनक बात नहीं है। देवगुरु की कृपा से सब श्रम ही होगा। ऐसा सोचकर भिनवद्वयमगण्ड्य देव गुरु का ध्यान करके उनके निर्दिष्ट स्थान पर ही उतर गये। उस स्थान की अचिन्ता दही चण्डिका महाराज का ज्ञान, ध्यान और सद्वृत्तान से प्रसन्न होगई। जिस चण्डिका का लोगो को बड़ा भारी भय था और जिससे कई लोगों का अनिष्ट भी हो चुका था, वही चण्डिका आज इन गण्ड्यी के तप-प्रभाव को देखकर, जो अन्यों के लिये भयिका की इनकी रक्षिका होगई। महाराज के इस आश्चर्यकारक अप्रत प्रभाव को देखकर सब लोग चण्ड्य

हो गए। गण्डिजी साधारण व्यक्ति नहीं थे। ये सब विद्याओं के पारदर्शी विद्वान् थे। सब शास्त्रज्ञान के मरदाब थे। अनेक सिद्धान्तों के ज्ञाता थे। त्रिनेन्द्रमत-प्रचारक भी हरिमप्रसरि के अनेकान्त-अप्यस्ताका आदि ग्रन्थों के अभिज्ञ थे। पद्दर्शन, कन्दसी, किरयावली, न्याय, तर्क तथा पाणिनि आदि आठों विद्याकारों के अग्र इनको फण्टस्य थे, चौरासी नाटक, सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र, पाँच महाकाव्य, अन्य काव्य तथा अयदेवप्रभृति कवियों द्वारा रचित अनेकग्रन्थों के व विशेष मर्मज्ञ थे। महाराज के इस प्रकार के विशेष ज्ञान की सारे विश्व में खूब प्रसिद्धि हो रही थी। अनेक मतानुयायी ब्राह्मण आदि सब लोग अपने-अपने सन्देहों का निवारण करने के लिये महाराज के पास आने लगे। जिस-जिस को जिस-जिस शास्त्र में सन्देह उत्पन्न होता था, महाराज सब शास्त्रविषयक यथार्थ उत्तर देते हुए सबकी शङ्कालें दूर करते थे। अब तो धीरे धीरे भावक लोग भी छुट-छुट आने लगे। सिद्धांत-बचनों को सुनकर और तदनुसार क्रिया को भी देखकर साधारण, सबूक प्रभृति भावकों ने सन्तोषपूर्वक वाचनाचार्य जिनवल्लभगिरि को गुरुत्वेन स्वीकार किया। गुरु उपदेश से प्राप्त की हुई ज्योतिष विद्या के व अनवल्लभगिरिजी को अतीत तथा अनागत (भूत भविष्यत्) का पूर्ण-ज्ञान था। एक समय साधारण नामक एक भावक ने महाराज से परिग्रह-परिमाण्य व्रत के निमित्त प्रार्थना की। गुरुजी ने व्रत-ग्रहण की उसे आज्ञा दे दी और पूछा, “कितना परिग्रहपरिमाण्य सना चाहते हो ?” साधारण बोला—“महाराज ! सर्वसंग्रह २० हजार करूँगा।” फिर गण्डिजी ने कहा, ‘यह तो बहुत बड़ा है, और अधिक करो।’ गुरुजी की आज्ञा से परिग्रहपरिमाण्य एक लाख का किया। गुरुजी के प्रभाव से साधारण भावक के लक्ष्मी की वृद्धि होने लगी, लक्ष्मी के बढ़ने से सारे संघ की सहायता करने लगा। साधारण भावक की तरह अन्य भावक भी महाराज की आज्ञा से प्रतिदिन अधिकधिक प्रवृत्त होने लगे।

१६ आश्विन मास के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी को श्रीमहावीर भगवान् का गर्मापहार नामक कन्याशुभ काठा है। उस दिन जिनवल्लभगिरिजी ने सब भावकों के सामने कहा, “यदि देव-मन्दिर में जाकर भगवान् के समक्ष देववन्दना की जाए तो अत्युत्तम हो। पाँच कन्याशुभ काठा हैं ही। छठा कन्याशुभ गर्मापहार है। क्योंकि (पाँच इत्युचरे होत्या साष्टया परिनिम्बुए) इस सिद्धांत वाक्य से इसका होना स्पष्ट सिद्ध है। यहाँ पर कोई विधिनैत्य तो है नहीं। इसलिये सैन्य-सूदों में चलकर धर्मानुष्ठान करेंगे।’ तदनन्तर भावकों ने कहा—“यदि आप की यही सम्मति है तो ऐसा ही करें।” फिर सब भावक स्नान करके पवित्र वस्त्र पहिन कर पूजा की पवित्र सामग्री लेकर गण्डिजी के साथ मन्दिर के लिये रवाना हुए। मन्दिर के मुख्य द्वार पर बैठी हुई आर्या ने भावक-समुदाय के साथ आते हुये गुरुजी को देखकर पूछा—“आज के दिन कौन सा विशेष वर्ण है ?” भावकों में से किसी एक ने उत्तर दिया कि, ‘धीरे गर्मापहार के दृष्टे कन्याशुभ के निमित्त पूजा

करने क लिये। हम सब आये हैं ।' उस आर्या ने बिनार किया, 'आज तक किसी ने भी यह कला कल्याणक का पर्व नहीं मनाया। ये—सोग ही पड़िते। पदल नये। रूप से इस पर्व को मनायेंगे यह सुक्तिवज्जव-नहीं है ।' ऐसा निषय। फलके बड़ साप्ती द्वारापर प्रदकर बैठ गई और उन भागन्तुकों से बोली 'मेरे शीते की आप सोग मन्दिर में प्रवेश नहीं कर सकते।' उसका इस प्रकार दुराका देखकर वे-मन्दिर में नहीं गये और धातकसङ्ग क्रैः साथ/बापस अपने स्थान पर ही बसे गये । भावकगया करने लगे—'यहाँ भालक सोगों के बड़े बड़े मकरन हैं । उनमें से किसी एक मकरन पर षतुर्भिरिति मिनपङ्क को रखकर देवमन्दना आदि समस्त धर्म कर्ष को किया जाय तो क्या अनुचित है ?' गुरुजी ने कहा—'बहुत अच्छा; ऐसा ही करेंगे ।' बड़े समारोह से कल्याणक मनाया गया । गुरुजी को बड़ा सन्तोष हुआ । किसी हमरे दिन सभी भावकों ने एकत्रित होकर मंत्रया की और गुरुजी से निवेदन किया—'त्रिोषियों के मन्दिर में हम सोग धार्मिक अनुष्ठान के लिये स्थान नहीं पावेंगे अतः यदि गुरु महाराज की आज्ञा मिल जाय तो एक थिचौड़ पहाड़ के ऊपर और एक नीचे दो मन्दिर बना लिये बर्ये । भावकसमुदाय के इस प्रस्ताव से सतुष्ट होकर गुरुजी ने कहा—

जिनमवनं जिनविम्भं जिनपूजा जिनमत्तं च य कुर्यात् ।

तस्य नरामरशिवसुखफलानि करपल्लवस्थानि ॥

[ जो कोई पुरुष जिनमन्दिर, जिनप्रतिमा, जिनपूजा और जिनमत को करेगा । उस मनुष्य क देवसोक और मनुष्यलोक क सब सुख हसुगत होंगे । ]

इस देशना से सब भावक वृन्द महाराज के अमिप्राय को जान गये। सोगों में यह बात प्रसिद्ध हो गयी कि—ये दो मन्दिर बनवायेंगे । इस बात को सुनकर प्रह्लादन गोत्र में मायुर क सब से बड़े मठ बहुदेव न अभिमान पूर्वक कहा—'ये आठ कलासिक दो मन्दिर बनवायेंगे और राष्ट्रमान्य होंगे । इन जपारों की क्या शक्ति है ।' यह बात महाराज ने भी सुनी । सयोगवश बाहिर जाते समय एक दिन वह मठ स्वयं महाराज से मिल गया । तब महाराज ने उससे कहा—'तुम्हें कमी भी गर्व नहीं करना चाहिये । देखो—इसमें स कोई राजमान्य भी हो सकता है और बेल से तुम्हारा छुटकारा भी कर सकता है ।' तदनन्तर साधारण आदि भावकों ने बड़े उत्साह के साथ दो देवमन्दिर बनवाने आरम्भ कर दिये जो देव-गुरु को कृपा से थोड़े हो समय में तैयार भी हो गए । पहाड़ क ऊपर के मन्दिर में पार्वतीनाथ महाबान् की प्रतिमा की स्थापना की गई । और नीचे के मन्दिर में महावीर स्वामी की प्रतिमा स्थापित की गई । दोनों ही मन्दिरों की भी जिनवज्जव-प्राप्ति ने शासन-विधि क अनुवार बड़ समारोह से प्रतिष्ठा कराई । इस गुठर कर्ष के किये जाने से महाराज की सर्वत्र ख्याति हो गई कि वास्तविक गुठर्ये ही है ।

१७ श्वेताम्बर साधुबर्ग के प्रमुख तथा सर्व शास्त्र-विषय के प्रखर परिदृष्ट आये हुए हैं, ऐसा सुनकर कोई पण्डितमिमानी न्योतिषी ब्राह्मण महाराज के पास आया। भाबकों ने आसन देकर उसे आदरपूर्वक बैठाया। महाराज ने उससे पूछा—‘आपका निवास कहाँ है?’ उसने उत्तर दिया, ‘यहीं है’। फिर गुरुजी ने पूछा—‘किस शास्त्र में आपका अधिकार अभ्यास है। आप किस शास्त्र के परिदृष्ट हैं?’

आ०—न्योतिष शास्त्र में है।

गधि—चन्द्र-सूर्य सप्तों को अच्छी तरह जानते हो ?

आ०—ये ही क्या, आप कहें तो एक दो तीन सप्त बताऊँ। उसकी बातों और व्यवहार से गण्डित्री जान गये कि यह अभिमानी है और विद्या से गन्त होकर यहाँ आया है।

गधि—आपका शास्त्रीय ज्ञान बहुत उत्तम है।

ब्राह्मण—आपको भी शास्त्रों का कुछ अभ्यास है ?

गधि—हाँ, सप्त विषयक कुछ-कुछ अनुभव है।

आ०—आप कोई सप्त बतलाइये।

गधि—कहो, कितने सप्त कहें, दस या बीस।

यह वचन सुनकर ब्राह्मण को बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर गण्डित्री ने कहा—‘परिदृष्टजी ! आकाश में जो यह दो हाथ की बदसी दिखाई देती है, कितना पानी बरसनेगी !’ ब्राह्मण को इस वचन का उत्तर न सुझा। गण्डित्रीने उसी समय कहा—‘यह बादल का दो हाथ का डुक्का दो घड़ी में सारे आकाश में फैल जाएगा और इतना बरसेगा कि दो चौड़े चौड़े पात्र अपने आप बल से भर जायेंगे।’ ब्राह्मण के बहों पर ही बैठे रहते महाराज की मणिप्यत्राणी के धनुषार उस बादसी ने इतना पानी बरसाया कि वे दोनों बड़-बड़ पात्र थोड़ी दूर में पानी से परिपूर्ण हो गए। यह चमत्कार देखकर ब्राह्मण ने महाराज को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और प्रार्थना कि, ‘जब तक यहाँ रहूँगा आपकी परशुबन्धना करके भोजन किया करूँगा। मुझे ज्ञान नहीं था कि आप इस प्रकार के महारमा हैं।’ इस घटना से गण्डित्री की सर्वत्र प्रसिद्धि हो गई। सब लोग कहन लगे कि श्वेताम्बर साधुओं का शास्त्रविषयक ज्ञान बहुत अधिक है।

१८ किसी समय चैत्यराणी धुनिचन्द्राचार्य ने अपने दो शिष्यों को सिद्धान्तवाचना के लिये भिनवद्वामगधि के पास भेजा। गण्डित्री भी उनको अधिकारी समय कर सिद्धान्तवाचना देने को सहमत हो गये। वे दोनों अपने मन में महाराज का प्रति ह्वे रखते थे। अतः वे सर्वदा



महाराज का अहित सोचा करते थे। गण्डित्री के भावकों को पहचानने के विचार से वे उनसे भीति का व्यवहार करने लगे। एक समय उन्होंने अपने कैत्यवासी गुप्त के पास भेजने के लिये एक पत्र लिखा। उस लिखित पत्र को कस्ते में रखकर बाधना—ग्रहण करने के लिये बाधनाचार्य के पास भाये और गण्डित्री के निकट बन्दना करके बैठ गये। पढ़ने के लिये बस्ता खोला तो उन नूतन पत्र पर महाराज की दृष्टि पड़ गई। महाराज ने पत्र को ले लिया और पढ़ने लगे। उस पत्र को महाराज के हाथों से ले लेने का उनका साहस न हुआ। उस लेख में लिखा था, 'जिनवज्रममखि के कई भावकों को तो हमने अपने अनुकूल कर लिया है। बोड़े ही दिनों में सबको ही अपने अधीन कर लेने का इद सफल है।' महाराज को उनकी मनोवृत्ति का पूरा ज्ञान हो गया। इस पर महाराज ने एक भार्या छन्द रच कर कहा—

आसीजनं कृतघ्नं क्रियमाणास्तु साम्प्रतं जातः ।

इति मे मनसि वितर्को भविता शोकः कथं भविता ॥

[ किये हुये उपकार को न मानने वाले कृतघ्न पुत्र पहिले भी थे, किन्तु प्रत्यक्ष में किये जाने वाले उपकार को न मानने वाले भी कृतघ्न इस समय देखे जाते हैं। सुभे रह-रह कर विचार आता है कि भागे होने वाले लोग कैसे होंगे ? ]

महाराज ने उनसे कहा—'विद्यागुरु के प्रति तुम्हारे ऐसे अग्रिम मातृ पुनः पुनः चितनीय हैं।' वे अस्यन्त सजित होकर अपने स्थान पर वापस चले गये।

१६ किसी समय जब जिनवज्रमगण्डित्री बहिर्मुमिक्त के लिये बाहर जा रहे थे, उस समय महाराज की विद्वत्ता की प्रशंसा सुनकर आया हुआ एक परिचित उनसे भिला और किसी राजा के बर्तन के लक्ष्य से एक समस्यापद उनके सामने रखी—'कुरुः किं भृहो मरकतमणिः किं किमशुनिः।' महाराज ने उच्च सोचकर उत्कृष्ट ही उस समस्या की पूर्ति करदी और उसे सुना दी :—

चिरं चित्तोत्थाने घसति च मुखान्ज पिबसि च,

क्षयादेयाक्षीया विषयविषमोहं हरसि च ।

नृप ! त्व मानार्द्रिं दक्षयसि रसाया च कुतुकी,

कुरुः किं भृहो मरकतमणिः किं किमशुनि ॥

[ हे राजन् ! आप मृगनयनी सुन्दरियों के चिच रूपी उद्यान में विचरते हैं, इसलिये आपके विषय में उद्यानवारी हरिया की आग्राहा होती है। उनकी सुन्दरियों के सुखकर्मों का पान करते

हैं, इसलिये आप में अमर का सन्देह होता है। आप कामिनियों की बियोग विष से उत्पन्न हुई मूर्च्छा को दूर करते हैं। अतः आप मरफ्त मन्त्रि जैसे शोभित होते हैं और मामिनियों के मानरूपी पर्वत को पूर-पूर कर देते हैं अतः आपके विषय में वज्र की आम्शझा होने लगती है।]

इस प्रकार सुन्दर सामिप्राय समस्या—पूर्ति को सुनकर वह आगन्तुक परिदृष्ट अति प्रसन्न हुआ और कहने लगा कि 'लोक में आपकी' वैसी प्रसिद्धि हो रही है, वास्तव में आप वैसे ही हैं। आपकी यह प्रसिद्धि यथार्थ है।' महाराज की प्रशंसा करता हुआ चरखों में बन्दना करके वह चला गया। तदनन्तर गुरुजी भी अपने वासस्थान पर आ गये। वहाँ पधारने पर आनकों ने प्रार्थना की, 'आज आपको बाहर से आने में बहुत अधिक समय लगने का क्या कारण हुआ?' तब आपके संग में आने वाले शिष्य ने समस्या—सम्बन्धी सारी बातें कहीं बिसे सुनकर भावकों को पड़ी प्रसन्नता हुई।

२० किसी समय गणद्वेष नामक एक भावक यह सुनकर कि महाराज के पास सुषर्ष बनाने की सिद्धि है। अतः सुषर्ष प्राप्ति के लिये विषौड़ में आकर तन-मन-धन से महाराज की सेवा करने लगा। महाराज ने उसके अमिप्राय को खान लिया और उसे योग्य समझकर चार पीर ऐसी देशना दी कि जिससे अल्प समय में ही उसको बैराग्यभाव प्राप्त हो गया। जब वह अच्छी तरह विरक्त हो गया तब महाराज ने उससे कहा—'मत्र! क्या तुम्हें सुषर्ष-सिद्धि बतलाऊ ? उसने कहा—'भगवन् ! मेरे पास के ये बीस रुपये ही पर्याप्त हैं। इनके द्वारा ही मैं व्यापार करता हुआ भावक-धर्म का पात्तन करूँगा। अधिक परिग्रह सर्वथा दुःख का कारण है।' महाराज ने विचारा—'इसकी अन्म-कृपबली और हस्तरेखा से विदित होता है कि इसके द्वारा मन्पपुरों में धर्म-बुद्धि करने का योग पड़ा है।' इसलिये उसको धर्म-तर्षों का उपदेश करके उसे धर्म-प्रचार के लिये बागद्वेष का और मेज दिया। अपने निर्मित 'दुःखक' श्लेष भी उसको पढ़ा दिये थे जिनके द्वारा उसने बहाने लोगों को विचिमार्ग का पूर्ण स्वरूप बतलाकर अधिकारा अनता को गश्मिरी के मन्तर्ष्यों का अनुयायी बना दिया।

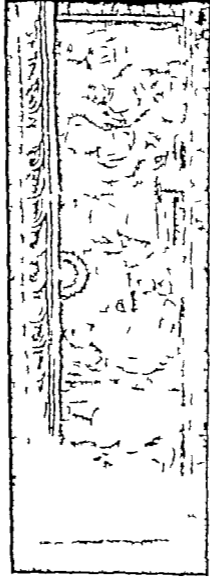
२१ गश्मिरी महाराज का व्याख्यान में अन्धे-अन्ध विद्वान् मनुष्य आया करत थे। अधिकतर ब्राह्मण लोग अपने-अपने सन्देहों को निवारण करने का सत्त्व से आया करते थे। एक दिन व्याख्यान में 'बिज्जार्ण गिदीय' इत्यादि गाया आई। इस गाथा में ब्राह्मणों की समालोचना की गई है। अतः वे रुष्ट हो कर व्याख्यान से चल गये। सबन एकत्रित होकर सर्वममति से निश्चय किया कि, 'इनका साथ शास्त्रार्थ किया जाय और उधमें इनको पराजित किया जाय।' उनका इस निश्चय को सुनकर गश्मिरी के हृदय में अणुमात्र मा मय की उत्पत्ति न हुई, क्योंकि 'विद्या, बुद्धि, प्रतिभा-बल में उनका तीर्थहूनों का समान प्रभाव था।' किसी कवि ने कहा भी है—

नेमिनाथ स्वामी की मूर्ति की यथानिधि प्रतिष्ठा की\* । इस पुरस्च-कार्य के प्रभाव से वहाँ के सभी भावक लघापीय हो गए । उन्होंने भी नेमिनाथ मगवान् की प्रतिमा के रत्नसहित आभूषण बनवाये; यही बनहृदि का सदुपयोग है । नरवरपुर के भावकों के मन में भी यह भाव उत्पन्न हुआ, 'गणेशजी को गुरु करके उनके द्वारा देवसन्दिह की प्रतिष्ठा करावें ।' ऐसा सोच कर मन्दिर वैराट करवा कर महाराज को आदर से बुलाया । आचार्य भी ने आकर उन भावकों की इच्छानुसार प्रतिष्ठा सम्बन्धी सब कार्य विधिपूर्वक करवा दिया । महाराज ने नागपुर और नरवर दोनों ही स्थानों के मन्दिरों पर रात्रि में मगवान् के मंड पढ़ना, रात्रि में स्त्रियों के आगमन आदि के निषेध के लिये शिलाश्लेष के रूप में विधि सिखवा दी, जिसको 'मुक्तिवाचक-विधि' नाम से कहा है । तदनन्तर मरुकोटनगरस्व भावकों ने गणेशजी महाराज से अपने यहाँ पधारने की प्रार्थना की । उनकी इस विनयि को स्वीकार करके महाराज विष्णुमपुर होते हुये मरुकोट पधारे । वहाँ के भद्राष्ट भावकों ने महाराज को एक अतिमुन्दर स्थान पर ठहराया, जिसमें भोजन-मज्जन आदि के लिए अलग-अलग स्थान बने हुए थे । महाराज वहाँ पर सुखपूर्वक विराजे । भावकों ने प्रार्थना की—'महाराज ! आपका मुखारविन्द से जिनबाबी के रसामृत का आस्वादन करना चाहते हैं ।' महाराज ने कहा—'भावक लोगों का उपदेश सुनना ही धर्म है । आप लोगों की इच्छा हो तो 'उपदेश-माला' का प्रारम्भ किया थाय ?' भावकों ने कहा—'यह तो हमने पहले ही सुनी है । फिर महाराज के मुखारविन्द से भी सुन लेंगे ।' उनकी इच्छानुसार महाराज ने छुम दिन देखकर व्याख्यान प्रारम्भ किया । "सबच्छरमुसमजियों" इस एक गाथा की व्याख्या में छः मास का समय व्यतीत हो गया । इस प्रकार के दण्ड उदाहरण और सिद्धान्तों के उपदेशामृत से भावकों को अभूतपूर्व लाभ मिला और वे तृप्त नहीं हुए । भावक बोले—'मगवान्' व्याख्यान में ऐसी अपूर्व बर्णना या तो तीर्थंकर मगवान् ही कर सकते हैं वा आपने ही की है ।' इस प्रकार भावक लोग महाराज की देशना की मूर्ति-भूरी प्रशंसा करने लगे ।

२४ एक दिन व्याख्यान देख कर महाराज भावकों के साथ इक्षमन्दिर से आरहे थे । अपने निवास स्थान पर बहुत समय मार्ग में महाराज ने एक असाकृष्ट दृष्टे को देखा; जिसके साथ में कई बुद्धमी, बन्दुर्ग तथा बनेदियों का समूह था और पीछे-पीछे मनोहर माङ्गलिक गायन करती हुईं मूर्ति

\* इसका अनेक अक्षरालीन देशाजय के निर्मात्र सेठ बनने के पुत्र कवि ब्रह्मचर्य अपने देश-राज्य में भी करते हैं —

"शुक्ल भीमिनकामस्य सुपुरोः शान्तोपदेशप्रवृत्ते,  
भीमभाषपुर पद्मर सुदर्न भीमिनाथस्य या ।  
शेन्दी भीमनदेव इत्यभिधया स्यात्तत्र तस्याह्वयः,  
पद्मानन्दस्य प्यथ सुषिपामानन्दसम्प्रदाये ॥"



युग प्रथम श्रम भीजिनद्वय सृजिजी ( एम ३१ )



भाषाय जिनभस्त्रिजी (द्वितीय) (पृष्ठ १५)

साथों का झुगड़ पत्र रहा था। वह सज्जस्य से विवाह करने जा रहा था। उसे देखकर महाराज बोले—'यह सत्कार ब्रह्मभगुर है। यह दुःखी मृत्यु को प्राप्त होगा और ये ही स्त्रियाँ जो इस समय उत्साह से मंगल गान कर रही हैं, रोती हुई सौटेगी।' वह कर बपू के घर पहुँच कर चोड़े से नीचे उतरा और मकान के भीने पर बइते जगा कि देवयोग से उत्सव पाँव किसल गया और वह गिर कर परट के कीले पर आ पड़ा। फिर क्या था, वह कीला उसके पेट में घुस गया। पेट के दो डुकड़े हो गये, चमड़ा फट गया और वह मर गया। उन स्त्रियों को रोती हुई बापस आती हुई देखकर सब भावक लोग महाराज के इस मन्विष्य विषयक ज्ञान से अकित हो गये और महाराज की स्तुति करने लगे कि महाराज तो विक्रमलक्ष हैं। इस प्रकार आचकों में धर्म का परिणाम बढ़ाकर तथा अपने अद्भुत चमत्कारों से सब को अकित करके महाराजभी वहाँ से नागपुर पधारे।

२६ उन्हीं दिनों में देवमद्राचार्यजी विचरत हुये गुजरात प्रान्त के विख्यात नगर पाटण में आये। वहाँ आने पर उन्होंने सोचा—'प्रसन्नचन्द्राचार्य ने पर्यन्तसमय में मेरे से कहा था कि—'जिनबल्लमघरि को अमयदेवघरिजी महाराज के पाट पर स्थापित कर देना। इस कार्य के सम्पादन करने का इस समय ठीक अवसर है।' ऐसा निश्चय करके उन्होंने जिनबल्लमघरिजी के पास पत्र भेजा। उसमें लिखा था, 'सम्बन्ध के साथ आप शीघ्र ही विचौड़ आये। वहाँ हम सब मिलकर पूर्वविकारित धर्म को सफल करेंगे।' पत्र को पढ़कर गणिजी परिवार सहित विचौड़ आ गये। पण्डित सोमचन्द्र को भी आह्वानपत्र भेजा था किन्तु वे समय पर न आ सके। छम झूठ देखकर भीदेवमद्रघरि ने भी जिनबल्लमघरि को भी अमयदेवघरिजी महाराज के स्थान पर अमिषिक कर दिया। पदारूढ होने का समय आपाइ छुक्ता ६ सं० १६६७ वि० पठाया गया है। वीरप्रभु के विधिबैथालय में उपदेश सुनने के लिये आने वाले अनेक मन्थजन युगप्रधान भी जिनबल्लमघरि को युगप्रधान भी अमयदेवघरिजी के आसनसतीन देखकर तथा उनके उपदेशसूत्र को सुनकर मोचमार्ग के पविक हो गये। तदनन्तर भीदेवमद्राचार्यजी पालमहोत्सव सम्बन्धी सब कार्य करके विहार करते हुये अपने अमीष्ट स्थान पर पहुँच गये। वि० सं० १६६७ कार्तिक कृष्ण १२ रात्रि के चतुर्थे पहर में भी जिनबल्लमघरिजी तीन दिन का अनशन कर पंचपरमेष्ठी का प्यान करते हुये, चतुर्विध सङ्ग को मिष्णादुष्कृत दान देकर देवलोक हो गये।

### युगप्रधान जिनदत्तसूरि

२७ पक्षिसे किसी समय भी जिनैरमघरि के शिष्य उपाप्याय भी धर्मदेव की आज्ञा में रहते बाकी विदुषी साधियों ने जोलका में पातुर्मास किया था। वहाँ पर चण्डक—मठ बाकिा की धर्मयन्त्री बाइबदेवी अपने पूज के साथ इन आर्याओं के पाठ धर्मकथा सुनने को आवा करती

थी। उस आविष्कार का धर्म-प्रेम देखकर साध्वियों बाह्यदेवी को विशेषरूप से धर्मकार्यों सुनाया करती थीं। व आर्यायें सामुद्रिक शास्त्र क बल से पुरुष-सम्बन्धी शुभशुभ लक्षण भी जानती थीं। बाह्यदेवी के पुत्र क शरीर में वर्तमान प्रधान-लक्षणों को वे अच्छी तरह स जान गईं। उन लक्षणों का लाभ उठाने के लिये वे आविष्कार को बारम्बार समझती थीं। आर्याओं के कहने-सुनने से वह उनका ध्यान मान गई और अपने पुत्र को शिष्य बनाने क लिये देने को तैयार हो गई। पशुमार्त समाप्त होने पर आर्याओं ने धर्मदेवोपाध्याय को समाचार दिया कि, 'इमने यहाँ पर एक पात्ररत्न पाया है। यदि आपको योग्य लगे तो स्वीकार करें।' सबाद पाते ही धर्मदेवोपाध्याय शीघ्रातिशोभ नहीं पहुँचे। मासक को देखकर अतीव प्रसन्न हुये। शुभ लाभ, सुहृथ एवं तिथि देखकर वि० सं० ११४१ में दीक्षा देकर उस बालक का सोमचन्द्र नाम रक्खा और उसे अपना शिष्य बनाया। उपाध्यायजी ने नक्षत्रोचित सोमचन्द्र को भी सर्वदेव गणों को सांग दिया और गणिकी स कहा कि तुम इसकी देख रख करो तथा इस साधु-सम्बन्धी क्रिया-कलापों को सिखाव हुये बहिर्भूमिक आदि के लिये साथ ल जाया करो। इस बालक का जन्म सं० ११३२ में हुआ था। दावा के समय इसकी अवस्था नौ साल की थी। प्रतिक्रमण छत्र वगैरह इतने घर पर रहते हो पाद कर लिये थे। अशोकचन्द्रार्थ न इनको बड़ी दीक्षा दी। दीक्षा लेने के बाद, पहिले दो दिन सर्वदेवगणों इनको साथ लेकर बहिर्भूमिक क लिये गये। सोमचन्द्र बालक या; अज्ञान दशा थी। इसलिये खेत में स उगे हुये बहुत से बणों को इसने जड़ स उखाड दिया, (ऐसा करना साध्याचार क विपरीत था)। सर्वदेव गणों न इस अनुचित व्यवहार को देखकर उस शिष्या देने के लिये सोमचन्द्र हरजोहरण और सुश्रवणिक सेली और कहा कि, 'तुम अपने घर आभा। दीक्षा लिये बाद साधु को हरि बनसरति को ठोडना बनसरति का विराधना है।' इस वान-गर्वन को सुनकर बालक सोमचन्द्र बोला—'भाय पर जाने के लिय कहते हैं सो तो ठाक, परन्तु पहिले मेर मस्तक पर जो चोटी थी उसे दिवा दीजिये, तो लेकर भवन पर चना जाऊँ।' इस उतर को सुनकर गणिकी को आश्चर्य हुआ और मन ही मन कहते लगे 'इस बाल का हमारे पास कोई प्रत्युत्तर नहीं है।' इस बात का स्थान पर जाकर गणिकी ने धर्मदेवोपाध्याय स कहा। उसे सुनकर उपाध्यायजी ने सोचा—'इन लक्षणों से जाना जाता है कि यह अरय ही योग्य होगा।'।

२८ सोमचन्द्र सब्र पवन में धूम-धूमकर विद्वानों के साथ लक्षण-पत्रिका आदि शास्त्रों को परिभ्रम क साथ पढ़न लगा। एक दिन सोमचन्द्र स्थानीय भावडापाय की धर्मशाला में पत्रिका पढ़न जा रहा था। माग में अन्य महासम्बन्धी किसी उद्भूत मनुष्य ने कहा—'अरे श्वेताम्बर साधु! यह कानिक (पढ़ने का बन्ना) किमलिये प्रहस की है?' सोमचन्द्र ने लज्जाले ही उतर दिया 'हमारा सुखमदन करने के लिये धार धपन सुख की शोभा बनाने के लिये।' वह पुरुष इसका जड़

भी बवाब न दे सका और अपना—सा मुह सेरू चला गया। सोमचन्द्र धर्मशास्त्रा में गया। वहाँ बहुत से रान्यधिकारियों के पुत्र पढ़ते थे। एक दिन अध्यापक ने योग्यता को जाँच करने के लिये पूछा—‘सोमचन्द्र ! ‘न बिघते बकरो यत्र स नक्करः’ अर्थात् बकर जिसमें न हो वह नक्कर है ? सोमचन्द्र ने कहा—‘नहीं, ‘नक्करयां नक्करः’ नक्कर शब्द का अर्थ है नक्करवा चाहिये। ऐसा उत्तर सुनकर अध्यापक ने बिचारा कि इसके साथ उत्तर-अत्युत्तर करना बरा टेढ़ी खीर है ( येरा-गैरा पचकम्पाही इसके साथ मिड़ नहीं सकता )।

एक समय सुबन का दिन होने से सोमचन्द्र पाठशास्त्रा न जा सका। पाठशास्त्रा का यह नियम था कि यदि एक भी विद्यार्थी अनुपस्थित हो तो उस दिन पाठशास्त्रा बन्द रखी जाय। उस दिन गर्विष्ठ अधिकारी-पुत्रों ने आचार्य से कहा—‘मगवन् ! कृपया पाठ पढाइये। सोमचन्द्र के स्थान पर हमने यह पत्थर रख दिया है; इसे आप सोमचन्द्र ही समझ लीजिये।’ आचार्य ने उन सब के अनुरोध से प्रचलित पाठशास्त्रीय नियम को तोड़कर उस दिन सबको पाठ पढ़ाया। दूसरे दिन सोमचन्द्र पाठशास्त्रा आया। उसको अपने कतिपय सापिणों से पहिले दिन को बातों का पता लगा। सोमचन्द्र ने अध्यापक आचार्य से कहा—‘आपने बड़ा उत्तम काम किया जो मेरी अनुपस्थिति में मेरे स्थान पर पत्थर रखकर काम निकल लिया। परन्तु आप कृपा करके आज तक पढ़ाया हुआ पंजिका-पाठ मुझसे भी पूछिये और इनसे भी; जो बवाब न दे सके उसे ही पापाया समझना चाहिये।’ अध्यापक गुरु ने कहा—‘सोमचन्द्र ! तु शब्दयुक्त कस्तूरिका की तरह प्रज्ञादि गुणों से युक्त है। मैं तेरे को मलीमौलि जानता हूँ परन्तु इन मूर्खों ने पढ़ाने के लिये बार-बार अनु-रोध किया, अतः ऐसा किया गया। तुम हमको क्षमा करो।’

२६ सब यह सोमचन्द्र अन्य शास्त्रों को पढ़कर तैयार हो गया तब हरिसिंहाचार्य ने इतको संमस्त शास्त्रों की बाचना दी और अपने पास की वह कपस्तिका ( पुष्पा ) भी ही जिससे स्वयं उन्होंने विद्याभ्यास किया था। देवमद्राचार्य ने प्रसन्न होकर कटाक्षरय ( उत्कीर्षक ) दिया, जिससे उन्होंने महावीर चरित आदि चार कथाशास्त्र अष्ट की पट्टिका पर लिखे थे। परिश्रम सोमचन्द्र गणित इस प्रकार सर्वसिद्धान्तों का ज्ञान होकर ग्रामानुग्राम निघरने लगा। ज्ञानी, प्यानी, मनोहारी और आम्हादकारी सोमचन्द्र गणित को देखकर उत्पन्नकमग अतीव आनन्दित होता था।

३० गण्डक प्रमान और बयोदृढ़ भी देवमद्राचार्य ( जो गण्डक के संचालक थे ) ने जब आचार्य बिनदत्तधर का देवसोक गमन सुना तो इन्हें बड़ा दुःख हुआ। कहने लगे—‘स्वर्गीय गुरु भी अमपदेवधरित्री के पद को बिनदत्तधरित्री उज्ज्वल कर रह ये परन्तु, क्या किया जाय ?’ ( सारा काम ही चौपट हो गया )। देवमद्राचार्य क इदप में यह बात आई कि ‘भीबिनदत्तधरित्री



युगप्रधान थे। उनका स्थान पर किसी जैसे ही योग्य को नहीं बैठाया गया तो हमारी गुरुमूर्ति का क्या मूल्य है ! हमारे गण्डक में उनके पाठ पर बैठने योग्य कौन है ?' ऐसा विचार करते हुए उनका परिहृत सोमचन्द्र गण्डि की तरफ लक्ष्य गया। उपासकवर्ग भी इन्हीं को चाहते हैं और वह ध्यान-ध्यान-क्रिया में भी निपुण है; इसलिये यही योग्य है। सर्वसम्मति से इसका निरूपण करके सोमचन्द्र को सिखा गया कि 'तुमको भी जिनबल्लमछरिबी के पाठ पर स्थापित किया जायगा। इसलिये नहीं तक हो सक शीघ्र ही विचौड़ चल आओ। स्वर्गीय आचार्य को भी यह बात असीट थी। श्री जिनबल्लमछरि के पाठ-महोत्सव पर तुम बुझाने पर भी नहीं पहुँच सक थे। ऐतान हो कि इस समय भी तुम क्षात्रबरोहो कर आओ। पाठ पर बैठने के लिय बहुत से उम्मीदवार सङ्ग हुए हैं ( परन्तु संघ क संचालकों ने उनको आशालताओं पर तुपारापल कर दिया है )।' पत्र पढुपते ही पंडित सोमचन्द्र गण्डि भी शीघ्र विहार कर विचौड़ आगये और देवमद्राचार्य भी आगये। समाज को पाठ-महोत्सव की खचना दी गई। साधारण जनता कलस इतना ही खानती थी कि श्री जिनबल्लमछरिबी के पठ पर किसी योग्य व्यक्ति को छरि पद दिया जायगा। यह पद किसको और कब दिया जायगा ? इस बात का किसी को पता नहीं था। श्रीदेवमद्राचार्य ने सोमचन्द्र गण्डि को एकलत में मुलाकर कहा—'श्रीजिनबल्लमछरिबी स प्रतिष्ठित, साधारण, साधु आदि भावकों स पूजित भी महावीर स्वामी के विधि-धैत्य में समस्त संघ क समय आगामी दिन श्रीजिनबल्लमछरिबी के पाठ पर हम तुमको स्थापित करेंगे। सत्र का निषय कर खिया गया है।' इस कथन को सुनकर, परिहृत सोमचन्द्र ने कहा—'आपने जो कहा सो ठीक है, परन्तु येरी प्रार्थना यह है कि कल क दिन स्थापना कीजियेगा तो कल मृत्युयोग है। अतः मैं अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सकूँगा। इसलिये आज से सातवें दिन शनिवार क दिन जो सत्र हो; यदि उस सत्र में मैं पाठ पर बैठाया जाऊँगा तो सर्वत्र ही मैं निर्मय होकर विचरूँगा और श्रीजिनबल्लमछरिबी क अमिमत मार्ग में मरे इरा शतुर्विंश संघ की अधिकधिक बुद्धि हो सकगी।' श्रीदेवमद्राचार्य ने कहा—'बहुत अच्छा, क सत्र क्या दूर है ? उसी दिन ही सहा।' निश्चित दिन जाने पर वि० सं० ११६६ बैशाख सुद्धि प्रतिपदा को श्रीजिनबल्लमछरिबी क पाठ पर बड़ आरोग-नमारोह क साथ परिहृत सोमचन्द्र गण्डि स्थापित किय गये और भी संघ की तरफ स नाम परिवर्तन कर इनका नाम श्रीजिनदक्षरि रखा गया। मायकाठ के समय राज-गात्र क साथ निवास स्थान पर आय। समी साधु, साध्वी, भावक और भाविज्यों ने विधिपूर्वक बंदना की। इसक पश्चात् श्रीदेवमद्राचार्य न कहा—'महाराज ! यहाँ पर उपस्थित संघ लोगों की आपक सुखतरिद से उपदेशामृत-पान करने की अनिस्तापा है।' इस प्रार्थना को स्वीकार करके आचार्य श्रीजिनदक्षरिबी न अमृत क समान कयाप्रिय सिद्धान्तोद्धारकों स पुत्र देगना दी; जिम सुनकर उपस्थित जनता अतीव हा प्रसुद्धि हुई और कथन सगी 'देवमद्राचार्य का पणनाद है कि जिहोन मुयाओं क स्थान में मुयाय को ही पदार्थ खिया।' देवमद्राचार्य

ने कहा—'स्वर्गीय आचार्य जिनकर्मधरिजी ने इस लोक को त्यागते समय मुझे यह आदेश दिया था कि हमारे पद पर सोमचन्द्र गण्डि को स्थापित करना। उसे सफल बनाकर उनकी आज्ञा का मैंने पालन किया है।' श्रीदेवमद्राचार्य ने आचार्य जिनदत्तधरि से प्रार्थना की—'आप कुछ समय तक अन्य प्रदेशों में विचरकर करें।' यह सुनकर जिनदत्तधरि ने कहा—'बहुत अच्छा, ऐसा ही करूँगा।'

३१ एक समय जिनशेखर नामक साधु ने कलह आदि कुछ अनुचित कार्य किया; इसलिये देवमद्राचार्य ने उसे समुदाय से बाहर निकाल दिया। अब जिनदत्तधरिजी बहिर्भूमिका के लिये बाहर गये तो उनकी प्रतीक्षा में बैठा हुआ जिनशेखर मार्ग में ही महाराज के पैरों में आ गिरा और बड़ी दीनता के साथ कहने लगा—'महाराज! मेरे से यह भूल हो गई। आप एक क्षण क्षमा करें। आगे से इस तरह की उदयवृत्ता कमी नहीं करूँगा।' दया के समुद्र श्रीजिनदत्तधरिजी ने भी क्षमा करके उसे समुदाय में ले लिया। देवमद्राचार्य को यह मालूम होने पर उन्होंने आचार्यजी से कहा—'इसको समुदाय में लेकर आपने अज्ञा कार्य नहीं किया। यह आपको कमी भी सुखाना न होगा।' यह सुनकर आचार्यजी ने कहा—'यह सदा से ही स्वर्गीय आचार्य श्रीजिनकर्मधरिजी की सेवा में रहा है; इसको कैसे निकाला जाय? अब एक निमेषा तक निर्मायेंगे।' तत्पश्चात् देवमद्राचार्यजी अन्यत्र विहार कर गये।

३२ आचार्य श्रीजिनदत्तधरिजी ने किस तरह विहार करना चाहिये? इसका निर्यायार्थ उन्होंने देवगुरुओं का स्मरण किया और तीन उपवास किये। देवलोक में श्री हरिसिंहाचार्य आये और बोले—'हमको स्मरण करने का क्या कारण है?' जिनदत्तधरिजी ने कहा—'मुझे किस तरह विहार करना चाहिये? यह निर्याय प्राप्त करने के लिये मैंने आपको स्मरण किया है।' 'मारवाड़ आदि की तरह विहार करो' ऐसा उपदेश देकर हरिसिंहाचार्य अचरय हो गये। देवयोग से उन्हीं दिनों मारवाड़ का रहने वाले मेहर, मावर, वासल, मरठ आदि भावक व्यापार-वाणिज्य के लिये वहाँ आये हुये थे। वे लोग गुरु श्रीजिनदत्तधरिजी के दर्शन करके तथा उनका प्रवचन सुनकर बड़े प्रसन्न हुये और उनको सदा के लिये अपना गुरु बनाया। उनमें मरठ तो शास्त्र-ज्ञान के लिये वहीं रह गया और बाकी सब अपने-अपने घरों पर आकर कुटुम्बियों के सम्मुख गुरुजी के गुण वर्णन करने लगे। इस प्रकार मारवाड़ में महाराज की प्रशंसा का स्रवण हो गया। वहाँ से विहार करके श्रीपूज्यजी नगपुर पहुँचे। नगपुर के भावकों में मुख्य सेठ धनदेव महाराज स कहने लगता कि यदि आप अपने व्याख्यान में 'आप्ततन अनोपतन' का अंगड़ा छोड़ दें तो मैं आपको विस्वास-दिसता हूँ कि सभी भावक आपका आशाकारी बन जायें। आप मर वचन के अनुसार करें तो सबक पूज्य बन सकत हैं। उसका वचन सुनकर धरिजी बोले—'धनदेव, शास्त्रों में लिखा है—भावक गुरुवचनानुसार चलें; किन्तु यह कभी भी दखने में नहीं आया कि गुरु

भावकों की आशा का पालन करे ( उत्स्रप्त मापक महान् दोष है ) । 'अधिक परिवार के अभाव में हमारी मान-शुभा नहीं होगी' तुम्हारा यह कथन भी ठीक नहीं है । सुनिश्चिंतों ने कहा है—

मेवं मंस्था बहुपरिक्रतो जनो जगति पूज्यता याति ।  
येन घनतनययुक्तापि शूकरी गूयमश्नाति ॥

[ अर्थात् आप यह न समझिये कि अधिक परिवार वाला आदमी जगत् में अवश्य ही पूज्य हो जाता है । पुत्र-पौत्रों के अधिक परिवार को साथ रखती हुई भी शूकरी मैले को खाती है । ]

यह कथन धनदेव को नहीं भाया । प्रत्युत कयाकटु माखूम हुआ । किसी को अन्धा समझे या न समझे, गुक लोग तो युक्तियुक्त ही करेंगे । ये वचन वहाँ बैठे हुये कतिपय विवेकशील पुत्रों को बड़े अन्धे माखूम हुए ।

महाराज नागपुर से अजमेर गये । वहाँ पर ठाकुर आशाधर, साधारण, रासल आदि भावक उनके अनन्यमत्त थे । श्री जिनदचरित्री प्रसिद्धि वहाँ पर ब्रह्मदेव मन्दिर में देव-वन्दना के लिये जाया करते थे । एक दिन वहाँ पर मन्दिराचार्य चैत्यवासी आचार्य आगया । वह इन महाराज से ( दीक्षा-पर्याय आदि ) प्रत्येक बात में छोट्य था, तथापि मन्दिर में इनके साथ देव-वन्दनादि शिष्टाचार का पालन नहीं करता था । ठाकुर आशाधर आदि भावकों ने महाराज से कहा 'यहाँ आने से क्या फायदा जबकि आपके साथ युक्त सर्वभूषणों नहीं पतीं साथ ।' उसी दिन से ( मन्दिर में जाकर किया जाने वाला देव-वन्दना आदि ) व्यवहार रुक गया । इसके बाद सब भावकों का एक समूह अजमेर के तटस्थसीन राजा अशोराज के पास गया और राजा से निबदन किया कि, 'हमारे गुठ भोजिनदचरित्री महाराज यहाँ आपकी नगरी में पधारें हैं ।' राजा ने कहा, 'यदि आये हैं तो बड़े आनन्द की बात है; आप लोग मेरे पास किस कार्य के लिये आये हैं । उस काम को करो ।' भावक बोले—'महाराज, हमको एक ऐसे भूमिखण्ड की खबर है; वहाँ पर हम लोग देवमन्दिर, धर्मस्थान और अपने कुटुम्ब के लिये कुँडा पर बनवाते ।' उनकी यह प्रार्थना सुनकर राजा ने कहा—'शहर से दक्षिण की ओर जो पहाड़ है उसके ऊपर और नीचे तुम्हारे जैसे सो बनवा लो । तुम्हारे गुठजी के दर्शन हम भी करेंगे ।' भावकों ने यह सारा वृत्तान्त गुठजी से आकर कहा । सुनकर गुठजी करने लगे 'जबकि राजा स्वयं ही दर्शनों की अमिताया प्रकट करता है, तो आप लोग उनको अवश्य बुलायें । उनके यहाँ आने में अनेक लाभ हैं ।' अन्धा दिन देलकर भावक लोगों ने राजा को आमंत्रित किया । राजा साहब आये और गुठजी को सम्मान के साथ वन्दना की । आचार्यभी ने राजा को इस प्रकार आशीर्वाद दिया—

धिये कृतनतानन्दा विशेषवृत्तसंगता ।

भवन्तु भवता भूप । ब्रह्मधीधरशंकरा ॥

[ हे राजन् ! मर्कों को आनन्द देने वाले क्रम से गरुड़, शोपनाग और बैल पर वाले चढ़ने क्रमा, विष्णु और महादेव आपका कन्याश्वरणी हों । ]

महाराज की विद्वत्ता देखकर प्रसन्न हुआ राजा करने लगा—‘भगवन् ! सदा हमारे यहाँ ही रहिये ।’ गुरुजी बोले, ‘राजन्, आपने कहा तो ठीक; परन्तु हम साधुओं की मर्यादा ऐसी है कि हमें एक स्थान पर अधिक दिन नहीं ठहरना चाहिये । सर्वसाधारण के उपकार की दृष्टि से हमें सर्वत्र विहार करना पड़ता है । हाँ, हम यहाँ पर सदा आते जाते रहेंगे, जिससे कि तुम्हें मानसिक सतोष होता रहे ।’ आचार्यजी के साथ वार्तालाप से असन्तुष्ट हुआ राजा वहाँ से उठकर अपने स्थान को गया । उसके जाने के बाद पूज्यजी ठाकुर आश्राधर से बोले—

इदमन्तरमुपकृतये प्रकृतिष्वज्ञा यात्रदस्ति संपदियम् ।

विपदि नियतोदयाया पुनरुपकृतुं कुतोऽवसरः ॥

[ स्वभाव से ही संपन्न, यह लक्ष्मी जब तक पास में है, तब तक परोपकार करके करना चाहिये । विपत्ति का आना निश्चित है । विपत्ति आने पर बोझा धरते रहो तो फिर परोपकार करने का मौका हाथ आना कठिन है । विपत्ति—संपत्ति में यही अंतर है । ]

इसलिये आपको सम्मान, शत्रुञ्जय और गिरनार मन्दिरों के समान भी पार्श्वनाथ स्वामी श्रीशुद्धमदेव स्वामी तथा भीनेमिनाथ स्वामी के मन्दिर बनवाने चाहियें । उन मन्दिरों के ऊपर अम्बिका देवी की छतरी और नीचे गयाधर आदि का स्थान बनाने चाहियें । आप सम्पत्तिशाली हैं । लक्ष्मी के सदुपयोग का यह अच्छा अवसर है । आप इससे लाभ उठाइये । लक्ष्मी का सर्वदा स्थायी रहना बड़ा मुश्किल है ।

३३ आश्राधर ठाकुर को इस प्रकार कर्त्तव्य का उपदेश देकर धरीश्वरजी बागड़ देश की ओर विहार कर गये । वहाँ के लोग भीमिनब्रह्मधरिणी महात्म्य का अनन्यमक थे । उनका देवलोकागमन सुनकर वहाँ बासों को बड़ा खेद हुआ था; परन्तु जब उन्होंने सुना कि उनके पाट पर विराजमान भीमिनदत्तधरिणी बड़े ही ज्ञानी, ध्यानी तथा महावीर स्वामी के बदनामिंद से निकले हुए शुद्धमस्वामी गयाधर से रचित सिद्धान्तों के बड़े अच्छे ज्ञाता हैं, तो उनका आनन्द की कोई सीमा न रही । जब लोगों ने आकर यह समाचार सुनाया कि क्रियाकृत्यस युगप्रधान, तीर्थजनों के समान

सबगुरु श्रीजिनदशहरिजी महाराज अजमेर से विहार करके हमारी तरफ आ रहे हैं, तो लोग उनके दर्शनों के लिये बड़े ही आसुर हो उठे। जब महाराज वहाँ पधार आये तो उनके दर्शन करके लोगों को हार्दिक संतोष हुआ। भावक लोगों ने महाराज से अनेक प्रकार के प्रश्न किये। हरिजी ने 'कैवलज्ञानी' की तरह उन सबको यथोचित उत्तर दिया। महाराज के उपदेश से प्रमादित होकर कई लोगों ने सम्पत्त, कर्ष्यों ने दशहरिस्ति तथा बहुतों ने सर्वहरिस्ति व्रत धारण किया। सुनते हैं वहाँ पर महाराज ने बावन साध्वियाँ और अनेक साधुओं को दीक्षा दी।

३४ उसी समय साधु जिनशेखर को उपाध्याय पद देकर कतिपय मुनियों के साथ विहार कराकर रुद्रपञ्ची मेज दिया। वहाँ पर वह अपने नाती गोविणों (स्वबनवर्ग) की भद्रावृद्धि के लिये तप करने में प्रवृत्त हो गया। स्थानीय अयदेवाचार्य ने अपने स्थान पर आने आने वाले लोगों से सुना कि श्रीजिनदशहरिजी के पाट पर आसुर सर्ष मुख-सम्पत्त, श्रीजिनदशहरिजी महाराज आजकल हमारे इस (पागड़) प्रान्त में आये हुए हैं। उन्होंने सोचा इनका आना हमारे लिये बड़ा ही कल्याणकारी है। स्वर्गीय भी जिनदशहरिजी ने वैश्यवाम को त्यागकर श्रीअमरदेवहरिजी के पास कसतिमार्ग को स्वीकार किया था। वही से हमारा मानसिक मुक्ताव बसति मार्ग की ओर है। वे अपने परिवार के साथ भी जिनदशहरिजी के दर्शन एवं वंदना के लिये उनके पास आये। बन्दनादि शिष्टाचार के बाद सिद्धान्त-मधुर-बचनों से हरिजी ने उनके साथ कुछ देर तक सम्भाषण किया। महाराज के मधुर बचनों से मुग्ध हुए अयदेवाचार्य ने कहा कि, 'बन्ध बन्धान्तर में हमारे गुह ये ही हैं।' गुह दिनों में भी अयदेवाचार्य ने उनके पास दीक्षाप्रार्थना की। शास्त्रों में बखित सनस्कृत चक्रवर्ती ने जिस प्रकार त्याग के बाद सामान्यसम्पत्ति की ओर मुह मोड़कर नहीं देखा, वैसे ही भी अयदेवाचार्य ने मठ, मंदिर, उद्यान, कोश खजाना आदि को छोड़कर बाद में उनकी तरफ प्रार्थना भी लक्ष्य नहीं किया।

भी जिनप्रमाचार्य नाम के एक महात्मा रमल विद्या के अध्येक्षक होने से लोगों में स्व प्रसिद्ध हो चुके थे। वे भूमते फिरते किमी समय तुकों के राज्य में चले गये। वहाँ पर उनके ज्ञानी समझकर एक यवन ने पूछा—'मेरे हाथ में क्या वस्तु है?' साधुजी ने गंभीर करक बतसाया, 'कि तुम्हारे हाथ में खड़िया मिट्टी का डुकड़ा और उसके साथ में एक बास भी है।' उसको बास का पता नहीं था। जब झुड़ी खोलकर देखा तो मृत्तिका लपट के साथ एक केरा भी है। इस ज्ञान-बल को देखकर वह तुर्क बड़ा प्रसन्न हुआ और मुनिजी का हाथ पकड़ कर पूजता हुआ अपनी (मातृमाया में 'चक्र-चक्र' ऐसे बोला। (बद मससमान कोई बड़ा आदमी था। उसने कहा कि इस साधु को अपने साथ में रखूँ) आचार्य ने सोचा—'यवन प्रायः (इष्ट) विरासतपत्नी हुआ करत है। इनका कोई मरोसा नहीं—कदापिदु मुझे मार डालें।' इस कारण

आचार्यजी वहाँ से रातों रात मगकर अपने देश में आ गये। देश में आने पर चैत्यवासियों में प्रसिद्ध भी उपदेशाचार्य को वसतिमार्ग के आश्रित जानकर उनकी भी इच्छा वसति-मार्ग-सेवन की हुई; परन्तु वसतिमार्ग के नियमों को अस्तिभारा के समान कठिन समझ कर मन में किन्तक गये। वसतिमार्ग के आचार्य भी जिनदत्तचरिजी की अपना गुरु बनाया जाय या नहीं? इस बात का निश्चय करने के लिये उन्होंने रमल का पाशा डाला। प्रथम बार पाशा डालने पर गणित करने से श्री जिनदत्तचरिजी का नाम आया। दूसरी बार भी पाशा डालने पर उन्हीं का नाम आया। तीसरी बार जब गणित करने लगे तो आकाश से एक अग्नि का गोला गिरा और आकाश पाखी हुई—'यदि तुम्हें शुद्ध-मार्ग से प्रयोजन है तो क्यों बारम्बार गणित करत हो? इन्हीं को अपना गुरु मानकर भर्माचरय करो।' इस वाक्यी से संशयहरित होकर जिनप्रमाचार्य ने श्री जिनदत्तचरिजी से दीक्षा ग्रहण की। और अपनी आत्मा का सन्तोष दिया। उन्हीं दिनों में अतिशय शान्ति श्री जिनदत्तचरिजी महाराज के पास आकर चैत्यवासी भी विमलचन्द्रगणित ने अपनी सम्प्रदाय के दो आचार्यों को उनके अनुयायी बना जानकर स्वयं भी वसतिमार्ग का स्वीकार किया। उसी समय जिनरचित और शीलमद्र ने भी अपनी माता के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की। जैसे ही स्वरचन्द्र और वरदत्त नाम के दो माइयों ने प्रव्रज्या स्वीकार की। वहीं पर एक अपदत्त नाम का मुनि बड़ा मत्रवादी था। उसके पूर्वव मत्रविद्या में विख्यात थे; परन्तु वे पूर्वव क्रुद्ध हुई देवी से नष्ट कर दिये गये थे। केवल यह एक बचा था। यह जिनदत्तचरिजी की शरण में आकर दीक्षित हो गया। चरिजी ने दृष्ट देवता से इसकी रक्षा की। मुखचन्द्र नाम के यति को भी चरिजी ने दीक्षा दी। इन यतिजी को जब ये भक्तक अवस्था में थे, तुर्क पकड़कर ले गये थे। इनका हाव देखकर तुर्कों ने कहा कि 'इन्हें अपना मण्डाली बनायेंगे।' यह कहीं माग न जाय इस करण से इनको जंजीर से बाँध दिया गया था। परन्तु इन्होंने कैद की कोठरी में पड़े-पड़े नमस्कार मंत्र का एक लघु जाप किया। उस जाप के प्रभाव से सायकाल जंजीर अपने आप क्षिप्त-मिथ हो गईं। वहाँ से निकलकर वे दसती रात में एक ब्याहू बुढ़िया के घर में क्षिप्त रहे। बुढ़ियाने दया करके इनको अपने कोठे में क्षिप्त लिया था। तुर्कों ने इमर-उपर इनकी खूब खोज की, परन्तु ये मिसे नहीं। रात में वहाँ से निकलकर जैसे-जैसे अपने घर आये। इस घटना से वैराग्य उत्पन्न होने से इन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की थी। रामचन्द्रगणित अपने पुत्र बीजानन्द के साथ इस धर्म को भूम्य धर्म मानकर अन्यगन्ध को छोड़ कर चरिजी का आश्रितकारी बना। इसी प्रकार प्रब्रज्याचरिजी ने भी इनसे व्रत ग्रहण किया। श्रीजिनदत्त चरिजी के पास अब साधु-साधियों का विशाल समुदाय हो गया, तो इन्होंने उनमें से योग्यों को चुन-चुन कर वृत्तिपत्रिका आदि टीका ग्रन्थ पढ़ने के लिये धारा नगरी में भेजा। उनमें जिनरचित, शीलमद्र, स्वरचन्द्र, वरदत्त, भीमति, जिनमति, पूर्णभी आदि साधु-साधियों के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं। वहाँ पर इन्होंने भावक महात्तुमार्ग की सहायता से विद्याभ्यास किया।

वहाँ से श्रीजिनदत्तहरिजी महाराज रुद्रपट्टी की तरफ विहार कर गये। एक गाँव में एक भाक्क प्रतिदिन वर्षाकर से सताया जाता था। वह गाँव मार्ग में आगया। उस व्यतर-पीड़ित भाक्क के पुण्य से महाराज वहीं ठहर गये। उस भाक्क ने महाराज के पास आकर अपनी शरीर की अवस्था बतलाई। महाराज समझ गये कि इसके शरीर में जो व्यतर है वह बड़ा मयानक है और मज-तन्तों से साध्य नहीं है। महाराज ने गणेश्वर सप्तति का टिप्पण बनाकर उसके हाथ में दिया और कहा, 'तुम अपनी दृष्टि और मन इसमें स्थिर रखो।' ऐसा करने से वह व्यतर पहले दिन बीमार की शप्ता तक पहुँचा, दूसरे दिन गृहहस्त तक और तीसरे दिन आया ही नहीं। वह पीड़ित भाक्क एकदम स्वस्थ हो गया। वहाँ से चलकर महाराज रुद्रपट्टी पहुँचे। जिनशंखरोपाध्यायजी वहाँ पहले से थे। महाराज का आगमन सुनकर स्वामीय भाक्क—बुन्द का साथ लेकर वे उनके सम्मुख आये। बड़े भारी समारोह तथा गात्र-बाजे के साथ पूज्यभी का नगर प्रवेश कराया गया। रुद्रपट्टी के एक सौ बीस भाक्क-कुटुम्बों को जिनधर्म में दोषित किया तथा पार्वनाथ स्वामी और अष्टमदेव स्वामी के दो मन्दिनों की छत्रियों ने प्रतिष्ठा की। कई भाक्कों ने देशकिरति और कर्ष्यों ने सर्वकिरति प्रव धारण किये। सर्वकिरिपत्र धारकों में देवनालगाणि आदि मुख्य थे। उपदेश आदि से सब लोगों को समाधान देकर 'अपदेवाचार्य की हम यहाँ भेज देंगे' ऐसा कहकर महाराज पश्चिम देश की तरफ चले गये।

३५ वहाँ से फिर बागड़ देश में आये। प्याप्रपुर में अयदेवाचार्य से मेल हुई। महाराज न अयदेवाचार्य को रुद्रपट्टी भेज दिया और स्वयं व्याघपुरी में रहकर भोजिनपद्मसदरि प्रकृषित, चैत्य गृहविभित्तरूप 'चर्चरी' काव्य की रचना की। उसका गुटका बनाकर मेहर, वासल आदि भाक्कों को मान के लिये बिक्रमपुर भेजा। बिक्रमपुर में देवघर क पिता दहिया के घरके पास पौषवशाता में एकत्रित होकर भाक्कों ने यह चर्चरी पुस्तक खोली। उसी समय उन्मत्त देवघर ने अधानक कर्षी से आकर चर्चरीपुस्तक भाक्कों के हाथ स खीनकर फाड़ डाली। ये लोग उस उन्मत्त का कुछ मो न कर सक। उसका पिता से शिक्नयत की तो उसने कहा, 'यह तो प्रमत्ती है, इसका क्या इलाज किया जाय। तथापि हम उस समझ देंगे। वह आपन्दा ऐसी हरकत नहीं करेगा।' भाक्कों न मन्त्रधम्मति स पूज्यभी को एक पत्र लिया। उसमें भेजी हुई चर्चरी पुस्तक का फाड़ जाने का हाल लिख दिया। पत्र लिखित समाचारों को मानकर पूज्यभी ने दूसरी चर्चरी पुस्तक लिखवाकर भेजी और उगम माय पत्र में यह भी लिखा कि—'देवघर का छोटी-छोटी कुछ भी मत कहना। देव-गुरुओं का कृपा स यह थोड़ दिनों में ही सुधर जायगा।' 'चर्चरी' काव्य की दूसरी पुस्तक को पाकर मय भाक्कों ने एकत्रित होकर उस खाँसी और पढ़ने में मन्त्रको अतीव सन्तोष हुआ। देवघर का मालूम हुआ कि दूसरी पुस्तक आगई है, तो उसने सोचा कि, 'एक तो धनि फाड़ डाली थी। फिर आपाण ने भेजी है; तो बरर हम पुस्तक में फोड़ रहस्य दिया हुआ है। जैसे भी हो यह बात

बालनी चाहिये; देखें इसके अन्दर क्या लिखा है ?' एक दिन भावक लोग अपने नित्य नियम से निश्चिन्त हाकर चर्चरी पुस्तक को स्थापनाचार्य के पास आने में रखकर पौषशाला के फाट बन्द करके चले गये। देरघर को मौक़ मिल गया। वह अपने घर के उपरिभाग से उठकर पौषशाला में आ गया और यथास्थान रखी हुई उक्त पुस्तक को बड़े चाव से पढ़ने लगा। गाथाओं का अर्थ समझने से मनमें आनन्द आने लगा। 'अनापठन विम्बसु', 'स्त्री पूजा न करोति' ये दो पद उसकी समझ में नहीं आये। पुस्तकोग्रहित वैनधर्म के उक्त रहस्यों को समझकर उसके मन में वैन-सिद्धान्तों के प्रति बड़ी भद्दा उत्पन्न हो गई और उसने अपने मन में यह संकल्प किया कि मैं भी इस मार्ग का अनुसरण करूँगा।

इस भीमिनदचरित्रजी महाराज ने पागड़देश में रहते हुये जिन साधु-साध्वियों को विद्याभ्यास करने के लिये धारानगरी भेजा था, उन सबको वहाँ से बुला लिया और सभी को सिद्धान्तों का अभ्यास कराया। अपने दीक्षित जीवदेनाचार्य को मुनीन्द्र ( आचार्य ) पद की उपाधि दी और अन्य शिष्यों को वाचनाचार्य के पदों से सम्मानित किया; जिनके शुभ नाम ये हैं—वाचनाचार्य विनचक्रित (? चन्द्र) गण्डि, वा० शीलमद्रगण्डि, वा० स्थिरचन्द्रगण्डि, वा० ब्रह्मचंद्रगण्डि, वा० विमलचन्द्र गण्डि, वा० बरदचण्डि, वा० सुवनचन्द्रगण्डि, वा० वरनागण्डि, वा० रामचन्द्रगण्डि, वा० मक्षिमद्रगण्डि। और श्रीमति, विनमति, पूर्वमी, ज्ञानभी, जिनभी इन पाँच आचार्यों को महचरा पद से विभूषित किया। इसी प्रकार स्वर्गीय हरिसिंहानार्य के सुयोग्य शिष्य मुनिचन्द्र को उपाध्याय पदवी दी। इन मुनिचन्द्रजी ने भीमिनदचरित्रजी महाराज से प्रार्थना की थी कि 'यदि मेरा कोई योग्य शिष्य आपके पास आजाय तो कृपया आप उसे आचार्य पद देने की उदारता दर्शाये।' महाराज ने यह बात स्वीकार कर ली। कुछ काल के बाद उनके शिष्य जयसिंह को, चितौड़ में दिये हुये वचन के अनुसार आचार्य की उपाधि दी और जयसिंह के शिष्य जयचन्द्र को, पाठशाला में समवसरण में मुनीन्द्र (चरित्र) पद पर स्थापित किया और महाराज ने दोनों को उपदेश दिया कि—'देखो रोसि से बर्तना, करी किया—काण्ड में असावधानी न होने पावे।' जीवानन्द को उपाध्याय पदारूढ़ किया। यहाँ यदि इन आचार्यों उपाध्याय, वाचनाचार्य प्रभृति प्रत्येक मुनिवरों का विहार-स्थान, योग्यता, शिष्य-प्रशिष्य आदि का वर्णन करने लगे तो एक बड़ा विस्तृत ग्रन्थ बन जायगा। इसलिये सधेय में इतना ही बहना पर्याप्त होगा कि विनदचरित्रजी महाराज ने आचार्यादि समस्त पदाधिकारियों को मविष्य के लिये कर्तव्य समझकर, सबके विहार आदि के स्थान निरिक्त कर दिये और महाराज स्वयं भद्रमेरु को ओर प्रस्थान कर गये। भद्रमेरु क मक्तिमान भावकों ने गात्र-भाजे क साथ ठाठ-भाट से पूज्यभी का नगर प्रवेश कराया।

३६ वहाँ पर ठाकुर आशाचर आदि ने पहाड़ पर तीन देवमन्दिर एवं अम्बिकन्दरी आदि क स्थान बनवाये थे। भावकों की प्रार्थना से भीमिनदचरित्रजी महाराज ने भच्छा सम देखकर



देवमन्दिरों के मूलनिवेश में बाधघेप किया और शिखर आदि मन्दिर के पार्श्ववर्ती स्थानों में उन-उन मूर्तियों की स्थापना करवाई। यह पहले कहा जा चुका है कि विक्रमपुर में सखियापुत्र देवघर वर्षी पुस्तक के पढ़ने से सुविहित-पथ के प्रति अनुरक्त एवं मत्किमान हो गया था। उसी देवघर ने अपने कुटुम्ब के पन्द्रह भाइयों को एकत्रित करके अपने पिता एवं सेठ आशुदेव को सम्बोधन करके कहा, 'भीमिनदचरित्री महाराज से यहाँ विक्रमपुर में विहार करने के लिये प्रार्थना करनी चाहिये।' यद्यपि ये लोग चैत्यवासी आचार्यों में अज्ञा रहते थे; परन्तु प्रमाथशाली देवघर के विरुद्ध बोझने का किसी को साहस नहीं हुआ। भाइयों को साथ लेकर वह अजमेर के लिये पला पड़ा। मार्ग की यथावत् दूर करने के लिये नागपुर में ठहरा। धनीमानी देवघर का विक्रमपुर से आना नामपुर वासियों को विदित हो गया।

३७ उस समय वहाँ पर चैत्यवासी देवाचार्य विशेष रूप से प्रसिद्ध हो रहे थे। देवघर ने सुना कि देवगृह में व्याख्यान के समय देवाचार्य बैठे हैं। तब देवघर चरखप्रचालनादि कर देवगृह में आया। आचार्य की कन्दना की। फिर दोनों ओर से मुखशता और कुण्डल-मरन का शिष्टाचार हुआ। उपरपात् भाऊ देवघर ने पूछा कि, 'मगवान्, जिस मन्दिर में रात्रि के समय स्त्रियों का प्रवेश होता हो, उसे चैत्य क्यों कहना चाहिये?' इस प्रश्न को सुनकर देवाचार्य ने सोचा-इसके अन्त में भिनदचरि का मन्त्र प्रवेश कर गया माहूम होता है। देवाचार्य ने प्रकट में कहा, 'भाऊ की। रात्रि में स्त्री प्रवेशादि उचित नहीं है।'

देवघर—तो आप लोग फिर बारस क्यों नहीं करते ?

आचार्य—साखों आदमियों में किस-किस को बारस किया जाय।

देवघर—मगवान् ! जिस देवमन्दिर में जिनाशा न चसती हो, वहाँ जिनाशा की अन्वेलना करके लोग स्वेच्छ से बरते हों उसे भिनगृह कहा जाय या बनगृह ? इसका सबाब दीजिये।

आचार्य—जहाँ पर साचात् भिन मगवान् की प्रतिमा भीतर विराजमान दिखाई देती हो उसे भिन-मन्दिर क्यों नहीं कहना चाहिये।

देवघर—इतना तो हम मूर्ख भी समझ सकते हैं कि वहाँ पर जिसकी आज्ञा न मानी जाती हो, वह उमका घर नहीं कहा जा सकता। कतल पत्थर की अर्थात् मूर्ति को भीतर रख देने से और अर्थात् की आजा को त्याग कर मनमाना व्यवहार करने मात्र से ही भिन-मन्दिर क्योंकर हो सकता है ? आप हम बात को जानत हुए भी प्रचलित प्रवाद को नहीं रोकते हैं। यह मैं आपकी कन्दन कर श्रुति कर दिया कि आप रोकते नहीं प्रत्युतः इसको पुष्ट करते हैं। इसलिये ऐसे गुरुओं

को आज से मेरी यह अन्तिम बन्दना है। अहाँ तीर्थझरों की आशा का यथार्थ रूप से पालन होता है, उसी मार्ग का अनुसरण करूंगा। इस प्रकार कइकर देवघर वहाँ से उठकर चल दिया।

इस प्रश्नोत्तर को सुनकर साथ वाले स्वकुटुम्बी भावकों की भी विधिमाग में स्थिरता हो गई। देवघर भाषकबन्द क साथ वहाँ से अजमेर गया। जिनदचरित्रजी महाराज की सेवा में पहुँचकर उसने मक्ति-भाव पूर्णक बन्दना की। उनका अमिप्राय जानकर भीखरिजी ने देशना दी। देशना सुनने से देवघर के तमाम (सारे) सशय वृ हो गये। देवघर आदि भाषकों ने महाराज से विक्रमपुर बिहार करने क लिये प्रार्थना की। अजमेर से देवमन्दिर, प्रतिमा, अम्बिका, गणेश आदि की घूमघाम से प्रतिपत्र करके खरिजी महाराज देवघर के साथ विक्रमपुर आ गये। वहाँ पर बहुत से आदिमियों को प्रतिबोध दिया और श्री महावीर स्वामी की स्थापना की।

३८ वहाँ से भीपूज्यजी उखान गरी में गये। मार्ग में विप्रकारी भूत-प्रेत आदि को भी प्रति बोध दिया। उच्छावासी लोकों को उपदेश दिया, इसमें तो फहना ही क्या है? वहाँ से वे नरवर गय। नरवर क बाद त्रि सुवन गिरि के कुमारपाल नाम के राजा को उन्होंने सदुपदेश दिया। वहाँ बहुत स साधु-संतों को बिहार करवाया, एवं भगवान् शान्तिनाथ देवकी प्रतिष्ठा करवाई। वहाँ से उज्जैन में जाकर व्याख्यान के समय महाराज को चलने के लिये भानिक्यभों के वेग में आई हुई चौमठ योगिनियों को प्रतिबोधित किया।

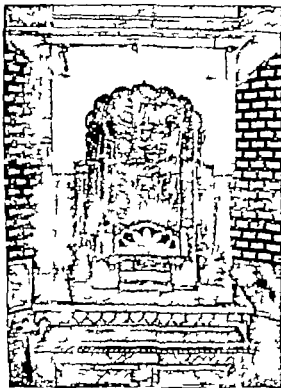
एक समय महाराज बिचौड़ पधारे थे। नगर में प्रवेश के समय विप्रप्रमो लोगों ने अपशकुन करने क लिये रस्ती से बाँधकर काले सर्प को मार्ग में खरिजी के समुख छोड़ दिया। भाषकों ने अपशकुन समझकर गाँवे-वाले बन्द करवा दिये और सब पर विपद् का गया तथा व सब अस्थन्व दुःखी हुये। उनकी यह स्थिति देखकर ज्ञान क शर्य भी जिनदचरित्रजी महाराज बोले— 'आप लोग उदास क्यों हो गये हैं? जिन दुष्टों ने इस काले सर्प को बाँधकर इस रास्ते में डाला है, वे भी इसी प्रकार निगडों से बाँधे जाकर राजा द्वारा जेलखाने में डाले जायेंगे। इसलिये शुल्स को भाग चलने दो; यह बड़ा ही सुन्दर शकुन है।' अब कुछ दूर आगे पहुँचे तो दुष्टों ने अप शकुन बहान के लिये एक नकली औरत को आगे लाकर खड़ी कर दी। उसको भागे खड़ी देखकर उसी की माया में भीपूज्यजी बोले— 'आई मझी'। उस दुष्ट रण्डा ने प्रत्युत्तर दिया— 'मन्सइ पाण्डकइ सुककी।' कुछ हैसकर प्रतिमाशाही पूज्यजी बोले— 'पसहरा वेख तुहदिआ।' इसक बाद वह निरुत्तर हो वहाँ से चली गई। महाराज का प्रभाव देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। इन महाराज ने अपन जीवन में अनेक आश्चर्यकारी कार्य किये। देवता नाँकों की तरह सर्वदा इनका हुक्म उठया करते थे। महाराज करुणा के समुद्र थे। महाराज ने धारापुरी, गणपत्र आदि अनेक नगरी, पुर, ग्रामों में महावीर, पारशनाथ, शान्तिनाथ, अजितनाथ आदि तीर्थझरों की प्रतिमा, मन्दिर

और शिखरों की स्थापना की थी। इन्होंने अपने ज्ञान-बल से अपने बाद पात्र की उन्नति करने वास्तु, रासल भावक के पुत्र जिनचन्द्रधरि को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया था। उन्होंने इस सुबन में मध्य पुत्रों को उसी प्रकार प्रतिबोध दिया जैसे धर्म कर्मों को बोध देता है। इस प्रकार भी जिनदचधरिजी महाराज का यह जीवन चरित्र अति सचप में कहा गया है। अस्तु, उस नकली औरत के हट जाने पर महाराज बड़े समारोह पूर्णक नगर में प्रविष्ट हुये और वहाँ पर कई दिनों तक रहकर तीर्थहर-प्रतिमा-प्रतिष्ठा सम्बन्धी बहुत से महोत्सव कराये। वहाँ से प्रस्थान करके आचार्यश्री अजमेर गये। अजमेर में वि० सं० १२०१ फाल्गुन सुदी ६ (नवमी) को जिनचन्द्रधरि को दीक्षा दी गई। अन्य मनुष्यों से दुःसाध्य अति कठिन तपोबलक प्रभाव से बहुत ही उपनोपम विद्यार्थ-मंत्र-सूत्र तथा यंत्र महाराज जिनदचधरिजी ने ज्ञान लिये थे। ये महात्मा मठों के वाञ्छित मनोरथ सफल करने में चिन्तामणि रत्न के समान थे। इन्होंने वि० सं० १२०५ को वैशाख सुदि षष्ठी के दिन बिज्जमपुर में रासलकुलनन्दन भीजिनचन्द्रधरि को अपने पाद पर पैठया। उस समय भीजिनचन्द्रधरि की अवस्था केवल नौ ही वर्ष की थी; परन्तु इतनी छोटी अवस्था में ही ये महात्मा बड़े-बड़े विद्वानों के ज्ञान फलरत और सौम्य-मान्य आदि अनेक गुणों का निधान थे। अपनी उपस्थिति में जिनचन्द्रधरि को उत्तराधिकार देकर तथा करने योग्य समस्त धर्मों को विधि-पूर्वक समझ करके अजमेर में ही वि० सं० १२११ में आपाद वदि\* एकदशी को भीजिनदचधरिजी महाराज इस असार ससार को त्याग कर देवताओं को दर्शन देने के लिये इन्द्र की प्रसिद्ध अमरवती में पचार गये।

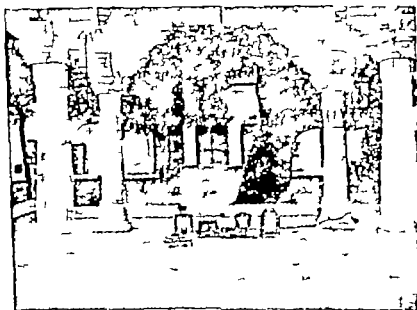
### मणिधारी जिनचन्द्रधरि

३६ विक्रम सम्बत् १२१४ में भीजिनचन्द्रधरिजी ने त्रिभुवन गिरि में सजनों के मन को हरने वाले, भीशान्तिनाथ शिखर पर बड़े ठट्ट-बाटके साथ सुवर्ण कलश और सुवर्णमय ज्वलदण्ड का आरोपण किया। इसके बाद हेमदेवो नाम की आर्या को प्रवर्तनी पद देकर वि० सं० १२१७ में फाल्गुन शुक्ल दशमी के दिन मथुरा पहुँच कर पूज्यदेवगणि जिनरथ, वीरमठ, वीरबय, अगहित, जयशील, जिनमठ आदि सहित भीजिनचन्द्रधरि को दीक्षित किया। आ० चेमंभर नामक धनीमानी सेठ की इन्होंने प्रतिबोध दिया और उपर्युक्त वर्ष में ही वैशाख शुक्ला दशमी को मरुकोट में भगवान चन्द्र प्रमत्सामी के विधि-वैद्य में सुवर्ण कलश और सुवर्णमय ज्वलदण्ड का आरोपण किया। कलश, ज्वल, दण्ड, साधु सठ गोष्ठक ने अपने निज के धन-व्यय से तैयार कराये थे। इस महोत्सव में चेमंभर सेठ ने पाँच सो द्रम्म देकर माला ग्रहण की।

\* प्रस्तुत पहाड़की क अतिरिक्त अम्ब सच गुर्बाजिबों तथा चरितों में स्वर्गोपम की विधि आपण्डुपण्डा एकदशी ही वाञ्छित है तथा परम्परा से मान्य भी है।



शाना जिनदत्त मूर्ति का स्वर्ग स्थान दादाबाड़ी अजमेर (पृष्ठ ८४)



मणिधारी जिनपद्ममूर्ति का मन्नाधिरयान दिल्ली (पृष्ठ ८४)



युगप्रधान दादा विमलपुरात मरिजी (पृष्ठ १२६)

वहाँ से महाराज उद्यानगरी में पहुँचे । सं० १२१० में अणमदच, विनयचन्द्र, विनयशील, गुणवर्द्धन और मानचन्द्र आदि पाँच साधु तथा जगभी, सरस्वती, गुडभी आदि साध्वियों दोषित कीं । इन महाराज के शासनकाल में साधु-साधियों की संख्या बढ़ने लगी । तत्परचात् सं० १२२१ में ये महाराज सागर पाट पधारे । वहाँ पर भा० गणधर द्वारा बनाये गये भी पार्श्वनाथ विधि-चैत्य में देवकुस्त्रिका प्रतिष्ठित की । अजमेर में पधार कर स्वर्गीय भीजिनदचधरिजी महाराज के स्मरण स्तूप की प्रतिष्ठा की । तदनन्तर बम्बरक ग्राम में जाकर वाचनाचार्य गुणमद्रगधि, अमयचन्द्र, यशचन्द्र, यशोमद्र और देवमद्र इन पाँच शिष्यों को दीक्षा दी और इनके साथ देवमद्र की धर्मपत्नी को भी अधिकारिणी समझ कर दीक्षित किया । आशिकानगरी में नागदच मुनि को वाचनाचार्य का पद दिया । महाबन में भीमजितनाथ मगवान् के मन्दिर की विधि-पूर्वक प्रतिष्ठा की । इसी प्रकार इन्द्रपुर में वा० गुणचन्द्र गधि के पितामह लाल थाषक द्वारा बनाये हुये शान्तिनाथ मगवान् क विधिचैत्य में सुवर्णामय दण्ड, फलश और ध्वजा प्रतिष्ठित की । तगला नामक ग्राम में अजितनाथ विधि-चैत्य की प्रतिष्ठा की । सं० १२२२ में बादलीनगर में वाचनाचार्य गुणमद्र गधि क पितामह लाल थाषक द्वारा बनवाये हुए सुवर्णामय दण्ड, फलश, ध्वजा आदि की भीजिनचन्द्रधरिजी ने प्राधान पात्रवनाथ सुवन में प्रतिष्ठित कर, अम्बिका-शिलर पर भी सुवर्ण कलश की स्थापना कर, पूज्यभीरुद्रपट्टी की और विहार कर गये । रुद्रपट्टी से आगे नरपालपुर में महाराज गये । वहाँ पर ज्योतिःशास्त्र के ज्ञान स गर्वित, एक ज्योतिषी महाशय स पूज्यभी की मुलाकात हुई । वाद-प्रतिवाद चलने पर महाराज ने कहा कि 'धर-स्थिर द्विस्वभाव इन तीन स्वभाव वाले समों में किसी लक्ष का प्रभाव दिखाओ ।' ज्योतिषीजी के इन्कार करने पर धरिजी ने कहा—'स्थिर स्वभाव बाल बृषलक्ष की स्थिरता का प्रभाव देखिये; बृषलक्ष के उभोस से तीस अशों तक क समय में और मृगशीर्ष सूर्त में भीपार्श्वनाथ स्वामी क मन्दिर क सामने एक शिला अमा-वस्या के दिन स्थापित की । यह १७६ वर्षों तक स्थिर रहेगी ।' ऐसा कहकर पण्डित को मोत लिया । पण्डित लम्बित होकर अपने स्थान को गया । मुनते हैं वह शिला अब भी उक्त ध्यान में ज्यों की त्यों वर्तमान है ।

४० महाराज नरपालपुर स सौत्कर निर रुद्रपट्टी चल आय । वहाँ पर छोटी अरस्या बाल महाराज जिनचन्द्रधरिजी किसी दिन चैत्यबामा मुनियों क मठ क नाम होकर अरने शिष्यों क साथ बहिर्भूमिक क स्तिय जा रह थे । मठाधीश भी पधचन्द्राचार्य ने उनका दखकर मात्सर्ववरा पूछा—कहिपे आचार्यजी, आप मज में हैं ?

भीपूज्यजी ने कहा—देव और गुम्हों की कृपा स हम आनन्द में हैं ।

पधचन्द्राचार्य फिर बोले—आप आनन्दन किन-किन शास्त्रों का अभ्यास कर रह हैं ।

महाराज के साथ बाले मुनि ने कहा—श्री पूज्यजी आजकल 'न्याय-कन्दली' ग्रन्थ का चिन्तन करत हैं।

पद्मचन्द्राचार्य—तमोबाद ( अक्षर प्रकरस्य ) का चिन्तन क्रिया है ?

श्री पूज्यजी—हां, तमोबाद प्रकरस्य देखा है।

पद्मचन्द्राचार्य—अन्धी तरह से मनन कर लिया ?

श्री पूज्य—हां कर लिया।

पद्म०—अक्षर रूपी है या अरूपी ? अक्षर का कैसा रूप है ?

श्री पूज्य—अक्षर का रूप कैसा ही हो। इस समय इसके विवेचना की आवश्यकता नहीं है। राज समा में प्रधान प्रधान सम्यों के समक्ष शास्त्रार्थ की व्यवस्था की जाय। तदनुसार बादी-प्रतिवादी अपनी-अपनी युक्ति-प्रमाणों के द्वारा इस विषय का मनोवृत्ताटन करें। यह निश्चित है कि स्वयंस्थापन करन पर भी वस्तु अपना स्वरूप नहीं छोड़ती।

पद्म०—पक्षस्थापना मात्र से वस्तु अपना स्वरूप छोड़े या न छोड़े; परन्तु तीर्थङ्करों ने ठमको द्रव्य कहा है। यह सर्वमम्यत है।

श्री पूज्य०—अक्षर को द्रव्य मानने में कौन इन्कार करता है ? पूज्यधी जिनचन्द्रखरिजी न बालाताप के समय ज्यों-ज्यों शिष्टता और विनय दर्शित किया; वैसे-वैसे पद्मचन्द्राचार्य दर्य सीमा का पार कर गये। कोप के आवरण से उनकी आंखें लाल हो गईं। समस्त गात्रों में कंपकंपी आ गई थी। धार करने लग—'मैं अब प्रमाणीति से 'अक्षर द्रव्य है' इसे स्थापित करूँगा, तब क्या तुम मर मामन टहरने की योग्यता रखत हो ?'

पूज्यधी०—'किमकी योग्यता है किमका नहीं' इसका पता राजममा में लगेगा। ( यहाँ पर ध्वज ही पागत की तरह प्रस्ताप करना मुझ नहीं आता )। पशुप्रायों की अज्ञान ही रसभूमि है। ध्यान मुझ कम उम्र का समझकर अपनी शक्ति को अचिह्न न बघारिये। मालूम है छोटे शरीर बाल विद पी दहाड़ मुनकर पर्यन्तकृति गजराज मारे मय के भाग भते हैं ?

उन दोनों आचार्यों का यह विवाद मुनकर कृतक इत्यन्त के लिये वहाँ पर बहुत से मार्गिक लोग इकट्ठे हो गये। दोनों पक्ष का भावक अपने-अपने आचार्यों का पक्ष लेकर एक दूसरे को अदृष्टा दिग्गमन लग। अचिह्न क्या करें; यह मामला राज्याधिकारियों के समक्ष उपस्थित किया गया। दोनों और न नियम कायद निश्चित कर शास्त्रार्थ की व्यवस्था निपाति की गई। जिनचन्द्रखरिजी दृष्टा के माय अब शास्त्रार्थ करन लग, ता शास्त्रार्थ

क उपोदात्त में ही पञ्चद्राचार्यजी किसल गये। उनका गर्व शास्त्रार्थ की प्रथमावस्था में ही मग्न हो गया। राजकीय अधिकारियों ने बड़ी सावधानी के साथ बस्तुस्थिति को समझकर उपस्थित दरजों के सामने ही राज्य की ओर से श्रीजिनचन्द्रहरिजी को विजय-पत्र दिया। चारों ओर से घेरी-घेर कर जय घोष होने लगा। जिन-शासन की लोगों में बड़ी प्रभावना हुई। इस आशावोत विजय के उपलक्ष्य में महाराज को पक्षर्त देने के लिये अत्यन्त प्रसन्न हुये भावकों ने उत्सव मनाया। तत्पश्चात् श्रीपूज्य-भक्त भावक 'अपति इष्ट' इस नाम से प्रसिद्ध हुये और पञ्चन्द्राचार्य के भक्त भावक लोगों के आशेष तथा उपहास के पात्र बनकर 'तर्कइष्ट' इस नाम से प्रसिद्ध हुये। इस प्रकार यशस्वी आचार्य जिनचन्द्रहरिजी कई दिन तक वहीं रहे। बाद में सिद्धान्तों में बताया हुई विधि के अनुसार एक सार्वभौम के साथ वहाँ से विहार किया।

४१. मार्ग में खोर सिद्धान्त के ग्राम के पास सारे ही सच ने पड़ाव लगा। वहाँ पर स्लेच्छों के मय से संघ को आकुल-व्याकुल होता देखकर श्रीपूज्यजी ने पूछा—'आप क्यों व्याकुल हो रहे हैं?' सच बालों ने कहा—'भगवन्! आप देखिये स्लेच्छों की सेना आ रही है। इधर इस दिशा में धूली का हूँ उड़ रहा है और अन्न लगाकर ध्यान से सुनिये, कौज का हो इच्छा सुनाई दे रहा है।' महाराज ने सावधान होकर सब से कहा—'सचस्थित भद्रियों! धैर्य रखो, अपने ऊँट, बैल आदि चतुष्पदों को एकत्रित करलो। प्रभु श्रीजिनचन्द्रहरिजी महाराज सचका मला करेंगे।' इसके बाद पूज्यजी ने मन्त्र-ध्यान पूर्वक अपने दण्ड से सच के पड़ाव के चारों ओर कोटाकर रेखा खींच दी। संघ के तमाम आदमी गोष्ठी में घुमकर बैठ गये। उन लोगों ने घोड़ों पर चढ़े हुये, पड़ाव के पास होकर जाते हुये हजरोत स्लेच्छों को देखा परन्तु मन्त्रों ने सच को नहीं देखा, क्यस्त कोट को देखते हुये दूर चले गये। सच के समस्त लोग निर्भय होकर आगे चले। दिल्ली में समाचार पहुँचा कि पिछले ग्राम से सच के साथ श्रीपूज्यजी आ रहे हैं। खबर पाते ही दिल्ली के मुख्य-मुख्य भावक इन्दना करने के लिये बड़े समारोह के साथ सन्मुख चले। ऊँट, सोइट, सेठ पान्हास, सेठ कुलचन्द्र और सेठ महीचन्द्र आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। नगर के मुखिया, पनी, मानो, सठ, साहूकार सुन्दर बस्त्राभूषण पहिन कर, अपने-अपने परिवार को साथ लेकर हाथी, घोड़ा, पालकी आदि श्रेष्ठ सवारियों पर चढ़कर जब दिल्ली से बाहर बाहर गये; तब अपने महल की छत पर बैठे हुए दिल्ली नरेश महाराजा मदनपाल\* ने उन्हें जल देकर विस्मय के साथ मन्त्रियों से पूछा—'आज ये नगर-निवासी बाहर क्यों बाहर गये हैं?' मन्त्रियों ने कहा—'राजन्! अत्यन्त सुन्दराकृति, अननक शक्ति-मय्यभ इनके गुरु आये हैं। ये लोग मक्तिवश उनक सन्मुख जा रहे हैं।' राजा लोग मनमौजी होत हैं। मन्त्रियों का पूर्वोक्त कथन सुनकर राजाधिराज के मन में यह अभिलाषा हुई कि

\* समकालीन अन्नगपाल का ही जैन-साहित्य में मदनगल-पयोवर्षाचो नाम मिलता है। महाराज अन्नगपाल अमलम दिव्य सभाट दृष्टीदात्र चोदान के नाना थे।



ऐसे प्रभावशाली गुरु का दर्शन हम भी करेंगे और उसी समय अन्धशालाघ्न्य को आदेश दिया—  
 महासाधनिक। हमारे छाया बोड़े को सजाओ तथा नगर में उद्योगोपस्था करवाओ कि सब राजपू  
 पुइसवार हमारे साथ चलें। भूपति का आदेश पाते ही हजारों पवित्रवीर अन्धारुह होकर नरपति के  
 साथ हो लिये। भावक लोगों क पहुँचने क पहिले ही महाराजा मदनपाल भीपूज्यजी क पास पहुँ  
 गये। वहाँ पर पूज्यभी के साथ वाले संघ के श्रेष्ठियों ने प्रचुर मेट ( नजराना ) देकर राजा क  
 सत्कार किया। भीपूज्यजी ने भूपति जानकर कर्कशप्रिय मधुरवासी से राजा को चमोपदेश दिया।  
 देशना सुनकर राजा ने कहा—‘आचार्यवर ! आपका शुभामन किस स्थान से हुआ है ?’ भीपूज्यजी  
 ने कहा—‘हम इस समय उरुपक्षी से आ रहे हैं।’ राजा ने कहा—‘आपकी अपने परबन्धनित्त  
 से मेरी नगरी ( दिह्ली ) को पवित्र कीजिये।’ राजा के यह वाक्य सुनकर आचार्य महाराज मन ही  
 मन सोचने लगे—‘पूज्य गुरुद्वेष भीजिनदत्तद्वारित्री महाराज ने दिह्ली-प्रवेश का निषेध किया था।  
 राजा बसने क लिये आग्रह कर रहा है। ऐसी स्थिति में क्या करें ?’ इस प्रकार आचार्यभी पशाके  
 में पड़कर कुछ भी उचर नहीं दे सके। आचार्य को मौन मुद्रा देखकर राजा बोला—‘महान्व।  
 आप चुप क्यों हो गये ? क्या मेरे नगर में आपका कोई प्रतिपक्षी ( दुरमन ) है ? क्या आपके मन  
 में यह आशंका है कि मेरे परिवार के उपयोग आहार-पानो नहीं मिलेगा ? अथवा और कोई कारण  
 है; जिससे मार्ग में आये हुये मेरे नगर का छोड़कर आप अन्यत्र चारहे हैं ?’ यह सुनकर आचार्यभी  
 ने कहा—‘राजन् ! आपका नगर धर्म-प्रधान क्षेत्र है।’ यह सुनते ही बीच में ही महाराजा ने कहा—  
 ‘तो फिर उठिये, दिह्ली पधारिये। आप विश्वास रखिये मेरी नगरी में आपकी तरफ कोई अंगुली  
 उठाकर भी नहीं देख सकेगा।’ इस प्रकार दिह्लीधर महाराजा मदनपाल के शरणागत अतुरोच व  
 दिनवन्धरित्री दिह्ली के प्रति विहार करने को प्रस्तुत हो गये। यद्यपि स्वर्गीय आचार्य भीजिन-  
 दत्तद्वारित्री के दिह्ली-गमन-निषेधार्थक अन्तिम उपदेश के त्यागने से उनके हृदय में मानसिक-  
 पीड़ा अबरप थी, परन्तु माँ की वश होकर आचार्यभी राजा के प्रेम-भक्ति के प्रभाव में बाहर  
 दिह्ली चल दिये, अस्तु। सेनाचार्य के शुभामन क उपलक्षण में सारा नगर सजाया गया। चौकीस  
 प्रकार के भावे बजने लगे। माण-वाद्य संगीत किरवावली पढ़ने लगे। गगनचुम्बी विशाल मन्नों  
 पर ध्वजा-पताकार्यें फहराने लगीं। बसन्त आदि माँगलिक गाने, गाये जा रहे थे। नर्तकियों नाच  
 रही थीं। महाराज के मस्तक पर अन्न विराजमान हो रहा था। सान्छों आदमी शुभ्र के साथ चल  
 रहे थे। स्वयं दिह्लीपति महाराजा मदनपाल अपनी बाँह पकड़ाये हुये महाराजभी के आगे चल  
 रहे थे। मन्दरमाल और दोरखी से सजी गृह शर सजाये गये थे। ‘बीबीसी’ गालो हुई हजारों ल-  
 यियों का सुख छतों पर स आचार्यभी के दर्शन करके अपने को बन्ध मान रही थी। वेत  
 अमृतपूर्व समारोह के साथ द्वारिधर ने भारत की परम्परागत प्रचान राजधानी दिह्ली में प्रवेश किया।  
 महाराज के विराजने से नगर-निवासियों में ‘राजा से रूक ठक’ नवजीवन का संचार हो गया।

उपदेशामृत की मन्दी से अनेक लोगों की सन्तप्त आत्मा को शान्ति पहुँची। इस प्रकार बर्हा रहते हुये कई दिन बीत गए।

४२ एक दिन दयालु स्वभाव वाले महाराज ने अनन्यमत्त भेष्टि कुलचन्द्र को घनाभाव क कारण अर्ध-दुर्बल देखकर, कसर, कस्तूरी गोरुचन आदि सुगन्धित पदार्थों की स्याही से मन्दाचर लिखकर एक 'यन्त्रपट' दिया और कहा—'कुलचन्द्र ! इस यन्त्रपट की अपनी सुष्ठीमर अष्टगन्ध चूर्ण से प्रतिदिन पूजन करना। यन्त्र पर चढ़ा हुआ यह चूर्ण पारे के संयोग से 'सुचर्या' बन जायगा।' पूज्यधी की बर्ताई हुई विधि के अनुसार यन्त्रपट की पूजा करने से भेष्टि कुलचन्द्र अज्ञान्तर में क्रोडपति हो गया।

४३ नवरात्रों की नवमी क दिन पूज्यधी नगर के उत्तर द्वार से होकर बहिर्भूमिका के लिये जा रहे थे। मार्ग में मौस के लिये लड़की हुई हो मिष्प्याष्टि वाली देवियों को देखा। कल्याण्ड्र इन्द्रय सूरिणी ने उनमें से अघिगाली नामक देवी को प्रतिबोध दिया। उस देवी ने सद्गुपदेश से शान्त-विच होकर पूज्यधी से निवेदन किया—'भगवन् ! आज से मैं मौस-बलि का त्याग करती हूँ। परन्तु, कृपा करके मुझे रहने के लिये स्थान बठलाइये; वहाँ पर रहती हुई मैं आपके आदेश का पालन कर सकूँ।' उसके सन्तोष के लिये पूज्यधी ने कहा—'दीवीजी ! धीपार्शनाथ भगवान के विधि-वैत्य में तुम चले जाओ और वहाँ दक्षिणस्वम्भ में रहो।' देवी को इस प्रकार आस्थासन देकर महाराज पीपवशास्ता में गये। भेष्टि लोहट, कुलचन्द्र, पन्डव आदि प्रधान भावकों स कहा—'पार्शनाथ मन्दिर के दक्षिण स्वम्भ में अघिष्ठत्यक मूर्ति बनवाओ। वहाँ मैंने एक देवी को स्थान दिया है।' आदेश पाते ही भावकों ने सब कार्य ठीक कर दिया। भीपूज्यधी ने प्रतिष्ठा करवादी। अघिष्ठत्यक का नाम अतिबल रखा गया। भावकों की ओर से उसके लिये अन्धे भोग का प्रबन्ध कर दिया गया। अतिबल (नामक प्रतिष्ठित देवता) भी भावकों के अमीष्ट मनोरथ की पूर्ति करने में प्रवृत्त हुआ।

वि० स० १२२३ में श्रीविनचन्द्रधरिजी महाराज चतुर्विच सच से समा-प्रयना करके अनशन विधि क साथ द्वितीय मादवा बदि चतुर्दशी के दिन इस संसार को त्याग करके देवलोक को प्रयाण कर गये।

४४ शरीर त्यागक समय महाराज ने अपने पार्श्ववर्ती लोगों से कहा था कि, 'नगर से जितनी दूर हमारा दाह सस्कर किया जायगा; नगर की आवादी उतनी ही दूर तक बढ़ेगी।' इस गुरु-वचन को याद करके उपासकगण महाराजभी क शूतशरीर को अनेक भयदधिकार्यों से मण्डित विमान में रखकर शहर से बहुत अधिक दूर ले गये। वहाँ पर भूमि पर रखे हुये भीपूज्यधी के

विमान को देखकर तथा जगत्त्रय को आनन्ददायक गुणों का स्मरण करके प्रभान-गीतार्थ तथा गुणवन्द गण्य शोकभ्रूण गद्गद्वाक्सी से महाराजकी की स्तुति करने लगे—

चातुर्वर्ण्यमिदं मुदा प्रयत्नते स्वद्रूपमालोकितु  
 माहृन्नाश्च महर्षयस्तत्र वच कतुं सदैवोद्यता ।  
 शक्रोऽपि स्वयमेव देवसहितो युष्मत्प्रभोमीहते,  
 तत्किं श्रीजिनचन्द्रसूरिसुगुरो ! स्वर्गं प्रति प्रस्थित ॥१॥  
 साहित्यं च निरर्थकं समभवन्निकृष्टाय लक्षणा,  
 मन्त्रैर्मन्त्रपरैरभूयत तथा कैवल्यमेवाश्रितम् ।  
 कैवल्यजिनचन्द्रसूरिवर ! ते स्वर्गाधिरोहे हहा !  
 सिद्धान्तस्तु करिष्यते किमपि यत्तन्नेव जानीमहे ॥२॥  
 प्रमाणिकैराधुनिकैर्विधेय, प्रमाणमार्गं स्फुटमप्रमाण ॥  
 हहा ! महाकष्टमुपस्थितं ते, स्वर्गाधिरोहे जिनचन्द्रसूरे ! ॥३॥

[ ६ सुगुरु श्रीजिनचन्द्रसूरिसो महाराज ! चारों बरों के लोग सदैव आपका दर्शन करने का लिये निरन्तर प्रयत्न किया करते थे । सर्वत्र हम साधुगण भी सर्वदा आपकी आज्ञा का पालन करने का लिये प्रयत्न रहा करते थे । फिर भी आप हम निरपराध लोगों को छोड़कर स्वर्ग पसार गये; इसका एकमात्र कारण हमारी समझ में यही आया है कि देवताओं के साथ स्वर्ग देवराज इन्द्र भी बहुत समय से आपका दर्शनों की प्रताषा करता था ॥१॥

आपकी कृपा पधारन से साहित्य-शास्त्र निरर्थक हो गया; अर्थात् आप ही उसके परमापी-मर्मज्ञ थे । इस ही न्यायशास्त्र लक्ष्य-शून्य हो गया । आपका आशय टूट जाने से निराधार, यत्रशास्त्र क मत्र परम्पर में मात्रणा करते हैं कि जब हमें किसका सहारा लेना चाहिये; अर्थात् आप मन्त्रशास्त्रों का अद्वितीय ज्ञाता थे । इसी प्रकार ज्योतिष की अमान्यता-रमसतिया न आपका विभाग में बराबर ही शक्ति का आशय लिया है । अब सिद्धान्त-शास्त्र क्या करेंगे ? हमका हमें ज्ञान नहीं है ॥ २ ॥

आधुनिक मीमांसकों का निय मीमांसा-शास्त्र का प्रमाणमार्ग अप्रमाण स्वरूप हो गया है; क्योंकि उमका विराज का हम परापाय पर नहीं रहा । श्रीजिनचन्द्रसूरिसो ! आपका देवगाथी-शब्द से सब शास्त्रों में हलचल मग गई है ॥ ३ ॥ ]

इस प्रकार गुरु-गुण-गान करते-करते गुणचन्द्र गण्डि अधीर हो गये। आँसों से आँसुओं की धारा बह निकली। इसी तरह अन्य साधुवर्ग भी गुरु-स्नेह से विह्वल होकर परस्पर में पराङ्मुख होकर अभिप्राय करने लगे। उपस्थित आचमनग भी मन्नापल से नेत्र ढाँककर दिवक्रियाँ लेने लगे। गुणचन्द्र गण्डि स्वयं पर्यं धारण करके इस अप्रिय दृश्य को रोकने के लिये साधुओं को सम्बोधन करके कहने लग- 'पञ्चमहाव्रतधारी मुनिवरों! आप लोग अपनी-अपनी आत्मा को शान्ति दें। भीषण्यजी ने स्वर्ग सिंघारत समय मुझे आवश्यक कथम्य का निर्देश कर दिया है। जिस तरह आप लोगो का मनोरथ सिद्ध होगा वैसा ही क्रिया जायगा। इस समय आप मर पाँछ-पीछ चले आवें।' इस तरह दाह-संस्कार सम्बन्धी क्रिया कलाप को सम्पादित कर सब मुनिजनों का साथ सवत्सरीय माघश्राद्धादि गुणचन्द्र गण्डि पीपचशाला में आ गया। कुछ दिन दिव्नी में रहने के बाद चतुर्विध सप का साथ माघश्राद्ध गुणचन्द्र गण्डि बम्बेर के क्षेत्र सिंघार कर गये।

### आचार्य जिनपतिश्रुति

४५ वहाँ पर मंथ के प्रधान पुरुषों की सम्मति लेकर बड़ गाँव-बाँव और ठाट-भाट के साथ जिनचन्द्रश्रुति का पाट पर आचार्य योग्य छत्तीस गुणों से अलङ्कृत, चौदह वर्ष की आयु वाल नरपति स्वामी नाम के ब्रह्मचारी को विठायी गया। पाट पर आरूढ़ होने के पश्चात् इनका नाम परिवर्तन करके जिनपतिश्रुति रखा गया। पाटारोहण सम्बन्धी सत्ता कार्य स्व० जिनदत्तश्रुतिजी महाराज के षोडश शिष्य भीषण्यद्वाराचार्य के तत्त्वावधान में सम्पन्न हुआ। जिनपतिश्रुतिजी का जन्म वि० सं० १२१० में विक्रमपुर में हुआ था। उनकी दीक्षा १२१७ की फागुन शुक्ला दशमी को हुई थी और व सं० १२२१ अतिक सुदी १३ को पाट पर आरूढ़ हुए। इनकी दीक्षा में अनेक दश-दशान्तरों से लोग आये थे। प्रागन्तुकों के आतिथ्य में एक हजार (१०००) रुपयों का व्यय मार भी सट मानद्वारा न उठाया था। श्रीजिनचन्द्रश्रुतिजी महाराज के समय में वाचन-धर्म पद की धारण करने वाले श्रीजिनमद्राचार्य को आचार्य पद देकर भी मय न द्वितीय श्रेणि का आचार्य बनाया। उसी स्थान पर श्रीजिनपतिश्रुतिजी ने पहले पहले पञ्चम-द्र, पूषाचन्द्र नाम के दो गुरुद्वयों को प्रतिवाच दत्त साधु-व्रत में दीक्षित किया। तत्पश्चात् सं० १२२४ में विक्रमपुर में गुणधर, गुणशील, पूर्णरथ, पूषासागर, वीरचन्द्र और वीरदत्त को क्रम से तीन नन्दियों की स्थापना करके दीक्षा दी। महाराज न जिनप्रिय मुनि को उपाध्याय पद प्रदान किया और सं० १२२४ में पुष्करणी नामक नगर में मयन्तीक जिनसागर, जिनाकर, जिनबन्धु, जिनपात्र, जिनधर्म, जिनशिष्य, जिनमित्र को पञ्च महाव्रतधारी बनाया। महाराज न पुनः विक्रमपुर में आकर जिनदत्त गण्डि को दीक्षा दी। इसके बाद सं० १२२७ में भीषण्य उद्यानगरी में आय और वहाँ पर धर्मसागर, धर्मचंद्र, धर्मराज, धर्मशाल, धर्मशाल, धर्ममित्र और इनके साथ पमशील की माता को

मी दीक्षित किया। विनहित मुनि को बाचनाचार्य का पद दिया गया। वहाँ से महाराज मरुकोट आये, मरुकोट में शीलसागर, विनयसागर और उनकी बहिन अश्वितीर्थी को संयम ब्रत दिया। सं० १२२८ में पून्यभी सागर पाड़ा पहुँचे। वहाँ पर सेनापति आम्बड तथा सेठ सादल के बनाए हुये अश्वितीर्थी स्वामी तथा शान्तिनाथ स्वामी के मस्त्रियों की प्रतिष्ठा करवाई। इसी वर्ष बम्बोरक गाँव में मी बिहार किया। वहाँ से आशिष्कान गरी के भावकों को पता लगा कि महाराज पाठ क गाँव में पधार गये हैं, तो आशिष्क क रामा भीमसिंह को साथ लेकर भावक बर्ग महाराज के पास पहुँचे, बन्दना—नमस्कार व्यवहार के बाद जब पून्यभी ने कृष्ण प्रश्न किया तो राजा ने स्वरूपबान और सधुवपती आचार्य के वचनों में अत्यधिक मधुरता देखकर कृष्ण उपदेश सुनाने क लिये प्रार्थना की। घरीरवर ने राजनीति के साथ धर्म का उपदेश किया। अबसर देखकर राजा ने केसिका कहा—‘मगबन् ! हमारे नगर में एक दिगम्बर महा विद्वान् है। क्या उसके साथ आप शास्त्रार्थ करेंगे ?’ महाराज की सेवा में बैठे हुए विनयिय उपाध्याय ने कहा—‘राजन् ! हमारे धर्म में पल्लव किमी से बिबाद करना उचित नहीं माना है। परन्तु यदि कोई अमिमानी पठित अपना सामर्थ्य दिखसाता है और धिन—शासन को अबाहेलना करता हुआ हमें धर्म्य ही खिन्न करता है तो, हम पीछे नहीं हटते हैं। जैसे-जैसे उसका मान-मर्दन करके ही हमें शान्ति मिलती है।’ राजा न पून्यभी की तरफ इशारा करते हुए कहा कि, ‘क्या ये ठीक कहते हैं ?’ पून्यभी ने कहा, ‘बिबिडल ठीक कहते हैं। फिर उपाध्यायकी बोले—‘ज्ञान की अधिकता से हमारे गुरु समर्थ ही हैं, परन्तु धार्मिक मर्यादा क अनुसार ज्ञान का अमिमाल नहीं करते हुये मी अपनी शक्ति से धर्म में बाधा देने वाले प्रतिबादी को सब लोगों के सामने धर्मक के पहाड़ से नीचे उतार सकते हैं।’ फिर राजा ने पूछा—‘आचार्यजी ! आपके ये पंडितजी क्या कहते हैं ?’ पून्यभी ने कहा—

ज्ञानं मददर्पहरं माधति यस्तेन तस्य को वैद्य ।

अमृतं यस्य विषायति तस्य विकिस्ता कथं क्रियते । १॥

[ ज्ञान, अमिमाल और मोह को हर करता है, जो मनुष्य ज्ञान को पाकर मो धमन्ड करे, उसका वैद्य कोई नहीं है। जिसको अमृत भी अहर लगे, उस पुरुष की विकिस्ता किस प्रकार की जाय। अर्थात् विषा का पहला फल विनय प्राप्ति है। ]

इस प्रकार अनेक प्रकार के सधुपदेशों से राजा का हृदय खिन्न गया। राजा ने कहा—‘आचार्यवर ! अब देर क्यों करत हैं ? हमारे नगर में प्रवेश करने के लिये क्वकी समय लागेगा ?’ अधिक क्या करें राजा तथा भावकों का अनुरोध मानकर महाराज आशिष्क को गये। भूपति भीमसिंहजी के साथ पूर्वोक्त दिग्गी प्रवेश की तरफ आशिष्क में प्रवेश किया।

वहाँ पर रहते हुए किसी दिन अपने बहुत से अनुयायी साधुओं के साथ महाराज बहिर्भूमिक के स्थित जा रहे थे। उस समय सामने से आते हुए महाप्रामाणिक दिगम्बराचार्य नगर द्वार के पास मिल गये। महाराज ने मुख-साठा प्रश्न के बहाने उसके साथ बातलाप शुरू किया। उसी सिलसिले में सखनता के बिबेचन के लिये श्लोकों की व्याख्या चल गई। किसी पद की व्याख्या में मतभेद होने के कारण विवाद का कुछ अन्विक बढ़ गया। उस प्रसंग को सुनने क लिये उत्सुक कतिपय नागरिक पुरुष एवं राजकीय कर्मचारी भी वहाँ आ उपस्थित हुए। श्रीपूज्यश्री का सिंहगर्जन एवं प्रमत्थ सहित पुकि तथा तर्कों को देख सुनकर सभी लोग क्दने लगे 'छोटे स श्रोताम्बराचार्य ने पठितराज दिगम्बराचार्य को जीत लिया।' वहाँ पर उपस्थित दीदा, कककरिठ, क्कला आदि राजकीय कर्मधारियों ने राज समा में वाकर राजा मीमसिंह के समक्ष क्कहा 'राजाधिराज। आप उस दिन विन आचार्य के सम्मुख गये थे, उन अन्य वयस्क आचार्य ने स्थानोप दिगम्बराचार्य को जीत लिया। राजा सुनकर बहुत प्रफुल्लित हुआ और बोला—'ज्या यह बात सत्य है?' व बोले—'राजन्। यह बात एकदम सत्य है। इसमें हँसी नहीं है।' राजान पृष्टा, 'कहाँ और किस प्रकार उनका सघर्ष हुआ।' उन्होंने शहर के दरवाजे क पास जो जिस प्रकार सारी जनता क समक्ष घर्षा-घर्षा हुई वह सारी कह सुनाई। सुनकर राजाजी क्कहन लगे—'पुरुषार्थ प्राथियों के समस्त सम्पत्तियों का हेतु है। इस विषय में बड़पन और छोटेपन का कोई मूय्य नहीं है। मैंने उसी का कृत्य देख कर उसी दिन जान लिया था कि इनके आगे दिगम्बर हो या और कोई विद्वान् हो, ठहर नहीं सकता।' इस प्रकार राजा ने मरी समा में विनपतिधरिजी की अधिकधिक प्रशंसा की। इसी वर्ष फल्गुन शुक्ला तृतीया क दिन देवमन्दिर में श्रीपार्थनाथ प्रतिमा की स्थापना करक पूज्यश्री समारपाट पचारे और वहाँ दवकुसिक की प्रतिष्ठा की।

४७ श्रीरिवरजी वहाँ स सं० १२२६ में बनया लो पहुचे और वहाँ पर भी समबनाय स्वामी की प्रतिमा की स्थापना और शिखर की प्रतिष्ठा की। सागरपाट में पठित मखिमद्र के पट्ट पर विनपमद्र को बापनाचार्य का पद दिया। स० १२३० में विक्रमपुर से विहार करके सिरादेब, यशो-प, श्रीचन्द्र और अययमति, आममति, भीद्वी आदि साधु-साधियों को दावा देकर सयमी बनाया। सन् १२३२ में पुन विक्रमपुर आकर फाल्गुन शुदी १० को मांडगारिक गुणचन्द्रगधि-स्मारक म्पु की रचना करवा क प्रतिष्ठा की।

उपयुक्त वर्ष में ही भावकों क आग्रह से देव-मंदिर को प्रतिष्ठ करवान क लिय विनपतिधरि जी महाराज फिर आशिकानगरी में आए। उस समय आशिका का बंभव देखने ही योग्य था। नगरी के बाहर राजा मीमसिंह को प्रसन्न क्कन के लिये आन गये क्कलीक

संगे हुये थे। एक और राजकीय कौब-पसटनों का बमपट लगा हुआ था। राजकीय महल, प्रासादादि बाग-बगीचों के मनोहर दृश्य देखने से आशिर्कान गरी चक्रवर्ती की राजधानी सी लगती थी। वहाँ पर पार्ष्णाथ मन्दिर तथा शिखर पर चढ़ाये जाने वाले सुवर्णामय-ज्वर-कमल महोत्सव पर नाना देशों से आये हुए दर्शनार्थी यात्रियों का अविभाजिक बमपट हो रहा था। महाराज के साथ विष्णुपुर से भी हजारों भावक आये थे। छरिजी महाराज चतुर्दश विधाओं के किरण रूप से ज्ञानकर थे और बुद्धि में बृहस्पति के समान थे। इन महाराज का उपदेश बुद्धि-यत्तियों के मनरूपी कमल को विकसित करने में सूर्य-मयङ्गल के समान था।

महाराज का नगर प्रवेश बड़े समारोह के साथ किया गया। प्रवेश के समय शंख, मीनादि नाना प्रकार के बाजे बज रहे थे। अनेक लोग आदर पूर्वक सूर्य महाराज के दीर्घायु के हेतु संछन ( बरखा ) कर रहे थे। नृत्य और गायन हो रहा था। युगप्रधान गुरुओं के नामोच्चारण के साथ स्तुति-गान करने वाले गन्धर्वों को दिये जाने वाले द्रव्य से कुबेर का धनाभिमान किरीट हो रहा था। जैसे ही अपने पूर्वजों के नाम को सुन-सुनकर लोगों को अस्यधिक आनन्द आरहा था। हजारों आदमी पूज्यभी क पीछ चल रहे थे। इस प्रकार महान् सम्मान के साथ श्रीपूज्यजी का नगर प्रवेश हुआ। उस समय महाराज के साथ ८० साधु थे। सभी साधु सन्धिबारी जैसे शास्त्रार्थ में अनेक विद्वानों को इराकर धन्यवाद प्राप्त किये तथा महाराज के चरण कमलों में अमरवत् अनुरक्त थे। न्येष्ठ शुक्ल तृतीया क दिन बड़े विधि विधान के साथ पार्ष्णाथ स्वामी के मन्दिर के शिखर पर सुवर्ण का बना हुआ ज्वर-कमल आरोपित किया गया। उस महोत्सव के शुभ अवसर पर दुसाम्ब सप्तस भावक की साठ नाम वाली पुत्री ने ५०० मोहरें देकर माता पहनी। आचार्यजी ने धर्मसागरगणि और धर्मरुचिगणि को धृती बनाया। कन्यानयन के विधि वैत्यालय में आपाद महीने में विष्णुपुर बासी गृहस्थावस्था के सम्बन्ध से भीजिनपतिछरिजी के चाचा साह मासदनजी करारित श्रीमहावीर भगवान् की प्रतिमा स्थापित की। व्याघ्रपुर में पार्ष्णाथ-गणि को दीवा दी। स० १२३४ में कलबद्धि का ( कलौडी ) के विधिवैत्य में पार्ष्णाथ स्वामी की प्रतिमा स्थापित की। लोक-यात्रा आदि व्यवहार में दण भीजिनमतगणि को उपाध्याय पद प्रदान किया। यद्यपि जिनमतगणि के लोकोचर असाधारण गुणों को देखकर, उन्हें आचार्य पद दिया जाता था, परन्तु अपन निज के धर्मध्यान और शास्त्र-ज्ञान क मनन में हानि की समावना स इन्होंने आचार्य पद स्वीकार नहीं किया। आचार्य को सारे गण्ड की देख-भाल करनी पड़ती है। अतः समयमात्र के कारण धर्मध्यान और शास्त्राम्यास होना अति कठिन है। इसी प्रकार पुज्यभी नामक साधु को महाराज का पद दिया गया। वहीं पर भीसर्बदेवाचार्य और अयदेवी नाम की साधु को दीवा दी गई। स० १२३४ में महाराजभी का चातुमास अजमेर

में हुआ। वहाँ पर भीजिनदत्तधरिजी के पुराने स्तूप का भीषोर्द्वार करके विशाल आकार बनवाया। देवप्रम और उसकी मत्ता शरणमति को दीक्षा देकर शान्ति-प्रधान वैनर्षम की छत्रछाया में आश्रय दिया। अजमेर में ही सं० १२३६ में सेठ पासट क बनवाई हुई महावीर मूर्ति की स्थापना की। अम्बिका शिखर की भी प्रतिष्ठा करवाई। वहाँ से जाकर सागरपाड़े में भी अम्बिका शिखर की स्थापना की। सं० १२३७ में 'बम्बेरक' गाँव में जिनरथ को वाचनाचार्य का पद दिया। सं० १२३८ में आशि का में आये और दो मन्दिरों की प्रतिष्ठा की।

४८ महाराज सं० १२३६ में फलपद्धिका ( फलोदी ) आये और वहाँ पर आषकों की मक्ति और महाराज का प्रभाव देखकर नट-भट-बिटों की संगत में रहने वाले, हुआ अमिमानी, उपदेशगच्छीय पद्यप्रमाचार्य मत्सरवश, ईर्ष्यावश या अज्ञान से, बहुत पनी आषकों के घमंड से अथवा ऋकर्मविपाक से महाराज के विहार किये बाद पीछे से माटों द्वारा इस बात का प्रचार करने लगा कि पद्यप्रमाचार्य ने जिनपतिधरि को हरा दिया।

जिनपतिधरिजी के मऊ आषकों ने जब यह मिथ्यासबाद सुना तो उन्हें बड़ा रोष आया। वे सब मिलकर पद्यप्रमाचार्य के पास गये और बोले—'पद्यप्रमाचार्य महाशय ! आप बड़े मिथ्या मापी हैं। आप पाप से नहीं डरते ? आपने जिनपतिधरिजी को किस समय और कहाँ पराधित किया था ? झूठ-झूठ ही माटों से अपनी विरुदावली पड़वाते हो ?' इनका कथन सुनकर पद्यप्रमाचार्य बोले—'यदि आप लोग इस बात को मिथ्या समझते हैं, तो आप अपने गुरुजी को फिर बुला लीजिये। फिर मैं उन्हें बीतने को तैयार हूँ।' इस बात को सुनकर वे बोले—'गीदड़ होकर यदि सिंह के साथ स्पर्धा करना चाहत हो तो निश्चय ही मरण की इच्छा रखते हो।' दूसरे पद्य का भावक भी वहाँ आ गये। दोनों दलों में झिड़बाद होने लग गया। उन्होंने होड़ के साथ शास्त्रार्थ का क्रम निर्धारित किया। इस झगड़े का समाचार अजमेर में भीजिनपतिधरिजी के पास पहुँचा। महाराज ने त्विपची के पराक्रम क लिये तथा सभ की प्रसन्नता के बावले जिनमत उपाध्याय को वहाँ भेजा। सभ वालों ने विचार किया, 'पद्यप्रमाचार्य मिथ्या मापी हैं, कइ देगा पहले मैंने जिनपतिधरिजी को बीत लिया था; इसलिये वे तो मेरे सामने ठहर नहीं सकते, अतएव अपने पवित्र को भेजा है।' यह निश्चय कर के जिनमत उपाध्याय को साथ लेकर सभी भावक महाराज क पास अजमेर गये। अजमेर में उस समय राजा पृथ्वीराज चौहान राज्य करत थे। अजमेर के राजमान्य भावक रामदेव ने राजमहलों में जाकर राजा से प्रार्थना की कि, 'पृथ्वीपते ! हमारे गुरु महाराज का एक श्रोताम्बर साधु के साथ शान्त्रार्थ होना निश्चित हुआ है। इसलिये निवेदन है कि विद्वान् महली महित आपकी सभा में वह शास्त्रार्थ हो। ऐसी हमारी कामना है। अतएव आप कृपा करें और इसके लिये मौका दें।' शास्त्रार्थ—प्रोमी राजा पृथ्वीराज न कहा—'इसके लिये



अभी अबसर है। सेठ रामदेव ने निवेदन किया, 'स्वामिन् ! दूसरा श्रोताम्बर साधु पद्मप्रम यहां नहीं है फलवद्रिक्र ( फलौदी ) में है।' बिनोदी राजा ने कहा — 'भाटों को भेजकर उसे मैं बुला दूँ। तुम अपने गुरु को तैयार करो।' सेठ रामदेव ने कहा, 'राजन् ! हमारे गुरु तो यहां ही हैं।' राजा ने भाटों के लड़कों को भेजकर फलौदी से पद्मप्रमाचार्य को बुलाया। इसी बीच महाराज ने विनिवृत्त करन क निमित्त नरानयन से अपनी विशाल सना के साथ प्रस्थान किया। विनिवृत्त करके वापिस लौटने पर सेठ रामदेव ने अर्ज किया कि, 'राजन्, हमारे लिये क्या हुकम दिये हैं।' बिनोदी के प्रतिपालक राजा पृथ्वीराज ने कहा, 'तुम अपने गुरुजी से कहो कि कार्तिक शुक्ल दशमी के दिन शास्त्रार्थ के लिये निमित्त है।' जिनपतिहरिजी नर समूह के साथ में श्री जिनमतो-पाप्यय, ५० श्री स्थिरचन्द्र, वाचनाचार्य मानभट्ट आदि मुनिहृन्द को साथ लेकर रात्रि समा में पहुँचे। पद्मप्रम भी भाटों के लड़कों के साथ बहाँ आ पहुँचा। राजा ने अपने प्रधान मंत्री 'कैमास' को आज्ञा दी कि वाञ्छीशर, अनार्दन गौड़ और विद्यापति, आदि राजपंडितों के साथ इनका शास्त्रार्थ इतने दो। मैं बरूनी काम से निवृत्त होकर आता हूँ। ऐसा कहकर राजा साथ-साथ अपने विभामघर की ओर चले गये।

समा भवन में प्रधान मंत्री ( कैमास ) श्रीपूज्यजी की मधुर मूर्ति को देखकर हर्ष पूर्वक कहन लगा— 'अहो ! ऐसे शांत एवं गम्भीर मूर्ति महात्माओं के दर्शन से नेत्रों की अतीव आनन्द मिलता है। कई दिग्गम्भर ऐसे मिलते हैं जिनके दखने से नैराश्य क्षा जाता है और भाँटों का उद्वेग होता है, दूर से ही पिशाच जैसे दिखते देते हैं।' मंत्री का यह कहन सुनकर पूज्यजी कहन लगे —

पंचैतानि पवित्राणि सर्वेषां धर्मचारिणाम् ।

अहिंसा सत्यमस्तेयं त्यागो जैष्ठुनवर्जनम् ॥१॥

[ पंच महाव्रतों को पालने वाले पाँचे विश्व धर्म के अनुयायी हों, अहिंसा, सत्य, असत्याग आर अस्वल्प य तां पवित्र ही कहे जायेंगे। इस कारण पंच महाव्रतधारियों की निन्दा कभी नहीं करनी चाहिए। ]

इस प्रकार श्री जिनपतिहरिजी आप्या करके कैमास को ममम्भ रहे थे। इसी बीच में ही उनकी बात करके इत्यादि पद्मप्रमाचार्य प्रधानमंत्री को निम्न श्लोक सुनाने लगा :—

प्राणा न हिंसा न पित्रेद्य मद्य वदेद्य सत्यं न हरेत्परस्वम् ।

परम्य भार्या मनसा न वाञ्छे स्वर्गं यदीच्छे विधियत्प्रवेष्टुम् ॥

[ अर्थ—किसी के प्राणों की हिंसा नहीं करनी चाहिये, मद्य नहीं पीना चाहिये, और परार्थ स्त्री की मन से भी बाँधा नहीं करनी चाहिये। जिस पुरुष को विधि पूर्वक स्वर्ग प्रवेश की इच्छा हो, वह उपर्युक्त कार्यों को मूल शुरू कर भी न करे। ]

इस श्लोक को सुनकर भीपूज्यजी बोले—‘अहा हा ! कैसा बढ़िया शुद्ध उच्चारण है ?’ पद्य-प्रमाचार्य—‘आप मेरी हँसी उड़ाते हैं ?’ भीपूज्य—‘महातुमाव पद्यप्रम ! इस पद्यम आरे में लोगों का अपूरा ज्ञान है, किसी हँसी की बात, और किसी न की बात ?’ पद्यप्रमाचार्य—‘तो फिर आपने यह आशेष कैसे किया कि कैसा शुद्ध उच्चारण है ?’ भीपूज्य—‘महाशय ! पढ़ितों की समा में शुद्ध उच्चारण करने से सुख की शोभा ही है ।’ पद्यप्रमाचार्य—‘क्या कोई ऐसा है जो मेरे बोलते हुए श्लोकों में अशुद्धियाँ निकाल सके ।’ भीपूज्य—‘यदि ऐसा घमंड है तो उसी श्लोक को फिर बोलिये ।’ बनार्दन, विद्यापति आदि रावपढ़ितों से भी कहा, ‘पढ़ित महातुमावों ! भीपद्यप्रमाचार्यजी श्लोक बोलते हैं। आप लोग भी जरा सावधान होकर सुनें ।’ पद्यप्रमाचार्य मीतर से आगतपूजा हो रहा था, उद्वेगता के साथ श्लोक बोलने लगा। सब सदस्यों को साची बनाकर भीपूज्यजी ने उसके श्लोक में दश अशुद्धियाँ दिखलाई और कहा—‘महापुरुष इस प्रकार बोलने से शुद्ध सुमन्त्र जाता है :—

प्राणान्न हिंस्यान्न पियेष मद्य, षडेक्ष सस्य न हरेत्परस्वम् ।

परस्य भार्या मनसा न वाञ्छेत्, स्वर्गं यदीच्छेद्विधिवत्प्रवेष्टुम् ॥

पद्यप्रमाचार्य कुछ-कुछ सन्नित होकर फिर बोला—‘आचार्यजी ! आप इस वचन—बाहरी से बेचारे मोले आत्मियों को उगते हैं ।’ पूज्यभी—‘यदि शक्ति हो तो आप भी ऐसा करें ।’ मंत्री केमास बोला—‘आप लोगों ने पहले-पहल यह शुष्कवाद क्यों बोड़ा ? यदि आप लोगों की शक्ति है तो आप दोनों में से एक महात्मा किसी एक विषय को लेकर उसकी स्थापना करे और दूसरा उसका खंडन करे ।’ भीपूज्य—‘पद्यप्रमाचार्य ! मंत्रीवर का कथन बहुत ठीक है। अतएव आप किसी पद्य का आशय लेकर बोलिये ।’ वह बोला—‘आचार्य ! मिनशासन की आधारभूत पढ़ने योग्य बातें बहुत हैं, परन्तु इस समय मैं एक बात पूछता हूँ कि रात्रि के समय दक्षिणावर्त भारती के परित्याग का क्या करण है ?’ यह तो अनेक आचार्यों का मत है कि कृत्स्न को कृत्स्नता से ही दखाना चाहिये ‘ब्रह्मो ब्रह्मोक्त्यैव निर्लोक्यः’ इस अमिप्राय को लेकर भीपूज्यजी बोले—‘क्या आपके कथनानुसार बहुजन-सम्मत वस्तु को आदरणीय समझना चाहिये। यदि ऐसा है तो मिथ्यात्व का आदर क्यों नहीं करते। इसे भी अनेक आचार्यों ने अपना रक्षता है ।’ पद्यप्रम—‘इदपरम्परागत भी कुछ भी हो, उसका हम आदर करते हैं ।’ भीपूज्य—‘इद परम्परागत न होने पर भी वैश्यवात्स को आपके पूर्वजों ने क्यों अपनाया ?’ पद्यप्रम—‘कैसे माना जाय कि वैश्यवात्स इदपर

स्मरगत नहीं है। श्रीपूज्य—क्या भगवान महात्मी के समवसरण में या किसी दिन—मन्दिर में गुरुजी गौतमस्वामी के मोहन-शयन का कहीं बर्खन आया है ? इसका उत्तर न आने से पद्मप्रभाचार्य सक्रिय होकर बोले, 'क्यों स्पष्ट: कटि पासपति' कमन छूने पर कटि—प्रवेश को हिसाना यह कदा का न्याय है ? मैंने पूछा था कि, 'दक्षिणावर्त्तारात्रिकवसरणविधि परस्मरगत है' इसका आप लोगों ने क्यों त्याग किया ? इसी बीच में आप से आप वैत्यवास के प्रसङ्ग को । श्रीपूज्य—'मूर्ख ! "कहाँ काठे बको वेध" क्रियते" काट में टेढ़ा ही वेध किया जाता है। क्या यह न्याय आपको पद नहीं है ? अथवा जो कुछ भी हो। अब आप सावधान होकर सुनिये ।' आपने कहा—'दक्षिणावर्त्त रात्रिकवसरणविधि परस्मरगत है, यह कैसे जाना ? मिथ्यान्त-ग्रन्थों में रात या दिन का विचार नहीं है। किन्तु महात्मी स्वामी के बाद होने वाले बहुभुस विद्वानों ने अपने कन्यास्य के लिये इन विधियों का अनुष्ठान किया है। अब प्रश्न यह होता है कि उनसे अनुष्ठित विधि दक्षिणावर्त्त की या वामावर्त्त ? इस सशय को दूर करने के लिये किसी युक्ति का अनुसन्धान करना चाहिये । 'न शबदुष्टिन्यायः कर्त्तव्य' जैसे सुर्दे की सुड़ी बन्द हुए बाद सुलसी ही नहीं, जैसे ही इठ करना योग्य नहीं है। जो युक्तियुक्त हो, उसे मानना चाहिये इससे विपरीत को नहीं।' इस बात को सुनकर सभी समासद बोले—'पद्मप्रम ! आचार्यभी ठोक करते हैं। उत्पमात् सम्यों की सम्मति स प्रमाणपूर्वक श्रीपूज्यजी ने समा में चाराप्रवाही, सभी क शरीर में रोमांच देदा करने वाली, देकम्पी वाली बोलकरवामावर्त्तारात्रिकवसरण की स्थापना की। इस प्रकार का हम यहाँ अधिक विस्तार नहीं करेंगे। यदि विशेष देखना हो तो 'प्रद्युम्नाचार्य कृत वाद्यस्वस' पर श्रीपूज्यजी का बनाया हुआ ( बादस्पल ) है, उसमें देख सकते हैं। यहाँ ग्रन्थगौरव के मय से नहीं छिछा है।

४६ अधिक क्या करें हर्षपरवश समा—सम्यों ने श्रीपूज्यजी का अय लयकार किया। इसी अवसर पर राजा पृथ्वीराज भी समा में आ गये। और राज—सिंहासन पर बैठकर पूजने लगे—(कैमास को मंडलेखर की उपाधि मिली हुई थी इसलिये इसको 'मंडलेखर' संबोधन दिया गया है) 'मंडलेखर ! कबो कौन बीता कौन हारा ?' मंडलेखर ने श्रीपूज्यजी की तरफ आंगुली-निर्देश करके कहा—'ये बीत ।' पद्मप्रम इस बात से विद्वर बोला—'राजन् ! मंडलेखर रिरक्त सेने में प्रवीण है, गुणियों के गुण—ग्रहण करने में प्रवीण नहीं है। इस बात को सुनकर कुछ हुआ मंडलेखर बोला—'र मूढ खेतपत्त ! अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। ये आचार्य बैठे हैं और ये सब समासद उपस्थित है। मैंने रिरक्त से ली है तो मैं मौन—धारण किये बटा रहूँगा। बड़ी सुली है यदि आप अभी भी आचार्य को बीतलें, तो मैं मान लूँगा कि पहले भी आप ही बीत।' पद्मप्रभाचार्य मंडलेखर कैमास की नाराजगी का स्थान करके कुछ सहम गये और बोले—'महानुभाव ! मैं यह नहीं करता कि आपन आचार्यजी क पास से किसी तरह की रिरक्त ली है। आपके समकने में कुछ

भ्रम हो गया है। मेरा कथन यह है कि आचार्य जिनपतिधरिजी ने अपना गला काढ़कर मबरदस्ती से समस्त आचार्यों के अमिमत् 'दक्षिणावतीरात्रिचक्रवर्तारथविधि' को अमान्य ठहरा कर आपके हृदय में विपरीत विश्वास जमा दिया है।

इस कथन को सुनकर श्रीपूज्यजी बोले, 'महात्मन् पद्यप्रम ! यह विधि सब आचार्यों को अमिमत् है; आपका यह कथन सत्य नहीं है। क्योंकि हमारी आस्था में रहने वाले आचार्यों को यह मान्य नहीं है।' पद्यप्रमाचार्य—'क्या आप और आपके आचार्य अन्य आचार्यों से अधिक ज्ञानवान हैं जो आप लोग उनके अमिमत् अर्थ को नहीं मानते ?' श्रीपूज्य०—'पद्यप्रम ! क्या अन्य आचार्य हमारी आस्था में वर्धमान आचार्यों से विशेषज्ञ हैं जो वे हमारे आचार्यों के सम्मत वामावर्तरात्रिक विधि को नहीं मानते ?' श्रीपूज्यजी ने इत्यादि बहोक्तियों के द्वारा राजा पृथ्वीराज के समक्ष पद्यप्रमाचार्य को निरुत्तर कर दिया। इसके बाद पद्यप्रमाचार्य राजा को सम्बोधन करके बोला—'यदि आप आस्था दें तो आपकी समा में बैठे हुए सम्मानित पुत्र्यों का मनोरंजन करने के लिये कुछ कृतकृत्य दिखलाऊँ। जैसे—आकाश मण्डल से उतर कर आपकी गोद में बैठे हुए अत्यन्त सुन्दर विद्यावरी को दिखला सकता हूँ। बड़े से बड़े पहाड़ को अगुल प्रमाथ में बनाकर दिखा दूंगा। इति—इर आदि द्रवों को आकाश में नाचते हुए दिखला दूंगा। जिसमें बड़ी-बड़ी तरङ्गमालायें दिसोरें से रही हैं, ऐसे आते हुए समुद्र के बर्तन करा दूंगा। आपकी इस नगरी को आकाश में निराधार आबाद हुई दिखला दूंगा।

इस कथन को सुनकर समासद बोले, 'पद्यप्रम ! आपने यदि ऐसी इन्द्रजाल—कला ही सीखी है, तो फिर आचार्यजी के साथ शास्त्रार्थ के म्हाड़े में क्यों पड़े ? रामाचिराज से इनाम पाने के लिये साखों ऐन्द्रजालिक आते रहते हैं। उनके साथ आप भी अपना खेल दिखलावें।' प्रसन्नचित्त जिनपतिधरिजी ने कहा—'राजपठितों ! यह आचार्य अपने आपको समस्त कलाओं का पारगत मानता है। इसलिये यदि आज राजसभा में आप लोगों के समक्ष इसके पर्वत समान अखर्व—नाथ को धूम्र न किया जायगा, तो सन्निपात के रोगी की तरह इसमें बाध बहुत बढ़ जायगी; फिर इसका श्लाघ्य अरा सुरिकस्त हो जायगा और यह इससे भी अधिक प्रसन्न करने लग जायगा।' ईसते हुए भी आचार्यजी के मुख से ये शब्द सुनकर वह बोला, 'आचार्यजी क्या ईसते हैं ? यह ईसी का समय नहीं, परीचा का समय है। अगर शक्ति है तो सब लोगों के चित्त में चमत्कार पैदा करने वाला कोई कला—कौशस्त दिखलाइय; नहीं तो इस समा से बाहर निकल जाय।'

इसके बाद श्रीपूज्यजी ने श्रीजिनपतिधरिजी के नाममत्र का स्मरण कर कहा—'पद्यप्रम ! पहले आप अपनी आत्मशक्ति की सुरक्षा के अमुत्तार पूर्वक इन्द्रजाल को दिखलाय। तत्परचात्

को समयोचित होगा वह हम मी करेंगे।' समझा दखने के लिये उत्कण्ठित, राजा पृथ्वीराज नेका-  
 'पद्यप्रम । को आचार्य ने भी अनुमति देदी है, अब शीघ्रतापूर्वक स्वेच्छानुसार नाना प्रकार के कौतुक  
 दिखलाइए ।' पद्यप्रम के पास दिखलाने को क्या करा था, वह तो सारबन्ध था । भीपूज्यजी के पुस्त-  
 प्रभाव के वर्य आकृष्ट-व्याकृत होकर, पद्यप्रम बोला—'आज रात को देवी की पूजाकर, अमीट देव  
 का आवाहन करके पञ्चत पित से मंत्रों का ध्यान करूंगा और कल प्रातः अनेक प्रकार के इन्द्रजाल  
 दिखलाऊंगा ।' इस कथन को सुनकर तथा पद्यप्रमाचार्य की पोल को देखकर समासों में हँसी  
 के फन्धारे छूटने लगे, सभी लोगों ने दुर्बाक्य कहकर उनको हँसी उड़ाई । निर्लज्जों का विरोध  
 पद्यप्रमाचार्य भीपूज्यजी से बोला—'आचार्यजी ! क्या हँसते हैं यदि आप मझे है तो अब मी क  
 दिखलावें ।' भीपूज्यजी इस कर बोले—'पद्यप्रम ! बतलाओ, इन्द्रजाल किसे करते हैं ?' वह बोला—  
 'आप ही बतलाइए ?' भीपूज्य—'सूर्यराज ! अठम वस्तु की सचा के आभिर्भाव को इन्द्रजाल करते  
 हैं । पद्यप्रम—'कैसे ?' भीपूज्य—'आज एक इन्द्रजाल तो तुम्हारी आँखों के सामने हुआ है ।' पद्यप्रम—  
 'वह क्या हुआ है ?' भी पूज्यजी ने कहा—'महाजुभाव ! क्या तुमने यह बात स्वप्न में मी सोनी की  
 कि बड़ी गद्दी पर बैठने वाला मैं अनेक मुकुटधारी नरपत्नियों से उसाठस मरी हुई महारत्ना पृथ्वीराज  
 की समा में आकर हार बाऊ गा और लोगों का हास्यपात्र बनने के लिये असम्बद्ध प्रलाप करूँ  
 परन्तु, दैवयोग से हमारी उपस्थिति में तुम्हारे लिये यह असंभावित बात बन गई । जिस इन्द्रजाल  
 को आप दिखलाना चाहते हैं उसमें और इसमें क्या भेद है ?'

कर प्रकृति वाक्ता पद्यप्रमाचार्य उपहास को परवाह न करता हुआ राजा को लक्ष्य कर  
 करने लगे, 'महाराज ! आपने बहुत प्रसङ्ग से प्रतापी राजाओं को हरा-हरा कर अपने आज़  
 करार बना लिया है । राजा लोग आपको आझा को अमृत की तरह वाञ्छनीय मानते हैं । ए  
 समय इस समस्त भूमण्डल के आप ही एक अद्वितीय शासक हैं और युगप्रधान हैं । व  
 आश्चर्य की बात है कि यह आचार्य क्ये ऐसे का लोम-साक्ष दे देकर माट लोगों क हल  
 अपने आपको युगप्रधान विस्फात करा रहे हैं ।' राजा न कहा—'पद्यप्रम ! युगप्रधान श  
 का क्या अर्थ ?' पद्यप्रमाचार्य ने अपना मनोरथ पूरा होता हुआ समझ कर महर्षि कहा—'राजद  
 युग शब्द का अर्थ है 'काल' प्रधान शब्द का अर्थ है सर्वोत्तम अर्थात्-वर्तमान काल में  
 सर्वोत्तम हो, उसका 'युगप्रधान' कहत हैं । अब आप ही विचारिये—युगप्रधान आप है  
 यह नापु ?' इस बीच भीपूज्य बोले—'सूर्य पद्यप्रम ! अनर्गल प्रलाप कर हमारे सामने ही राजा क  
 प्रताखा बना चाहत हो ।' इसके बाद आचार्य की ! राजा को सपोषित कर करने लगे,—'महाराज  
 सब प्राणियों को उचि मित्र-मित्र है । किसी को कोई वस्तु प्रिय है और किसी को कोई नहीं  
 को त्रिनन्दे अमीट हैं, उनके प्रति नाना प्रकार के शक्ति प्रेमपत्रक शब्दों का लोग प्रयोग का

करते हैं। जिस प्रकार मंडलोरबर कैमास एवं राज्य के प्रधान लोग आपके प्रति अनेक प्रकार के आक्षेप एवं शब्दों का प्रयोग करते हैं। उसी प्रकार प्रिय वस्तु को लोग अनेक तरह से अभिवादन करते हैं इसमें कोई सुराई की बात नहीं। तथा उनके सेवक-गाय भी उनके लिये इसी प्रकार के शब्द व्यवहार करते हैं। यह पद्मप्रमाचार्य राज-समा में मनमानी बातें करता हुआ सब के साथ शत्रुता प्रगट करता है।' इस कथन को सुनकर राजा ने कहा—'आचार्यजी आप ठीक करते हैं। यह तो लोकाचार है, इसमें कोई हरकत की बात नहीं। राजा के यह बात भी ध्यान में आ गई कि पद्मप्रमाचार्य ईर्ष्याविश जुगाली करता है। राजा पृथ्वीराज न बर्नादन, विद्यापति आदि अपने राक्षसों से कहा कि, 'आप लोग सत्प्रधान होकर परीक्षा करें कि इन दोनों में कौन महाविद्वान् हैं। इनमें जो योग्य विद्वान् हो उस को वय पत्र दिया जाय और उसका ही सत्कार किया जाय।' पदितों ने कहा 'राजाधिराज। न्याय, व्याख्यान आदि विषयों में आचार्य जिनपतिस्वरिजी प्रौढ़ विद्वान् हैं। इस बात की हमने परीक्षा करली है। अब आप की आज्ञा से इनके साहित्य-विषयक अनुभव की आँव करते हैं। राज-पदित बोले—'आप दोनों महाराज राजा पृथ्वीराज ने मादानक के नरपति को जीत लिया इस विषय को लेकर कविता कीजिये। महाराज ने चण-मात्र एकत्र-विच होकर उक्त विषय पर निम्न कविता की:—

यस्यान्तर्बाहुगोहं धनमृतककुम्भं श्रीजयध्रीप्रवेशे,  
दीप्रप्रासप्रहारप्रहतघटतटप्रस्तमुक्तावलीभिः ।  
नूनं भादानकीये रणामुवि करिभिः स्वस्तिकोऽभूर्यतोच्चैः,  
पृथ्वीराजस्य तस्यातुल्यवक्षमहसः किं वयं वर्यायाम ॥

[ अतस्तु बलशाली इस राजा पृथ्वीराज का हम कहाँ तक बर्णन करें। इन्होंने अपने सैन्य बल से उमाम दिशाओं को जीत लिया है। अतएव अयलक्ष्मी ने आकर इनकी सुजाओं को अपना घर बना लिया है। प्रथम ही प्रथम नवोद्गा वधु पर में प्रवेश करती है, उस समय गृहद्वार में स्वस्तिक का निर्माण किया जाता है; जैसे ही इनकी सुजाओं में अयलक्ष्मी प्रवेश के समय रत्नभूमि में मादानक राजा के हाथियों ने तीखे मालों की मार से फटे हुए अपने कुम्भस्वस्त से निकले हुए राव-सुकाओं से स्वस्तिक पुर्ति की है। ]

इस श्लोक को बनाकर आचार्यजी ने इसकी व्याख्या की। देखा-देखी पद्मप्रमाचार्य ने भी पूर्वपर को बिना सोचे ही शीघ्रतया संक्षेप में एक श्लोक बनाकर सुनाया। श्रीपूज्यजी ने कहा— श्लोक तो चार चरणों का ही देखा और सुना है। पद्मप्रमाचार्य का यह विचित्र श्लोक पाँच चरणों का है। उसी श्लोक में सदस्य लोगों को पाँच अशक्तियों दर्शाईं।

ईर्ष्याका पक्षप्रतीकार्य ने भी कहा, 'आचार्य ने जो "यस्यान्वर्षाद्गु गोहम्०" श्लोक कहा है यह शास्त्राधिक रचना नहीं है, पहले का अभ्यास किया हुआ है। पदियों ने कहा—'आप जैसे भारत की बिये; हम जानते हैं।' राजपदियों ने कहा—'आचार्यवर! आप कृपा करके गद्य लिखने में पूष्पीराज के समा मंडप का वर्णन करें।' भीषुन्यत्री मन ही मन समा वर्णन की कल्पना करके लड़िया संक्षीन पर लिखने लगे। जैसे :—

'ब्रह्मणे च कर्मणि च यज्ञे च रचना रचितकुट्टिमो वरम्परी च मपन्न लथितदिकृष्णकमलम्, सौरमरसम्पु-  
 तश्रीमवराव-अन्वमात्र-अन्तर सुतमुवनमबनाम्पतरमूरि अमर सम्पुतविकीर्याकुसुमसंभारवि भाङ्गमानप्रक्षेप-  
 महानीकरवामदनीकपृथैकीजसहजोकात्राजलम्बमानानिखचितो जवडलनिमलमुकताफलगात्राजितकक्षपवडदधि  
 रत्नविगलकुम्भसससिखधारम्, दिग्विहितवजसुचक्र-कटाक्षद्विचैपेपकोमितकमुकपुष्पमौक्तिकपथयैनुक-  
 र्वाङ्गनयनजाकडारविचरनिधरकिरयानिकुलम्पुम्बिधाम्पन्नारकर्णनिरात्मननिर्वाचकर्णमभिशरत्कुसुमापुषारकाया  
 नीषिवासावारविद्यासिमीजनम् कर्णचिच्छुताकुनरसात्वाधमपक्षकण्ठकुरवसमाननवग्ननगानकलाकुलज-  
 कननमरकतकण्ठककलीगोपम् कर्णचिच्छुतिपरित्राकरुषचनरचनाचाटुटीचम्पुतीतिरासविचारविचक्षुष-  
 विचक्षुषचर्चमायाचारनाचारविभागम् क्वचिदासीनोदामप्रतिपाद्यमय्युद्धमिदुरोद्यतवचद्वयसमर्पणाद्  
 म्प्रीनुम्भमानावदातवहनारविम्वकीविचक्षुष्वारकपुनम् कष्टकम्पराबिचमरागवचर्चमानोवृषुरीर्षीशीर्षी-  
 र्षीपुष्प, मुखाधामवीधिविवासावचक्षुरोराशिचक्षितवसुन्वराभोगनिबिरामानसम्पन्नचक्रम्, प्रसरानामविशि-  
 रयानिकरविरचितवासवरासनिर्दिष्टासनामीनपार्श्ववचक्षिमादम्बलक्षितलाक्षवदपैरिम्यवजलनम्पवकक्षेप-  
 टक्षसर्पोज्ज्वलितरितटक्षेपिकक्षितविसृष्टयाविष्टभूपालम् अपि चोपानमिष पुत्रागात्क्षुब्धं वीक  
 ओपरोमितं च महत्कषिकक्षयमिष वर्धनीयवर्षाकीर्षी व्यङ्गितरस च सरोवरमिष राजहसावधसं पद्योपयो-  
 मितं च, पुत्रवृत्तपुरमिष सरङ्ग(?)विष्टित विषुषकुम्भसंकुल च गगनतकमिष कसम्भङ्गसं क्विराजितं च  
 कल्पवधममिष सवत्सरं विधिप्रविचक्षणम् ।'

[ राजा पूष्पीराज का समा मवन कैसा सुन्दर है। कमली हुई सुन्दर मखियों से उसके गीत और आंगन बनाया गया है। उन्हीं मखियों की लक्षिर रचना से रचित फर्रा से निकलने वाली किरियों से इसके चारों ओर की दिशाये जग मगा रही है। जिसकी मुगन्ध के सोम से भारत अमरों के गर्जन से सारे ही समा—मवन का मध्यमाम मर गया है; ऐसे फूलों के गुच्छे समा मंडप के आंगन में बिखरे हुए हैं। इस समा में नीले रङ्ग का रेशमी शामियना तना हुआ है। इसा से हिलती हुई उसके चारों ओर हुई चंचल मुकामाहायें ऐसी माखूम होती है मानो किसी असाध्य के चारों ओर निर्मल बलभारा टपकती हों। जिसमें क्षमदेव की राजभली के उपयुक्त सुन्दरी—वेर्यासं विद्यमान हैं; उनके सुन्दर कटाखों से क्षमीजनों का हृदय धूमित हो रहा है। वेर्यासों से भारत किये गये घोड़ी आदि अनेक बर्षा वाले रत्नों से अटित व्यापुष्यों से विस्फुरित रत्न-किरती किरकों के समूह से निरास्तंभ ही आकाश में चित्रकारी—सी हो रही है। समा मवन में किसी स्थान पर आम की मंजरी खाने से मस्त हुई फेयल के कतरब क समान, संगीत व कला में निपुण कलाबन्ध लोगों से सुन्दर गान किया जा रहा है। कहीं पर सदाचार—सम्पन्न सुन्दर बचनों की रचना—चाहुरी में

प्रसिद्ध, नीतिशास्त्र के विचार में विषयव्य ऐसा मन्त्रीमंडल आचार-अनाचार का विचार कर रहा है। इसी समा में किसी स्थान पर उत्कृष्ट प्रतिवादियों को परास्त करने में समर्थ, उच्चमोक्षम समस्त विषयों जिनकी विद्या पर नृत्य कर रही है, ऐसा विश्ववृन्द विद्यमान है। यहाँ पर अनेक उच्चत कक्षरा वाले अनेक मामाच राजाओं की धीरता, गम्भीरता और उदारता का बखान कर रहे हैं। चन्द्रमा के समान स्वैत-यश के द्वारा घबल की हुई पृथ्वी की भोगने वाले, अनेक छोटे बड़े सामन्त राजा आ आकर जिसमें प्रवेश कर रहे हैं। जिसमें राजा नानाधर्मा की मणियों के बजाय से बनाए हुए इन्द्रधनुषाकार सिंहासन पर बैठे हुए हैं। जिसने अपने बाहुबल से सामा शत्रु-समुदाय को क्षिप्त-निम्न कर दिया है, ऐसे राजा पृथ्वीराज के चरख-कमलों में अनेक राजा लोग किरीटमुकुट-च्छादित मस्तक को झुकाते हैं। जैसे बगीचा पुष्पाग और भीकल के बूटों से शोभित होता है वैसे ही यह सामाभवन इति-सुन्य पुष्ट काय वाले पुरुषों से तथा लक्ष्मी के वैभव से शोभित है। जैसे यहाँ कवियों का काव्य व्याख्या करने योग्य बयों से पूर्ण तथा शृङ्गार, हास्य, करुण आदि रसों से युक्त रहता है, वैसे ही यह सामाभवन ब्राह्मण चरित्र आदि बयों से युक्त है तथा अमिताया को व्यक्तित करने वाला है। जैसे सरोवर की शोभा राजास और कमलों से होती है वैसे ही आपके सामाभवन की शोभा राजा और पद्मा-लक्ष्मी से है। इन्द्र की नगरी अमरावती में कोई भी मिथ्याभाषी नहीं है तथा उसमें सदैव देवताओं की मीड़ बनी रहती है, वैसे ही इस समा में सब सत्यबक्ता हैं और इसमें विद्वानों की मीड़ सदैव लगी रहती है। आकाश में जिस प्रकार मंगल और शुक्र नाम के ग्रह शोभा बढ़ि करते हैं वैसे ही आपकी समा में गानादि मांगलिक कार्य तथा कवि लोग शोभा बढ़ाने के हेतु हैं। कान्ता के मुख की शोभा अन्धे-अन्धे अलङ्कारों से है, वैसे ही समा-मंडप की शोभा भी सुन्दर सजावट से है। विविध प्रकार के चित्रों से यह चित्रित है। ]

महाराज बर्णन कर ही रहे थे कि बीच में ही राज पंडित बोले, 'आचार्य ! पकते हुए अनाम के एक बाने की तरह हमने आपकी साहित्य-विषयक योग्यता पहचान ली। अब आप रूपया इस बर्णन को अन्तिम क्रिया पद देकर समाप्त कीजिये। महाराज ने अपने समा बर्णनात्मक निबन्ध का उपसंहार करते हुए कहा—'महाराज पृथ्वीराज क ऐसे समा मंडप को देखकर कित पुरुष का चित्र आश्चर्य-मग्न नहीं होता।'

पंडित लोगों ने विद्वत्तापूर्वक समा बर्णन सम्बन्धी निबन्ध को सुनकर, आश्चर्य मग्न हो तिर दिखाया। पद्मप्रभाचार्य ने कहा—'पंडित महासुभाषो ! यह रचना कादम्बरी, मासभद्रा आदि काव्यों से ली हुई जान पड़ती है।' पंडितों ने जवाब दिया—'मूण ! कादम्बरी आदि की कथाएँ हमारी अन्धी तरह से देखी हुई हैं। इसलिय आप चुप रहिए, अधिक टीका-टिप्पणियाँ करने की आवश्यकता नहीं है। हमारे हाथों अपने मुँह पर पत गिरवाने की कोशिश क्यों करत हो !'



५० पंडितों ने भीष्मपत्नी को लक्ष्य करके कहा, 'अब आप प्राकृत माता में द्वयर्षक (दो अर्ष्य वाली) गाथा की रचना करके पृथ्वीराज महाराज के अन्तपुर और वीर योद्धाओं का कर्ण करें।' भीष्मपत्नी ने मन ही मन मुहूर्त भर में गाथा की रचना करके इस प्रकार कह सुनाई :—

धरकरवाजा कुवलयपसाह्या उल्लसंतसचिलया ।  
सुदरिषिंदु व्य नरिंद ! मंदिरे तुह सईति भडा ॥

[ हे राजन् ! आपके महल में सुन्दर हाथों वाली कमल के फूलों से शृङ्गारित, लल्लाट लप पर फैल करतूरी के तिलक धारण करने वाली सुन्दरियाँ बिराजमान हैं और अन्धे-अन्धे खड्गधारी, मूमयदल के अलंकार, खिनकी शक्तिरूपलता दिनों दिन बढ़ रही है ऐसे शहवीर योद्धा आपके महल में सुन्दरियों के लल्लाट बिन्दु की तरह शोभायमान हैं । ] यह श्लोक द्वयर्षक है ।

इस गाथा की व्याख्या आचार्यभी बड़ ने विस्तार से की । भीष्मपत्नी का पंडित्य पूर्ण प्रबलन सुनकर बड़ी भद्रा मक्ति से उनके मुख की तरफ देखते हुए लोगों को देखकर निर्लज्ज पद्मप्रभासर्ष्य बोला—'आचार्य ! मरे साथ वाद शुरू करके अब दूसरों के आगे अपने आप को मला इशति हो ?' भीष्मपत्नी ने उसी समय नन्दिनी नामक छन्द में एक श्लोक बनाकर कहा :—

‘पृथिवीनरेन्द्र ! समुपाददे रिपोरवरोभनेन सह सिन्धुराखली ।

भवता समीपमनुतिष्ठता स्वयं न हि फल्युचेष्टितमहो ! महारमनाम् ॥

[ हे पृथ्वीराज ! आपने शत्रुओं के पास जाकर उनको कैद करके हाथियों की कठार खीन ली । महापुरुषों का पुरुषार्थ कभी व्यर्थ नहीं जाता । ]

आचार्यभी ने समा के समय इस नूतन श्लोक को सुनाकर पद्मप्रभासर्ष्य से पूछा कि यह कौन से छन्द का श्लोक है । राज पंडित बोले—इस अज्ञानी के साथ बोलने से आपको कल्पवृक्षा के सिवा और कोई भी साम नहीं है । इसके बाद पंडित लोग बोले—अब खड्गधर नाम के विद्वान्-काम्य की रचना करके दिखलायें । आचार्य ने तत्काल ही अमीन पर रेखाकार तलवार बनाकर दो श्लोकों से उसकी पूर्ति की :—

‘सलक्ष्यशःसिताम्भोज ! पूर्वासम्पूर्वाविष्टप । ।

पयोधिसमगाग्भीर्य ! भीरिमाधरिताचक्ष ॥१॥

सुखामत्रिक्रमाकात—परत्तमापाजमंडल ।

सुखप्रतिष्ठ । मूपासाधनीमत्र कलामल । ॥२॥

[ आपके निर्मल यशः सरोज से सारा बगत् मरा हुआ है । आप गम्भीरता में समुद्र क समान हैं और आपने क्षीरता में अचल (पहाड़ों) को मात कर दिया है । आपने अपने प्रशंसनीय पराक्रम से अन्य नरपतियों के समुदाय को दबा दिया है । हे राजन् ! आप सारे जगत में प्रतिष्ठा पाये हुए हैं, चतुःपष्टिकलाओं क जानकार हैं । ऐसे आप चिरकाल तक पृथ्वी का शासन करत रहें । ]

आचार्यभी से निर्मास किये गये इस चित्र—कर्म्य को पढ़कर पंडित लोग बड़ प्रमत्त हुए । धीपूज्यजी की प्रशंसा सुनकर पद्मप्रमाचार्य मन ही मन बलसुन गया और बोला, 'पंडितवर्ग ! रिवत में एक हजार मुद्रा में भी द सकता हूँ, आप लोग मरी भी प्रशंसा करें ।' इस अत्यंत आश्चर्य को सुनकर प्रचान मंत्री कैमास ने कहा—'रि मुडिक ! महाराज पृथ्वीराज के सामने भी जो कुछ यद्वा तद्वा बोलता है; मालूम पड़ता है तुम कंठ पकड़वाने की फिर में हो ।'

यह सारा दृश्य देखकर राजा बोला—'आप मन्त्रों को समझति रखनी चाहिए ।' कैमास आदि बोल—'राजन् ! ये महाशय गोरूप क समान हैं, यदि गाय को कुछ ज्ञान होता है, तो इन्हें भी है ।' राजा ने कहा—'इस बात का परिष्प तो इसकी धरत-शकल स ही मिन रदा है । और यह भी हम जान गय हैं कि आचार्यजी विद्वान हैं । परन्तु न्यायमयी हमारी समा में किमी को पद्यगत आदि क विषय में कुछ कहन का अवसर न मिल, इस कारण सब विषयों में पद्मप्रमाचार्य का मो परीक्षा करना योग्य है ।' पंडितों ने कहा—'कृपानाय ! पद्मप्रमाचार्य को कविता करन का ज्ञान नहीं है । आचार्येरचित श्लोकों में यह छन्द ही नहीं पहचानता । आचार्यभी ने तर्क और दलालों से ( सामान्य आरात्रिक अवधारण ) को सिद्ध कर दिया । उसके मुक़बले में यह कोई जवाब ही नहीं दे सका । अतः यह सक्रयाम्त्र को बिलकुल ही नहीं मानता है । इस तो कबल विरुद्ध बोलना आता है । खैर, वो कुछ भी हा, आप भीमान् की आज्ञास विशय रूपस समान बताव करमें ।' राजपंडित बोल—'आचार्यजी ! आर पं० पद्मप्रमाचार्यजी आप दोनों निम्नलिखित समस्याओं की पूर्ति करो —

"चकर्त दन्तद्रयमर्जुना शरी, क्रमादसु नारद इत्यबोधि मः," धीपूज्यजीन चण मर में सोच कर कहा —

‘चकर्त दन्तद्वयमर्जुन शरै , क्रमादसु नारद इत्यबोधि स ।  
भूपालसन्दोहनिषेधितक्रम ! क्षोणीपते । केन किमत्र सगतम् ॥

[ अर्जुन ने बाणों से दोनों दन्तों को फट डाला । उसने क्रम से इसको यह नारद है ऐसा जाना । नरेन्द्र मंडल से सेवित चरख वाले पृथ्वीराज । इन दोनों समस्याओं में किसके साथ किसका सम्बन्ध है । ]

इसके उत्तर में सम्य लोको ने कहा—‘आचार्यजी ! ऐसी समस्याओं की पूर्ति से कोई फायदा नहीं । इसकी परस्पर में कोई संगति नहीं है, यह उत्तर पाने के लिए ही हमने आप से पूछा था, और आपने वैसा ही जवाब दिया है । सरल क्रम्य रचना की अपेक्षा समस्या-पूर्ति में यही तो कठिनाता है कि उसके असंगति दोष को हटाकर उसे संगत बनाना पड़ता है ।’ श्रीपूज्यजी ने कहा—‘पंडित महाशुभाभो ! इस प्रकार भी तो समस्या पूर्ति होती है । देखिये, एक समय राजा भोज की समा में किसी बाहर से आये हुए पंडित ने समस्या पूर्ति के लिये निम्नलिखित तीन चरख कहे—‘सा ते भवतु सुप्रोताऽवध चित्रकनागरेः । आक्रभो न बह्य यान्ति’ । उसी समय समा में स्थित राजकीय पंडित ने ‘देव किं केन सगतम्’ यह चतुर्थ चरख कह कर पूर्ति कर दी । आचार्य का यह कथन सुनकर राजपंडितों ने कहा—‘हाँ इस तरह भी समस्या पूरी हो जाती है । यदि समस्या-पूरक पद्यप्रमाचार्य सद्यः कोई हो तो । परन्तु क्रम्य-रचना की शक्ति रखने वाले आप सरीखों के लिये इस प्रकार की सामान्य समस्यापूर्ति शोभाजनक नहीं है । तत्पश्चात् पूज्यभी ने धय मर गम्भीरतापूर्वक विचार कर इस प्रकार पदों की योजना की:—

चकर्त दन्तद्वयमर्जुन शरै , कीर्त्या भवान् य करिणो रणाङ्गयो ।  
दिष्टद्वया यान्तमिक्षास्थितो हरि , क्रमात्सु नारद इत्यबोधि स ॥

[ रणाङ्गय में अर्जुन न अपने लीले बाणों से हाथी के दोनों दन्त काटे । हे राजन् ! आपने अपनी चरख कीर्ति से रणाङ्गय में हाथी के दन्तों को मात कर दिया । क्रमात्—शत्रुओं को हारने से होने वाली आपकी कीर्ति हाथी दन्त से भी अधिक उज्वल है । पृथ्वी पर स्थित श्रीकृष्ण ने आक्रमार्ग होकर जाने वाले देवर्षि नारद को एकएक नहीं, क्रम-क्रम से जाना कि ये नारद हैं । ]

इसकी व्याख्या सुनकर आश्वरस में सराबोर हुए राजपंडितों ने कहा—‘आचार्य ! मभवती सरस्वती की आप पर बड़ी भारी छपा है । आप जिस विषय को लेते हैं, उसी में मगवती आपकी सहायता करती हैं ।’ पाम में बैठे हुए विनमतोपाध्याय ने कहा—‘पंडित महोदय ! आचार्यजी के

विषय में आप लोगों का यह कथन अचरितः सत्य है। इन पर यदि बाग्देवी प्रसन्न न होती, तो सरस्वती के पुत्र स्वरूप आप विद्वानों से इनकी मुलाकात कैसे होती ?

पंडितों ने पद्मप्रभाचार्य से कहा—‘महाशय ! आपभी कुछ कहिए।’ वह बोला, आप एक क्षण ठहरिये मैं कुछ सोच रहा हूँ। उन्होंने मझौल उड़ाते हुए कहा—‘जब नाम तक सोचते रहिये।’ सर्व पंडितों ने एक राय होकर कहा—‘सर्वप्रधान महलेश्वर कैमासजी ! आपने आज तक भी त्रिनपतिवृत्ति आचार्य के समान कोई विद्वान् देखा।’ वह बोला, ‘आज तक नहीं देखा।’ इसी समय राजा ने अपने सामने तबले में बँधे हुए घोड़ों की तरफ अंगुली निर्देश करत हुए कहा—आचार्यभी इधर देखिये, ‘ये हमार घोड़ किम प्रकार उछल रहे हैं; इनका वर्णन करिये।’

आचार्य ने कुछ देर सोचकर कहा—राजन् ! सुनिये—

‘ऊर्ध्वस्थितश्रोत्रवरोत्तमाङ्गा जेतु हरेरश्वमिवोद्घुराङ्गा ।

समुत्प्लवन्ते जवनास्तुरङ्गास्तवावनीनाथ ! यथा कुरङ्गा ॥१॥

[इ पृथ्वीपथ ! आपके य तत्र घोड़े हरियों की तरह आकाश की ओर उछल रहे हैं। इनका ध्वज खड़ है और मस्तक ऊँचे हैं। माछूम होता है य ऊँच होकर घुग्घु क घोड़ों को नीतना पादते हैं।]

इस अर्थ क सुनने से प्रसन्न हुए राजा को देखकर पंडित लोग बोले, ‘आचार्य ! उदयगिरि नाम के हाथी पर चढ़े हुए महाराज पृथ्वीराज किम प्रकार शोभते हैं ? इनका वर्णन करो।’ पृथ्वी ने मन ही मन कल्पना करक इस तरह वर्णन किया,—

त्रिस्फूर्जहन्तकान्तं तसदुरुकटकं त्रिस्फुरद्र्धातुचित्रं

पादैर्विभ्राजमानं गरिममृतमलं शोभितं पुष्करेण ।

पृथ्वीराजस्त्रितिशोढयगिरिमभिविन्यस्तपादो विभासि,

त्वं भास्वान् घ्वस्तदोषं प्रयत्नतरकराक्रान्तपृथ्वीमृदुच्चै ॥

[हे पृथ्वीराज भूपति ! आप अब अपने उदयगिरि नाम क हाथी पर आरोह होये हैं, तप आपकी शोभा उदयाचल पर स्थित सूर्य क ममान हो जाती है। आपके हाथी क दन्त आपके आरोहण हेतु पमकत हैं, उदयाचल क शिखर भी घप की किरणों से पमकीसे हैं। हाथी क दन्तों में सुवर्णमय कड़ मोहत है और परत का मध्यभाग सुदावना है। हाथी—उमक शरीर पर की दूर चियों की सजावट से सुन्दर है और उदयगिरि गेरु आदि:

यह चार चरखों से अच्छा लगता है और वह आप पास के छोटे पहाड़ों से। दोनों ही गुच्छ (भस्तीपन) को लिये हुए हैं। पर्यटन काल और बलाशयों से सुन्दर है और गबेन्द्र छपड़सक से। हे राजन् ! आप देदीप्यमान और निर्दोष हैं। स्वर्ण चमकीला और रात्रि को मिटाने वाला है। आपने अपने प्रबल दृष्ट-दलों से बड़े-बड़े राजाओं को दबा दिया है, और स्वर्ण ने अपनी किरणों बड़े ऊँचे-ऊँचे पर्वतों पर पहुँचा दी है। (यह श्लोक दो अर्थ वाला है। स्वर्ण, राजा और पर्वत, हाथी इनकी समता इसमें समान विशेषकों से बतलाई गयी है।)

इस श्लोक के अर्थ को सुनकर राजा साहब अत्यन्त प्रसन्न हुए। राजपंडितों ने कहा—  
‘नृपत ! चारों दिशाओं में, सैकड़ों कोश के मंडल में अपने विद्यालय से राजाओं से स्वर्ण पड़े पाये हुए जो विद्वान हैं उन सबसे व्याकरण, धर्मशास्त्र, साहित्य, तर्क, सिद्धान्त और श्लोकमयार को जानने में यह आचार्य अधिक हैं। अधिक क्या करें, ऐसी कोई विद्या बाकी रही हुई नहीं है, जो इनके सुखकमल में आकर न विराज गयी हो।’

असहनीय, निर्लज्ज पद्मप्रमाचार्य अपने करने की समस्या पूर्ति को बिना किये ही मौख देकर थीपूज्यजी की समालोचना करनी शुरू की, ‘राजन् ! कसबशील, भगवान् कई एक मनुष्यों के पास विद्या का न होना ही मजा है, क्योंकि ऐसे लोग विद्याबल से निरन्तर लोगों के साथ कसबा किया करते हैं, और लोगों के भागे दुरा भावार्थ खड़ा करते हैं। देखिये लिखा है:—

विद्या विवादाय धनं मदाय, प्रज्ञाप्रकर्षापरवञ्चनाय ।

अभ्युत्थलितोऽकपराभवाय, चेपा प्रकाशे तिमिराय तेषाम् ॥

[ जिन पुरुषों की विद्या विवाद (भगवद्) करने के लिये है और धन गब (परमंड) पैदा करने के लिये है। बुद्धि को अधिकता दूसरों को उगने के लिये है और उन्नति लोगों का विरुद्ध करने के वास्त है। उनका लिये प्रशंसा भी अघकर के समान है। ऐसा करना कोई अत्युक्ति नही है। ]

। थीपूज्यजी ने कहा—‘अत्र पद्मप्रम ! यदि आप नाराज न हों तो हम एक श्लोक की बात करें।’  
उमने कहा, कहिये। आचार्य बोले—‘इस प्रकार अशुद्ध श्लोक का उच्चारण करते हुए आप जैसे पुरुष भी पंचमहाप्रतभारा साधु को हसकर मिथ्यात्वा लोग समझेंगे कि इन श्वेताम्बर साधुओं को शूद्र श्लोक तक पोलना नहीं आता और वा क्या जान सकेंगे। इसलिये श्लोकोपहास से बचने के लिये आप पीछे ‘प्रज्ञाप्रकर्ष परवञ्चनाय तेषाम्’ इस प्रकार बोला कीजिये।

इस प्रसंग में आपने जो ( विद्या विवादाय ) श्लोक कहा वह सर्वथा प्रसङ्ग विरुद्ध है, क्योंकि हमने तुमसे नहीं कहा था कि तुम हमारे साथ वाद-शास्त्रार्थ करो। तुम ने ही फलौदी में हमारे मक्त भावकों के आगे कहा था कि, 'तुम्हारे गुरु को यहाँ ले आओ, मैं उनको हराने में समर्थ हूँ।' अपना कल्पना हिलाता हुआ पद्यप्रमाचार्य बोला—'हां, मैंने कहा था। श्रीपूज्यजी—'किसकी शक्ति के मरोस पर?' पद्यप्रम—'मेरो अपनी निम्नी शक्ति के मरोसे पर।' श्रीपूज्यजी,—'अब वह तुम्हारी शक्ति कहाँ चली गई, क्या कौओं ने चरली?' पद्यप्रम—'मेरी सुजाओं के बीच विद्यमान है, परन्तु बिना अमसर प्रकाशित नहीं की जाती।' श्रीपूज्यजी—'उसके प्रकाशित करने का अमसर कब आयगा।' पद्यप्रम—'अभी ही है।' श्रीपूज्यजी—'तो फिर देरी क्यों करते हो।' पद्यप्रम—'राजा साहब की आज्ञा लेकर अपनी शक्ति का परिचय दूंगा।' श्रीपूज्यजी—'शीघ्रता कीजिये।' इसके बाद पद्यप्रमाचार्य अपने मन में सोचने लगा—'इस आचार्य ने शारीरिक प्रभाव से, कथन चातुरी से, विद्या बल से, और बशीकरण मन्त्र के प्रयोग से यहाँ पर उपस्थित सभी राजा और राक्षसपुरुषों को अपने अनुरागी मक्त बना लिये हैं। ब्यबहार की अनभिज्ञता से मैंने अपने मक्तों के मुख पर भी कालिमा लगा दी। क्या करें? कोई भी उपाय फल नहीं देता। अस्तु, तथापि "पुरुषेश सत्वा पुरुषाकरो न मोक्तव्यः" अर्थात्—'कुछ भी हो किन्तु पुरुष को पुरुषार्थ नहीं छोड़ना चाहिये। इस कहावत का अनुसार अब भी जैसे जैसे हिम्मत करके इस आचार्य के साथ समता-वरावरी प्राप्त करना योग्य है। तभी इस देश में रहना हो सकेगा। अन्यथा लोगों में होने वाले उपहास एवं अनादर को हम नहीं सह सकेंगे। इस दुःख से हमें और हमारे भावकों को यह देश ही त्यागना पड़ेगा।' इस प्रकार गहराई के साथ खुद सोचकर वह राजा से कहने लगा—'महाराज! मैंने लक्षोत्त प्रकर की शस्त्र विद्या और मन्त्रविद्या में परिभ्रम तथा अभ्यास किया है। इसलिये इस आचार्य को मेरे साथ कुस्ती लड़ाने दे?' राजा पृथ्वीराज बदन-साधुओं का आचार ब्यबहार से अनभिज्ञ था और कुस्ती का कौतुक देखने की इच्छा थी, इसलिये श्रीपूज्यजी की ओर इस अभिप्राय से देखने लगा कि ये भी कुस्ती के सिये पैपार हो जायें। श्रीपूज्यजी ने आकृति और चेन्नाओं से राजा का अभिप्राय जानकर कहा—'राजन्! बाहुयुद्ध आदि लीढायें हाथियों की है। वे अपने गुणदा-दण्ड से बल की आज्ञामार्श्या किया करते हैं। एक दूसरे का गल चिपट कर अगड़ना बालकों का सिये शोभादायक है, बड़ों का सिय नहीं। शस्त्र लेकर परस्पर में सडत हुए राजपूत ही अच्छे सगा करते हैं। हम कार्य को यदि बनिये करें तो उनही शोभा नहीं होती। दन्त-कन्दा करना बेरयामों का काम है न कि राजरानियों का। तब आप ही बतलाइये, पद्यप्रमाचार्य का यह युद्ध निमन्त्रण कैसे स्वीकार करें? यह हमारा काम ही नहीं है। पंडित लोग तो अपने-अपने शास्त्रज्ञान के अनुसार उचर-मत्युचर देत हुए ही अच्छे सगा करते हैं।'

आचार्यजी के इस कथन के मध्य में ही राजपंडितों ने भी राजा से कहा कि—‘महाराज-पिराम ! हम लोग पंडितार्थ के गुण से ही आपकी के पास से भीविद्य पाते हैं। मन्त्रविद्या से हमें कुछ नहीं मिलता है। क्याचित् आप हमें मन्त्रपुत्र में प्रवृत्त होने की आज्ञा दें तो हम उस आज्ञा का पालन करने में असमर्थ हैं।’ भीपूज्य बोले—‘यद्यप्रम ! इस समा में अपने दुई ऐसी बात करते हुए तुम्हें बरा भी शर्म नहीं आती।’ वे फिर राजा से बोले—

‘राजन् ! यदि इतकी शक्ति हो तो यह हमारे साथ प्राकृतभाषा, संस्कृतभाषा, मामकीभाषा, पिशाचभाषा, शूसेनीभाषा, अपम्र शमला, आदि भाषाओं में गद्य-पद्य रचना करे। अथवा व्याकरण, छन्द, अलङ्कार, रस, नाटक, तर्क, ज्योतिष और सिद्धान्त ग्रन्थों में विचार करे। यदि हम पीछे हटें तो, यह वैसा करे वैसा करने को तैयार हैं। परन्तु यह हमारे हाथ से लोकविक्रम, धर्मविक्रम मन्त्रपुत्रादि कर्म्य करवाना चाहता है। इस कर्म्य को हम किसी भी तरह करने को तैयार नहीं हैं और इसके न करने से हमारा कोई हस्तकायन भी न समझ जायगा। इसी तरह कुछ कोई किस्सा करे कि—अगर आप पंडित है, तो हमारे साथ हस्त चलधये। क्या हम उसका करना मत लेंगे ? और यदि हम उसके कथनानुसार उस कर्म्य को नहीं करें तो, क्या हमारी पंडितार्थ वाली जायगी ? यदि यह हमको भीठना चाहता है तो कृत्स्नोक्त, प्रश्नोत्तर गुप्तक्रिया और करक आदि जो इसके मन में आवे सो पूछे। अथवा यह अपनी मर्जी के अनुसार किसी भी सांकेतिक स्थिति में कोई रसोक्त सिखे, यदि हम इसके हृदय में स्थितछन्द को न बतायें तो हमें हारा हुआ समझो। किन्तु शर्त यह रहे कि यह उस छन्द को पहले ही सम्यक् पुरुष को बतावाये, जिससे कि फिर वह अपनी बातों को बदल न सक। अथवा यह किसी छन्द के केवल स्वर या केवल व्यञ्जनों को ही सिखवे; हम यदि इसके हृदय में स्थित रसोक्त को न बतायें तो हम हार गये। एक बार सुने हुए रसोक्त या रसोक्तपत्रों को आनुपूर्विक यह सिखकर बतावे, या हम बतावे हैं और वर्तमान समय में प्रचलित बाँसुरी से गाई जाने वाली राग-रागिनियों का नाम परिचय देते हुये तात्कालिक गायन स्वरूप कविता द्वारा अन्य किसी से बनाये हुए कोष्ठक की पूर्ति यह करके दिखलावे या हम करके दिखलावे हैं।

आचार्य के इस कथन को सुनकर राजा ने कहा—‘आचार्यजी ! आप सभ राग-रागिनियों को पहचानते हैं ?’ पूज्यजी ने कहा—‘महाराजापिराम ! यदि किसी पंडित के साथ शास्त्रार्थ हो तो बात करें। इस अज्ञानो मनुष्य के साथ विवाद करने से तो केवल अपना कंटशोपक करना है।’ इसक उत्तर में राजा ने कहा—‘आचार्य ! आपको पितृव्य होने की कोई आवश्यकता नहीं। आपकी बगई हुई कोष्ठक पूर्ति तम्बन्धी कला को आप दिखलावें जिससे हमारी उत्कंठा पूरी हो।’ पूज्यजी बोले—‘हाँ, मन्त्रपुत्रादिक विना इस प्रकार की आज्ञा से हमें भी हादिक संतोष मिलता

हे । रामदास से समा में उसी समय तत्काल बनाई हुई नई बांसुरी बजाई गई; उस में से निकलती हुई नई-नई राम-रागिणियों का आचार्य ने परिचय दिया और तत्काल ही राजा पृथ्वीराज के न्याय प्रियता आदि गुण वर्णन स्वरूप श्लोकों की रचना करके सर्वाधिकारी कैलास से निर्दिष्ट कोठों की पूर्ति की । छरिखी महाराज की सर्व तंत्रों में स्वतंत्र प्रतिमा को देखकर उस समा में ऐसा कौन मनुष्य था जिसके मन रूपी कमल पर आश्चर्य सप्तमी ने अधिकार न जमा लिया हो ? अतीत प्रसन्न होकर राजा पृथ्वीराज ने कहा—‘आचार्य ! आप जीत गये हैं । हम आप के विजय की मुक्त-कूट से बोधवा करते हैं । अब आपके जीतने के कारों में किसी के भी मन में किसी भी प्रकार का संकल्प-विकल्प नहीं रह गया है । मैंने अपने धर्म क प्रमाण से हजारों प्रदेशों पर प्रसूता प्राप्त की है और सत्तर हजार बोकों पर मेरा आधिपत्य है । मैं समझता हूँ कोई भी प्रतिपक्षी मेरे समान दबों को अभी तक प्राप्त नहीं कर सका है । परन्तु इसी देश में-जिसमें मैं हूँ-आपको मैं समान भेयी का मानवा हूँ । क्योंकि आपने भी समस्त देशों के धर्माचार्यों को जीतकर उन पर आधिपत्य-प्रसूता प्राप्त की है । आचार्य महोदय ! आज तक हमें ऐसा मालूम नहीं था कि आप इस प्रकार के रत्न हैं । इसलिये जानमें या अनजान में जो हमने आपके प्रति अनुचित व्यवहार किया हो, उसे आप क्षमा करें ।’ इस प्रकार कहते हुये नरपति ने आचार्यभी के आगे समा प्रायना के लिये दोनों हाथ जोड़े । बदले में श्रीपृथ्वी ने हर्षवश होकर निम्न श्लोक से आशीर्वाद दिया और राजा की मूर्ति प्रतिशंसा की:—

धन्त्रम्यन्ते तवैतास्त्रिभुवनभवनाऽभ्यन्तरं कीर्तिकान्ता,  
स्फूर्जत्सौन्दर्यवर्या जितसुरक्षक्षणा योषितः सघटन्ते ।  
प्राज्यं राज्यं प्रधानप्रणामदवनिर्षं प्राप्यते यत्प्रभावात्,  
पृथ्वीराज ! श्रेणेन चित्तिप ! स तनुता धर्मसाम् श्रियं ते ॥

[ हे पृथ्वीराज नृपते ! जिस धर्मसाम के प्रमाण से तेरी कीर्ति त्रिलोकी में फैल गई है और जिस धर्म के प्रमाण से ही सौन्दर्य गुण वाली, बेबागनाभों को मार करने वाली सुन्दरी स्त्रियों तुम्हें मिला रही हैं और जिस धर्म के ही प्रताप से प्रधान-प्रधान राजाओं को जीत कर तुम्हें यह विशाल राज्य मिला है, वह धर्मसाम तेरी राज्य सप्तमी को दिनों दिन बढ़ावे । ]

राजा और आचार्य दोनों में इस प्रकार का शिष्टाचार देखकर पद्मप्रमाचार्य बाह से करने लगा, ‘महाराज ! इस समा में अब तक केवल आप ही समदर्शी थे, अब आप भी अपने मयी आदि परिवार की देखा-देखी आचार्य की तरफ़दारी करने लग गये हैं ।



राजा ने कहा—‘पद्मप्रभाचार्य ! आप इमार हाथ से क्या करवाना चाहते हैं ? अगर जाले कोई पांडित्य कला है तो आप आचार्य के साथ बोलिए, हम न्याय करेंगे । अगर कुछ नहीं जानते हैं तो उठिये अपने घर जाइये ।’

वह बोला—‘राजन् ! न्यायाधीश पृथ्वीराज राजा की राजसभा में यदि कोई कला-कौशल का अभिमान रखता है तो वह मेरे साथ आवे । इस प्रकार रख-निमंत्रण देता हुआ मैं सब के ऊपर ऊँचा हाथ उठानूंगा । इसी अभिप्राय से मैंने लाठी चलाने के छपीस मेढ़ सीखे हैं । इसलिये मैं कहता हूँ कि बड़ी परिश्रम से सीखी हुई मरी यह कला आपकी सभा में भी यदि सफल न होती तो फिर कहाँ होगी ।’

५१ इस अवसर पर महाराज पृथ्वीराज का कृपावान् मंडलेस्वर कीमास का समकाल, और भीमिनपतिछरिजी का अनन्यमत्त सेठ रामदेव बोला कि—‘स्वामिन् ! कृपा मेरी एक बल सुनें—मेरे अन्त समय में पिताजी को ज्योतिषियों ने कहा था कि सेठ वीरपाल ! आपके पुत्र की वन्दपत्री से जाना जाता है कि तुम्हारा पुत्र राममान्य और दानी होगा । ज्योतिषियों के इस बचन में विश्वास करके पिताजी ने एक विश्वासी पंडित के द्वारा सम्यक्काल से ही मुझे बहल कलाओं का अभ्यास करवाया है । उनमें से ओर-ओर बहुल-सी कलाओं का परिश्रम ( नतीजा ) मैंने देख लिया है । मेरे पिताजी का यह आशय था कि राजसभा में अनक प्रकार के पुत्र प्राप्त करवें, कोई किसी बल में मेरे पुत्र का अनवर न कर सके ! आपकी कृपा से आज तक आपकी सभा में मेरी ओर किसी ने बल दृष्टि से नहीं देखा है । इसलिये बाहुबुद्ध कला का मौख्य कभी नहीं आया है । आज यह मानो मेरे पुण्य बल से लिखा हुआ ही आपकी सभा में पद्मप्रभाचार्य आ गया है । इसलिये यदि आप को आज्ञा हो और पद्मप्रभाचार्य को यह बल स्वीकार हो तो, सीखी हुई बाहुबुद्ध कला का फल भी देख लिया जावे ।’ इन्द्र-पुत्र प्रिय राजा ने कहा—‘इसमें क्या हर्ष है, सेठ आप शाश्वत से तैयार हो जाओ । पद्मप्रभाचार्य जी ! आप भी उठें, अपनी अम्यस्त कला का फल प्राप्त करें ।’ राजा के आदेश को पाकर दोनों ने लौगोट लगाये । गुत्वम-गुत्थी होकर अपने-अपने बल की जांच करने लगे । बोधी देर बाद सेठ रामदेव ने पद्मप्रभाचार्य को पछाड़ दिया । राजा पृथ्वीराज ने रामदेव सेठ की संबोधित करव हुये व्यङ्ग्यबचनों में कहा—‘सेठ ! सेठ ! इसका कान सत्य है, ठोडना मत ।’ हास्य में कहे गये इस निवेप को एक प्रकल की आज्ञा मान कर सेठ रामदेव ने उसके कान की हास्य से पकड़ कर भीपून्यवी की तरफ देखा । भीपून्यवी ने कहा—‘इस कर्ष से त्रिन-शासन की निन्दा होती है, इसलिये ऐसा मत करो ।’ इस काण्ड की लेकर लोगों में कपटी हसपल मच गईं । कोई कहने लगा—‘मैंने यह पहले ही कह दिया था कि सेठ मोठेगा ।’ इमरा बोला, ‘पद्मप्रभाचार्य ने छपीस देयद कलाओं का अभ्यास किया

है और सेठजी ने इस से दूनी कस्तारें सीखी है ।' इस प्रकार इफ्फो हुई मीठ में से लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार बालें बनाने लगे ।

राजा के हुक्म से रामदेव सेठ पद्मप्रमाचार्य को छोड़कर अलग हो गया, वह भी ठठ खड़ा हुआ और अपने कपड़ों की धूल झाड़ने लगा । इस अवसर पर राजा का इशारा पाकर, राजकीय पुरुषों ने गाजा पकड़कर उस चक्का दिया । उस बेचारे का एक पैड़ी से दुसरी पैड़ी पर गिरने से सिर फूट गया । पैदियों के पास जमीन पर गिरने से वह कुछ मात्र के सिये सूच्छित हो गया । वहाँ खड़े हुए किसी मनुष्य ने उसका हात मारी । महाराज श्रीविनपतिव्रतिजी से यह अनौचित्य नहीं देखा गया । इस कार्य को उन्होंने विनशासन को निन्दा करवाने वाला समझा । महाराज ने दुया के परियाम से अपने निज के भक्त भावक कृष्णदेव से उसको प्रच्छादिकर दिलाई और वहीं एकत्रित हुए जन-समूह में से किसी एक मनुष्य ने हाथ का सहारा देकर उसे बैठा किया । वही मनुष्य दूसरे हाथ से उसके शरीर पर यह कहता हुआ अपक्रियाँ देने लगा कि हमारा ठंडक शस्त्रार्थ में जीत गया । वहाँ खड़े हुए हजारों आदमियों में से कतिपय पुरुषों ने बेचारे पद्मप्रमाचार्य के ठोकरें लगाकर घबलगृह नाम के राजमहल से उसे बाहर निकाल दिया ।

श्रीपुन्यजी ने श्वेत-वस्त्र-खण्ड पर किसी सिद्धहस्त चित्रकार के हाथ से श्लोककार प्रथम छत्रबंध की रचना कर राजा को दिया । राजा ने बड़े भाव से उस छत्रबंध श्लोक को पढ़ा :—

पृथ्वीराय ! पृथुप्रतापतपन प्रत्यर्थिपृथ्वीभुजां,  
का स्वर्धा भयताऽपराद्धर्ष(र्ष्य)महसा सार्धं प्रजारजने ।  
येनाऽऽजौ हरियोज खङ्गखलिकासंपृक्त्रिमस्याणिना,  
दुर्वाराऽपि विदारिता करिघटा भादानकोर्षीपतेः ॥

[ हे पृथ्वीराज ! आपका प्रताप धर्म के समान है । आपका पराक्रम प्रशसनीय है । आप प्रजा का रक्षण करने वाले हैं । शत्रु पक्ष का राजा क्या आपकी बराबरी कर सकत है । आपने हाथ में तलवार लेकर सग्राम में सिंह की तरह भादानक नाम का राजा के दुर्नय हाथियों की कटार को क्रिम-भिन्न कर दिया । ]

यह छत्रबंध हुए पढ़ा, पंडितों ने दो प्रकर से उसका व्याख्यान किया । उसी चित्रपट में चित्रित दो राजवंशियों के ऊपर लिखि हुई ये दो गाथायें भी राजा ने पढ़ी—

कथमक्षिणपक्षस्तंगहमसुद्धवयया मलीमसकर्म व ।  
मायासहिय पिभवरं परिहरिय रायईसकृज ॥

परिसुद्धोभयपक्षं रत्तपय रायहंसमणुसरइ ।  
तं पुहत्रिरायरगासरसि जयसिरी रायहंसि ज्व ॥

[ हे राजन् पूष्पीराज ! जिन्होंने मत्तिन-दुराचारी-पात्रों को एकत्रित कर रक्खा है (र) । पचान्तर में मिनकी पक्षिं मत्तिन है (रस), जिनका कार्यक्रम दोषपूर्ण है (नप), जिसकी वासी छत्र नहीं है (रस), वो मानी-घनवी है (रूप), बीषक से जिसके पजे जैसे हैं (हंस), गुमाली बनवी मनुष्य ही मिनकी प्रिय हैं । ऐसे राज समुदाय को तथा जिसको मानस नाम सरोवर प्रिय है । जिसके माह-पितृ पक्ष शुद्ध है (रूप) तथा राजपक्षियों के सुयुद्ध को छोड़कर जिसकी दोनों पक्षिं अच्छी हैं, जिसके परब सात हैं । ऐसे राजाओं में इस क समान श्रेष्ठ आपका रण-रूपी सरोवर में राजहंसों की तरह बयलक्ष्मी अमुगमन करती है । ]

इन दोनों गाथाओं की श्रीपूज्यजी ने बड़ विस्तार से व्याख्या की । गाथाओं के अर्थ को सुनकर प्रसन्न हो राजा मन ही मन विचारने लगा कि इन आचार्यभी का कोई अमीष्ट सिद्ध करूँ । राजा ने कहा—‘आचार्य महाराज ! आपको मेरी अथवा आपके गुरु की शपथ है, आप मेर से कुछ शान्तिपदार्थ की याचना अथवा करें । जिस दृश अथवा नगर में आपका मन प्रसन्न रहता हो, उसी का पत्र आप मुझसे ले लीजिये ।’ श्रीपूज्यजी ने कहा कि, महाराज ! मेरा कवन सुनिये— जिसने अपनी ही कमाई से एक लाख रुपयों की पूंजी पैदा की है सा माहादेव जिसका नाम है ऐसा एक आबक विक्रमपुर में रहता है । वह गृहस्थावस्था के सम्बन्ध से मेरा चाचा होता है । मेरे दीक्षा लेने के समय उसने बड़े प्रेम से मुझसे कहा था कि, ‘बेटा ! मैं मेरे वास्त-बर्षों को अनेक प्रकार से आनन्द करते हुए देखूँगा । इस अभिप्राय से मैंने अनेक कष्टों को सहकर इतना धन कमाया है । बेटा ! तुने यह क्या मनमें सोचा ? जो तु गृहस्थावस्था से उद्धिप्र हुआ सो दिखलाई देता है । तेरा मन हो तो इस-भीस हवार रुपये देकर तुझे विदेश भेज दूँ अथवा यहाँ ही कोई बुकान खुलवा दूँ या किसी सुयोग्य सुन्दरी कुलीन कन्या से तेरा विवाह करावा दूँ । और तेरे मनमें कोई मनोरथ हो तो बतला उसका भी पूर्ण करूँ ?’ इत्यादि अनेक तरह से मुझे समझाया । परन्तु मैंने इन बातों की तरफ कुछ भी लयास न देकर गुरु के उपदेश से उत्पन्न हुए गद्य वैराग्य से सर्वसंग परित्याग कर दिया । वह मैं आज आपके दिए हुए देश या नगरी की कैसे इच्छा कर सकता हूँ । राजा ने कहा—‘तो और कुछ अर्थ परमाद्ये; जिससे मैं आपकी कुछ सेवा कर सकूँ ।’ राजा और आचार्य इन दोनों का सम्वाद सुनकर परम उत्कण्ठित हुए संत रामदेव ने कहा, ‘कृपानाथ ! आप गुरु महाराज को शिष्य-पत्र भेंट करने को कृपा करें ।’ राजा ने कहा—‘आज तो समय बहुत हो गया है, हमारे हाथ में अथवा भी नहीं है । किन्तु मैं अपने महलवाड़े से दो दिन के बाद

अजमेर आऊँगा, वहाँ पर अक्षय्य ही अक्षय्य कर दूँगा।' सेठ रामदेव ने कहा—'जैसी आपकी आज्ञा, परन्तु मेरी एक प्रार्थना है कि बड़े समारोह से हमारे गुरु का अजमेर में प्रवेश हो। ऐसी आज्ञा फरमा दीजिए।' राजा ने प्रधान मंत्री कैमास को कहा—'मंडलोत्तर! नगर सजाकर बड़े ठाठ-वाट और शान-शौकत के साथ सेठ रामदेव के गुरु का नगर प्रवेश करवा देना और इनके उपाध्य में पहुँचा देना।'

४२ इसके बाद आचार्यजी वहाँ से उठकर मंत्रीस्वर कैमास आदि राज्यीय प्रधान-पुरुषों से वार्तालाप करते हुए नगर की ओर चले। उनके पीछे-पीछे रजपूतों की घुड़सवार पलटन चल रही थी। उस समय महाराज अपने कर्नो से अपनी मधुर कीर्ति सुन रहे थे। चारों ओर अनेक लोगों द्वारा की हुई 'जय हो-धिरजीव हो' आदि का पोप प्रहस्य कर रहे थे। यद्यपि सिद्धान्तानुसार जैनधर्मियों को छत्र धारण नहीं करना चाहिये, परन्तु जैन धर्म के उद्योत एवं प्रमाणा के लिये वे महाराज पृथ्वीराज द्वारा दिए गये मेघाब्ज्जर नाम के छत्र को धारण किये हुए थे।

नगर में स्थान-स्थान पर रज्जु उड्डाला जा रहा था। भावक लोग उस सुश्री के अवसर पर गरीब लोगों को दान देते थे। सुन्दरियाँ नृत्य करती थीं, मनोहर गाने गाये जाते थे। माँट लोग गीतम गणधर आदि प्रधान-प्रधान पूर्वकों के गुण वर्णन के साथ विरहव्यसनी पढ़ रहे थे। महाराज पृथ्वीराज की समा में इन आचार्यजी ने पद्मप्रमाचार्य को वीत लिया, इस अर्थ को लेकर उत्सुक बनाई हुई चौपाइयाँ पड़ी जा रही थीं। अगाह-अगाह शस्त्र आदि पार्श्वों प्रकार के बाजे बज रहे थे। उस समय राजाघा से अलक्षित अजमेर शहर में पहुँच कर क्रमशः शैत्यवर्धन करक महाराज चौपचशास्त्रा में पहुँचे।

४३ दो दिन के बाद अपनी प्रतिष्ठा पूर्ण करने के लिये दक्षिण सहित राजा पृथ्वीराज अजमेर अपने महलों में आये। वहाँ से अक्षय्य को हाथों के हाँदे में रख कर नगर के बीचों-बीच होकर चौपचशास्त्रा में आये और भीपूज्यजी के हाथों में अक्षय्य अर्पित किया। बदले में भीपूज्यजी ने आशीर्वाद दिया और भावक लोगों ने नज्दों देकर राजा साहब का स्वागत किया। इस महोत्सव में सेठ रामदेव ने अपने घर से सोलह हजार रुपये खर्च किये थे। इसके बाद आचार्य महाराज अजमेर से विदा करके वि० सं० १२४० में विक्रमपुर आये, वहाँ पर अपने साथ के १४ धर्मियों सहित भीपूज्यजी ने छः मास तक गण्डि योग तप किया। वहाँ से चलकर वि० सं० १२४१ में कसोदी आकर विष्णुनाथ, अश्वि, पद्मदेव, गण्डदेव, यमचन्द्र और धर्मभी, धर्मदेवी नामक साधु साधवियों को दीक्षा दी। वहाँ पर वि० सं० १२४२ माघ शुद्ध पूर्णिमा के दिन पं० भीमिनमतोपाध्यायजी का स्वर्गवास हुआ। इसके बाद वि० सं० १२४३ में खेड़ा नगर में महाराज नालुमाँस किया, वहाँ सगमानु ग्राम विचरते हुये पुनः अजमेर की ओर पसार गये। वि० सं० १२४५ में त्रसद्विनायक का जन्म

में स्थानीय जैन बन्धुओं की ओर से किसी निमित्त को लेकर कोई इष्ट गोष्टी की गई थी। वहाँ पर महशाली गोत्रोय किसी भावक ने किसी वस्याय (?) अमरपङ्कम नाम के भावक को बातों-बातों में कहा कि, 'अमरपङ्कम ! तेरी सखनता, धनद्वेषता और राजमान्यता से हम लोगों को क्या फल प्राप्त हुआ, जब तूने समर्थ होकर भी हमारे गुरु भीञ्जिनपरिवारिणी को उज्जयन्त, शत्रुजय आदि जैनों की यात्रा भी नहीं कराई।' इस कथन को सुनकर वह महशाली से बोला—'आप क्षिप्त न होइये। (तुम्हारे कथनानुसार) तीर्थ-यात्रा सम्बन्धी कर्ष्य करवा दिया जायगा।' इस प्रकार कहकर वह नगर के अधिपति राजा भीमसिंह और उनके प्रधान मंत्री अग्रदेव के पास गया। प्रार्थना करके उस राजा के हाथ से अग्रमेर निवासी खरतर संघ के नाम एक आज्ञापत्र लिखवा कर अपने घर आया। महशाली को अपने घर बुलाकर उसकी राय से खरतरगच्छ संघ के नाम पत्र लिखे गए। उस राजकीय आदेश को तथा अपनी ओर से भीञ्जिनपरिवारिणी की सेवा में लिखे गये प्रार्थना-पत्र को अग्रमेर के पास अग्रमेर भेजा। भीञ्जिनपरिवारिणी महाराज राजा के हुक्म नामे को तथा अमरपङ्कम के प्रार्थना-पत्र को पढ़कर एवं अग्रमेरवासी भीसंघ की प्रार्थना को स्वीकार करके संघ के सर्व तीर्थ-बन्दना के लिये चले।

५४ भीपूज्यजी के दो शिष्य, जिनपासगञ्जि और अमरीलगञ्जि, त्रिसुवनगिरि में यशोमन्त्र-चार्य के पास अपने-अन्तर्ग्रहणताका, न्यायमत्तार, तर्क, साहित्य, अलंकार आदि ग्रन्थों का अमल करत थे। वे दोनों अपने गुरुजी की आज्ञा पाकर त्रिसुवनगिरिवासी भी संघ के साथ तथा न्याय पढ़ने में सहायता देने वाले शीलसागर एवं सोमद्वय यति को साथ लेकर तीर्थयात्रा के लिये प्रस्थान करने वाले भी गुरुजी की सेवा में था। सम्मिलित हुए और यह समाचार भी कहा कि—'आपकी सेवा में आठ हुए हम लोगों को यशोमन्त्राचार्य न कहा है कि—यदि भीपूज्यजी की आज्ञा हो तो मैं भी यात्रार्थ आकर सम्मिलित हो जाऊँ। महाराज जब गुजरात देश में पधारेंगे तब मैं आने आया चलूंगा। ताकि कोई भी प्रतिवादी महाराज के साथ शास्त्रार्थ करने की हिम्मत न कर सके इस प्रकार अपने गुरुओं का मन्त करन से मेरे भा कर्मों का सचय अक्षर्य ही कुछ इसका होगा परन्तु उन्हें साथ स्नान की आज्ञा की आज्ञा न होने से यशोमन्त्राचार्य को हमने अपने से निषेध क दिया।'—इसके बजाय में भीपूज्यजी ने कहा—'जैसा तुम लोगों को आज्ञा लग बैसा करो। पर उस आज्ञा की स्नान की इच्छा हो, तो ले आओ। क्या अब भी वे किसी प्रकार साथ न सकत हैं? व बोले—'हे प्रभो ! यह यहाँ से बहुत दूर है, इसलिये अब उनका आना वा कठिन है।'

जिस प्रकार चातुमास में हजारों नदियों के प्रवाह-गंगा प्रवाह में आकर मिलते हैं, वैसे विकासपुर, उष्वा, मरुकोट, जैजलमेर, फलीदी, दिम्ली, बागड़ और मांडव्यपुर आदि नगरों

निवासी सम्पन्नों के संग आ आकर अजमेर वाले संघ में मिलने लगे । श्रीपूज्यजी अपने विद्या गुच्छ से, उपोगुण से, आचार्य मंत्र की शक्ति से, भाषक लोगों की मक्ति से, संसार से होने वाली विरक्ति से, और बृहस्पति क समान सुयोग्य मनुष्यों के ससर्ग से स्थान स्थान पर जिनधर्म का उद्योत करते हुए भी संघ के साथ चन्द्रावती नगरी पहुँचे ।

५५ वहाँ पर संघ क मध्य में स्थित रथारूढ प्रतिमा के वन्दन क लिये पन्द्रह साधु और पाँच आचार्यों के साथ पूर्वदिशा गच्छ के प्रामाणिक श्री अकलंकदेवहरिजी आये । परन्तु रथ-प्रतिमा-स्नान महोत्सव के लिये आप हुए लोगों का मेला लगा हुआ देखकर वे लौट गये और कुछ दूर आकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गये । जब श्रीपूज्यजी को हात हुआ, तो उन्होंने अपनी ओर से आदमी भेजकर पुछवाया कि, 'आचार्य महातुमाव । क्या कारण हुआ कि चैत्यवन्दन बिना किये ही आप वापस लौट गये ।' उन्होंने जबाब दिया कि, 'यदि हमारे साथ वन्दना-नमस्कार सम्बन्धी शिष्टाचार का यथावत् पालन किया जाय तो हम आ सकते हैं ।' श्रीपूज्यजी ने कहाववा भेजा कि, 'आप खुशी से आइये । व्यवहार पालन में कोई भी त्रुटि नहीं की जायगी ।' इस आश्वासन को पाकर वे आगये और छोटे-बड़े के हिसाब से बिस प्रकार वन्दना की ररम होनी चाहिये यी अदा की गई ।

तत्पश्चात् आगन्तुक अकलंकदेवहरि ने लोगों से पूछा—'श्रीमान् आचार्यजी का शुभ नाम क्या है ?' पास में बैठे किसी मुनि ने कहा कि, 'श्रीपूज्यजी का नाम श्रीजिनपतिसूरि है ।' अकलंक०—'आपका यह उपोग्य नाम किस कारण से रक्खा गया ?' श्रीपूज्य०—'कैसे जाना कि यह नाम अपुका है ?' अकलंक०—'यह तो अच्छी तरह से जाना जाता है कि "जिन" शब्द से सभी केवलियों का बोध जाता है । उनका "पति" तीर्थंकर ही हो सकता है । अपने आपको जिनपति ( तीर्थंकर ) संज्ञा रखत हुए आप परम ईश्वर तीर्थंकरों की बड़ी भारी आशानना कर रहे हैं । इतलिये जिनपति हरि नाम ठीक नहीं है ।' श्रीपूज्यजी ने कहा—'आचार्यजी । यदि विद्वान् ज्ञाग इसको प्रमाथभूत मानलें, तो किसी प्रकार आपका कथन ठीक हो सकता है । परन्तु विद्वान् लोग आगा-पीछा बहुत विचारत हैं । अगर ऐसा नहीं विचारें, तो उनक द्वारा अगत की बहुत कुछ हानि हो सकती है । आपके इस कथन को सुनकर हम ऐसा समझते हैं कि आपने फल लोक-रजन क लिये व्याख्यान देना सीख लिया है और प्रथों का अभ्यास छोड़ दिया है । नहीं तो इस 'जिनपति' शब्द में आपको इस प्रकार भ्रम क्यों होता ? आपको मालूम है कि व्याकरख शास्त्र में केवल एक तत्पुरुष ममास ही नहीं है, किन्तु और भी पाँच समास बखित किये गये हैं । जैसे कि लिखा है:—

'पद् समासा बहुव्रीहिर्विगुर्द्वन्द्वस्तथाऽपर ।

तत्पुरुषोऽव्ययीभावः कर्मधारय इत्यमी ॥

व्याकरण में बहुव्रीहि, द्विगु, इन्द्र, उपसुप्त, अभ्ययीभाव तथा कर्मधारय यह छः समास कहे गये हैं। समास उसे कहते हैं, जिसके द्वारा अनेक पदार्थों का एक पद बनाया जाय। इसी प्रकार अर्थ की विचित्रता दिखाने के लिये किसी एक अन्य पंडित ने भी इन समासों के नाम से एक आर्याभूषण की रचना की है। जैसे—

द्विगुरपि सद्बन्धोऽहं एहे च मे सततमव्ययीभावः ।

तत्सुख ! कर्म धारय येनाहं स्या बहुव्रीहिः ॥

[ कोई पंडित किसी फनी-माली पुरुष के पास जाकर अपनी घरेलू स्थिति का वर्णन करते हुआ आर्थिक सहायता की याचना करता हुआ कहता है कि वनाख्य पुरुष ! मेरे दो गाये हैं, मैं सपत्नीक हूँ, मेरे पास घर में खर्च करने के लिये कुछ भी नहीं है। आप कृपया उस कार्य को भार कर्ते; जिससे मेरे पास खाने के लिये बहुत से चावल हो जायें। अन्न की कृति न रहें।] इस श्लोक में वक्ता की बातुरी से छः प्रकार के समासों के नाम का परिचय भी दे दिया गया है।

अकलङ्कदेव०—‘आपके इस कथन से प्रकृत पिपय में क्या सिद्ध हुआ।’ भीपूज्य०—‘इसके करने का अभिप्राय यह है कि जो अर्थ किसी एक समास से ठीक न बैठता हो, उसकी संगति दूसरे समास से ठीक बैठ जायगी। आपने उदाहरण देकर कैसे कह दिया कि नाम अपुक्त है।’ अकलङ्कदेव०—‘अच्छा आप ही बतलाइये कि कौन से समास से जिनपति नाम सुसंगत होता है।’ भीपूज्य०—‘जिन पतिर्वस्यासौ जिनपतिः’ अर्थात् जिन है पति जिसका वह पुरुष जिनपति कहा जाता है। बतलाइये इस प्रकार बहुव्रीहि समास करने से कौन गुण अथवा दोष होता है।’ अकलङ्कदेव०—‘आचार्यजी ! बहुव्रीहि समास करने पर दोष कोई नहीं होता, बल्कि अपने आपके लिये जैनत्व एक गुण होता है। परन्तु इस प्रकार की कष्ट कल्पना करके लोगों को क्यों बकर में डालता जाय ? सीधा ‘जिनपतिधरि’ नाम क्यों न रख लिया जाय ?’ भीपूज्य०—‘जिन को व्याकरण शास्त्र का अच्छी तरह से ज्ञान है, उनके लिये ऐसे शब्द का अर्थ खगाने में कोई कठिनाई नहीं होती है। व्याकरण के ज्ञानकार लोग सद्विभ एवं कठिन शब्दों का अर्थ भी मही-मौलि निश्चय सेते हैं। फिर ऐसे-ऐसे साधारण शब्दों की तो बात ही क्या !’ अकलङ्कदेव०—‘अस्तु, नाम के बारे में हम कुछ नहीं कहते, यह यों ही सही। परन्तु हम पूछते हैं कि सिद्धान्तों में संप के साथ यात्रा करना साधुओं के लिये उचित बताया है क्या ? अथवा आप सिद्धान्त-विरुद्ध सप के साथ चल पड़े।’ भीपूज्य०—‘उत्सवभाषी अर्थों को छोड़कर ऐसा कौन विद्वान होगा, जो पोड़ा-बहुत सिद्धान्त का आशय लिय बिना ही किसी घम अर्थ में प्रवर्तित होता हो।’ अकलङ्कदेव०—‘आचार्यजी ! आप बड़ शूद्र (उदय) हैं। सिद्धान्त-विरुद्ध अर्थ करत हुए भी सिद्धान्तों

की दुर्घाट दे रहे हैं।' भीषण्य०—'इसका पता तो अब लग जायगा कि कौन उदरग है और कौन नहीं है।' अकलङ्कदेव०—'आपही अकेलों ने सिद्धान्त देखा है, औरों ने घोड़े हो देखा है?' भीषण्य०—'यदि दूसरे भी सिद्धान्तों को देखे हुए होते, तो अक्षर्य ही इस प्रकार नहीं बोलते।' अकलङ्कदेव०—'आचार्यजी! पंच महाप्रतपारी साधु को तीर्थ-यात्रा में संच के साथ ही नहीं जाना चाहिये—इत्यादि निषेधक वाक्य हम सिद्धान्तों में लिखलायें, या आप सच के साथ जाने के सम्बन्ध में प्रमाय लिखलायें। अथवा सिद्धान्तों को दूर रखिये आप अपने गुरुजी के वचनों की तो न मूलिये। देखिये, उन्होंने क्या कहा है—

विहिंसमहिगयसुयत्यो संविग्गो विहियसुविहियविहारो ।  
कङ्कयाऽहं वंदिस्सामि सामि तं थंभगयनयरे ॥

[ मैं विधिपूर्वक सत्रार्थ को प्राप्त करके वैरम्य के साथ विधिपूर्वक विहार किया हुआ स्तम्भनक नगर (खम्माठ) में पहुँचकर भी स्वामी पार्ष्णनाथ भगवान् को बन्दना कर रहा हूँ ]

इस गाथा में वैरम्य के साथ विधिपूर्वक विहार कहा गया है। जिसका यह आशय है कि सच में आसक्त न होकर आरम्म-समारम्म के बिना विहार करें। सच के साथ में रहने से अनेक प्रकार के आरम्म-समारम्म हुए बिना नहीं रह सधते। अतः साधु को तीर्थयात्रा में सच को साथ नहीं लेना चाहिये।' भीषण्य०—'आप इस बात पर अर्थ ही इतना जोर क्यों लगा रहे हैं कि हम सिद्धान्ताचरों को लिखला दें। अपने आपकी शक्ति का तभी प्रदर्शन करना चाहिये, जबकि सिद्धान्तों में न होते हुए भी किन्हीं असत्य अचरों को आप लिखला दें और यदि लिखला भी दें तो सिद्धान्त लोग उन्हें मानेंगे नहीं। अतः आपका यह जोर लगाना अर्थ है। जो अक्षर सिद्धान्त ग्रन्थों में लिखा है, आप विश्वास रखिये वे तो औरों ने भी अक्षर देखे ही होंगे। उन को लिखला के लिये इतना प्रयत्न करना कोई अर्थ नहीं रखता।' अकलङ्कदेव०—'परन्तु सिद्धान्त के कथन का आशय लेकर ही हम संच के साथ यात्रा में चले हैं, आपका यह कहना युक्त नहीं है।' भीषण्य०—'हाँ, आपका कथन युक्त है। हम यदि सिद्धान्तानुसार किसी भी तरह आपको सन्तोष न भी कर सकें तो भी आपको चाहिये कि अन्तर को त्यागकर साधन होकर हमारा कथन सुनें। यदि हमारी कही हुई युक्ति सिद्धान्तानुसारीयों हो, तब तो उसे मानें, अन्यथा नहीं। भरे मनुष्य की सुझी की तरह किसी बात को पकड़कर बैठ जाना प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता।' अकलङ्कदेव०—'हाँ, आपके इस कथन को हम मानते हैं, आप उस युक्ति का प्रतिपादन करें।' भीषण्य०—'आचार्य महाशय! आचार्य उस पुरुष को जानना चाहिये, जिसने अनेक देश देखे हों तथा अनेक देशों को मायायें जानी हों, यह बात तो सिद्धान्त में है, आप मानते हैं?' अकलङ्कदेव०—'हाँ, है।'



भीषण्य०—‘कसबबश हमको छोटी उम्र में ही आचार्ये पद पर बैठाया गया है। इसलिये अन्न कतिपय देशों का देशाटन और भिक्ष-भिक्ष मायाओं से परिचय हो जाय, अतः इस सब क तत्त्व तीर्थयात्रा को चले हैं। इसे मैं करना चाहिये कि शंख और चीर युक्त, कस्तूरी और कण्डू से मिल गई, आपकी तरफ से किये गये आक्षेप का एक यह पहला उत्तर। भीसंघ न हमसे बड़ी प्रार्थना को कि महाराज गुजरात में अनेक चार्वाक ( नास्तिक ) रहते हैं। वहीं हम लोग तीर्थयात्रा करने जा रहे हैं। यदि कोई हमारे सामने तीर्थयात्रा के निषेध के प्रमाण उपस्थित करेगा तो, हम उसे कोई भी उत्तर नहीं दे सकेंगे क्योंकि हम सिद्धान्तों के रहस्य से अनभिज्ञ हैं। इससे बिन-शासन की सुरक्षा मानी जायगी। इसलिये आप हमारे साथ तीर्थ-चन्दन के लिये चलें। इस प्रकार संघ की अमर्षना से हम आये हैं। यह दूसरा उत्तर। संघ के साथ यात्रा करने से साधुओं के नित्य-नियम में व्यापार होने की सम्भावना से सिद्धान्त-ग्रन्थों में संघ के साथ यात्रा करने का निषेध लिखा है। हम भी मानते हैं कि यदि नित्य कर्म में बाधा पहुँचे तो संघ के साथ यात्रा नहीं करनी चाहिये। इस सब में साथ प्रायः दोनों बन्ध प्रतिक्रमण, ब्रह्मचर्य पालन और एक बन्ध मोक्षन आदि अभिप्राय धारण करके भावक लोग तीर्थ-चन्दन के लिये चले हैं। अब आप ही बतलाइये कि हमारे आवश्यक नित्य नियम में बाधा पहुँचाना कैसे सम्भव है?’

इस प्रकार की अनेक उक्तियों को सुनकर प्रसन्न हुए भी अकलङ्कद्वेषधरित्री बोले—‘आचार्य महोदय। “खरतराचार्य”, शब्द को सुनने से ही हमने जान लिया था कि आप किमी प्रसन्न अवलम्बन क बिना इस लोकापवाद को अपने ऊपर नहीं लेते? परन्तु ऐसा सुनते हैं कि मारवाड़ क लोग बड़ी बोलती बोलने वाले होते हैं। आज हमने सुना कि सब क माय आचार्य भी आये हैं। दर्त, य आचार्य किम प्रकार बोलते हैं इनका आचार-व्यवहार, वेप, माया आदि किम प्रकार क हैं। इन बातों को देखन क लिय हम लोग कौतुकबश यहाँ आये हैं। आपके साथ जो हमन तर्क-वितर्क किया, यह कवल शंकी जानने के लिये हो किया गया है। किन्ती अन्य अभिप्राय स नहीं। इस प्रसंग में हमारी ओर स यदि कुछ अनुचित कहा गया हो तो हमें क्षमा करें। भीषण्य०—‘आचार्यजी! इष्ट-पुरुषों की गोष्ठी में कुछ का कुछ करने में आज्ञाता है और विगत विद्वान पर तो उचितानुचित का ध्यान ही नहीं रहता। इसलिय हमसे ओर स मो आपके प्रति कुछ अनुचित व्यवहार किया गया हो ता उसक लिय हम क्षमा-प्रार्थी हैं।’ अकलङ्कद्वेषधरित्री बोले—‘आचार्यजी महाराज। हम इस दश में सुना करत थे कि खरतरगन्ध के आचार्य बादसम्भ स सम्भव हैं। यह सुनी हुई बात कदा तक सत्य है, इसका निषेध करने क लिये हम यहाँ आये थे। परन्तु आज यहाँ पर आपके मापण की रीति दन्वकर हमारे चित्त से संशय चला गया। हम यह जानत हैं कि प्रसिद्धि निमत्त नहीं हुआ करती। आचार्यजी! हमारे साधुओं क विहार में अतिशयन्य हो रहा है। इसलिय हम इन्हें विदा करत है।’ भीषण्य ने कहा—‘क्या आज्ञा आप हमारे

अतिथि नहीं होंगे ? अक्षयदेवजी बोले—‘अतिथि वे ही हुआ करते हैं, जो देशान्तर में आये हों ? हम तो यहाँ के ही रहने वाले हैं । इसलिए आपका पाठ्य ( अतिथि ) कैसे हो सकते हैं ? बल्कि आप हमारे अतिथि हो सकते हैं ।’ भीपूज्यजी ने कहा—‘आपका क्या करना सही है ।’ इस प्रकार प्रेम-पूर्वा भावों के लोभ इतित चित्त से अपने उपाभय को चले गये ।

५६ इसके दूसरे दिन वहाँ के भावक डाक्टराचार्य बन्दनक देने के लिये भीपूज्यजी के पास आये और प्रार्थना की कि, ‘मगवान् ! आप हमारी बन्दना स्वीकार कर लीजिये ? भीपूज्य—‘कैसे तुम्हें सुख उपजे वैसे करो ।’ यह कहकर शान्त मुद्रा पारस्य करके वे विराज गये । उत्पन्न हुए भावक लोग भी जिन बल्लभ हरि की से दशमि हुए विधि मार्गक अनुसार बन्दना करने लगे । इतित होकर भीपूज्यजी ने कहा—‘हे महाभागशाली भावकों ! गुजरात में आठ पट वाली सुख-बलिष्ठा से बन्दना दी जाती है । आप लोगों ने चार पट वाली से क्यों दी ?’ उन भावकों ने जवाब दिया कि—‘स्वर्गीय मगवान् भी अमपदेवधरिजी महाराज ने हमें ऐसे ही करने की शिक्षा दी थी ।’ इस प्रकार अपने पूर्वजों की बात सुनकर महाराज की अतीव इर्ष्य हुआ ।

इस प्रकार चन्द्रावती नगरी में दो-चार दिन विभाम करके महाराज सब को साथ लिये हुए असह्य ( कसिंदरा ) पहुँचे । वहाँ पर उस समय वैश्यबन्दन क लिये सब के साथ महाप्रामा-सिक, पौर्णमासिक गच्छाबलन्त्री श्रीतिलकधरि अनेक साधु-परिवार सहित आये । परस्पर में सुख साठा सम्बन्धी प्रश्न किया गया । अपने गुरु की चरख-सेवा करने से जिसकी कीर्ति चारों ओर फैल रही थी, किसने हीनों से बड़ी हुई सुन्दर रेशमी पोशाक पहन रखी है, स्वर्ण के आभरणों से अलङ्कृत-कामदेव के समान जिसका सुन्दर शरीर है, ऐसे माँ बही निवासी भी सेठ लक्ष्मीधर भावक की ओर अंगुली निर्देश करते हुए तिलकधरि ने भीपूज्यजी से पूछा कि ‘क्या आपके सब के संपत्ति ये ही हैं ?’ इसके उत्तर स्वरूप भीपूज्यजी बोले—‘आचार्य ! भावक मात्र को संपत्ति नाम देना ठीक है ? तिलकधरम०—‘लोक में ऐसी ही भाषा बोली जाती है ।’ भीपूज्यजी उपहास पूर्वक बोले—‘प्रामीश्वरन सुलभ भाषा का सहारा लेकर जवाब देते हैं । इसमें कोई शास्त्रीय युक्ति दो ।’ तिलकधरम०—‘आप भी तो कोई प्रमाण नहीं ब रहे हैं, लोक-प्रसिद्ध भाषा को केवल अपने कथन मात्र से ही सुझाने का आदेश देते हैं ।’ भीपूज्य०—‘वाक्य-शुद्धि जान लेन पर अध्ययनेच्छु साधु लोग बहुत से लोक-प्रसिद्ध शब्दों को छोड़ देते हैं । आचार्य ! लोगों के साथ हमारा किसी प्रकार का मतार नहीं है, किस कि हम उनकी भाषा को प्रमाणमूत न मानें । परन्तु करने का सारांश यह है कि आचारी को ऐसी भाषा बोलनी चाहिये, जिसके बोलने से माननीय पुरुषों की लज्जा न होती हो ।’ तिलकधरम०—‘इस भाषा में बड़ों की लज्जा होती है ?’ भीपूज्य०—‘इस बात को सभी कोई जानते हैं ?’ तिलकधरम०—‘कैसे ?’ भीपूज्य०—‘संघ शब्दस साधु, साध्वी, भावक, भाविकाओं का समुदाय

प्रत्यय किया जाता है। लिखा है—“साहस्य, साहुषीण्य सावय-साविय वत्प्रिहो संयो।” इस बहुवचन सच के पति तीर्थेकर या आचार्य हुआ करते हैं। तिलकप्रम०—“अकेले भावक समुदाय के लिये भी सच शब्द का प्रयोग देखा जाता है।” श्रीपूज्य०—“कारण में कार्य का उपचार होने से ऐसा लगता है, जैसे—“अष्टतमायुः”—अर्थात् आठ वर्ष की आयु है। “आयुर्धृत्म्” की आयु बढ़ाने वाला है। पर सब ही है, परन्तु इस प्रकार सब अगह उपचार के मरोसे शब्दों का प्रयोग करने से मिथ्या-रूपि लोगो में कहीं उपहास मो हो सकता है। “बह लक्ष्मीपर भावक गृहस्थ है।” इसके किसी कुत्सित कार्य को देखकर लोग कहेंगे—वैनियों में यह सर्व प्रचलन है। क्योंकि सच का यह पति है। इसके कुत्सित कर्तव्य को “स्वात्मी पुलाक” न्याय से देखकर समझ लेता कि वैनियों के कर्तव्य जैसे हुआ करते हैं—हमारे कथन का यह सारांश निकलता है। इसलिये आचार्यजी! भविष्य में इस उपचार के मरोसे शब्दों का प्रयोग करना छोड़ दें। हाँ, भावक के लिये सचपति शब्द का प्रयोग अन्य रीति से हो सकता है। देखिये, मैं लिखता हूँ।” तिलकप्रम०—“कैसे ?” श्रीपूज्य—“बहुजीहि समास का व्याख्य लेने से “संघा परिवेस्यासौ सचपतिः, भावकमात्रः” अर्थात् संघ है पति जिसका वह सचपति प्रत्येक भावक हो सकता है।” तिलकप्रम०—“मैंने कहाँ-तहाँ महद्विक भावक के लिये सचपति शब्द का प्रयोग देखा है।” श्रीपूज्य०—“हाँ, भान्तिवश अनेक अगह लोग ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं ? इस प्रकार अनेक तरह से बड़े विस्तार के साथ सैद्धान्तिक-युक्तियों का प्रकाशन करते हुए महाराजजी ने भावक के लिये प्रयोग किये जाने वाले सचपति शब्द का खडन किया। महाराज की इन युक्ति-प्रत्युक्तियों के सामने तिलकप्रमद्वारि निरुत्तर हो गये। उनको चुप हुआ देखकर मुल-वर्ता पूजने के बहाने महाराज ने फिर बोल-वाला शुरू की, “साम्प्रतं युयमत्रैव स्वाभ्याव ” अर्थात् अब आप क्या यहाँ ही ठहरेंगे ? तिलकप्रमाचार्य न इससे हुए कहा—“आचार्य ! ‘अत्रैव’ इस पद को कहते हुए आपन वाक्य-द्वि नाम के अभ्ययन की निपुणता दर्शा दो। कहा है कि ‘तत्रैव सांख्यशास्त्रे मोक्षो गिरा, ओद्धारिणी आ उ परोवपायणी” अर्थात् सावय का अनुमोदन करने वाली तथा दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वाली, निरवपात्मक वाणी साधु के बोलने योग्य नहीं है। इत्यादि ग्रन्थ-वाक्यों से जाना जाता है कि मुनि एकान्त निरवय रूप माया न बोले। आप शास्त्राज्ञा के विरुद्ध “यहाँ ही ठहरोगे क्या ?” ऐसा निरवपात्मक बचन बोलते हैं।” सरस प्रकृति वाले श्रीपूज्यजी बोले—“आपने बहुत बन्धी बात सुनाई। आपका अभिप्राय शायद यही है कि कहा हुआ निरवपात्मक बचन यदि स्पर्श चला आय तो साधु पर मिथ्या-मापक का दोष आता है और ऐसा होने से प्रथमंग होता है। इसलिये साधु को एकान्त बचन बोलना कल्पता नहीं है। और आचार्यजी ! आपने हमारा अभिप्राय नहीं मना, इसलिये अब हम न्यायशास्त्र की रीति से अभिप्राय प्रकटित करेंगे। लर्क पढ़ने का यही फल है कि अभिमान और क्रोध को छोड़कर बिसा-सैसा मो वाक्य हो उसका समर्थन किया जाय। आज “काकटासीय न्याय” से गंगा-यमुना के प्रवाहों की तरह अपनी मुलकत मान्यवश हो गई है।

इसलिये अगर क्रोध और अमिमान को छोड़कर तर्कहीन स इष्टगोष्ठी की जाय तो अपने समागम की सफलता है ? तिलकप्रमाचार्य ने कहा—“हाँ, आपके कथन को मैं अचरशः मानता हूँ ।” श्रीपूज्यश्री—“आचार्य ! हम पूछत हैं कि साधु निश्चयात्मक बचन तिलकूल पोले ही नहीं या कमी बोल भी सकता है ?” तिलकप्रम०—“साधु को एफन्त बाखी कमी नहीं बोलनी चाहिये ।” श्रीपूज्य—“निश्चयात्मक बचन कमी नहीं बोलना चाहिये ।” इस पक्ष को यदि सँ तो इनार कथन का खयहन होता है और—

अह्यम्मि य कालम्मि य पञ्चुप्पन्नमणागप ।

निस्संक्रिय भवे जंतु एवमेयं तु निहिसे ॥

[ भूत मविष्यत् और वर्तमान काल में संशय रहित एक बात साधु को बोलनी उचित है । ] इस सिद्धान्त-वाक्य के साथ विरोध पड़ता है । “कमी-कमी साधु निश्चय-भाषा बोल सकता है ।” यदि इस दूसरे पक्ष को ग्रहण किया जाय तो फिर कोई उपालम्भ नहीं मिल सकता है । क्योंकि हमने इसक अनुसार ही निश्चयात्मक भाषा का उच्चारण किया है । आचार्य ! जिस वाक्य में निश्चय सूचक पद का साक्षात् निर्देश न किया गया हो, वहाँ पर अपनी बुद्धि से ऐसे शब्द की कल्पना कर लेनी चाहिये । “सर्वे वाक्य सावधारण्यम्” यह न्याय है । अर्थात् सब वाक्यों का साथ निश्चय रहा हुआ है । बिना निश्चय के कोई वाक्य नहीं होता । न मानने से कहीं भी व्यवस्था नहीं रहेगी । जैसे “पटमानय” अर्थात् कपड़ा लाना । इस निश्चय अर्थ के न रहने से कपड़े की मगल और कोई चीज क्यों नहीं लानी चाहिये ? और ‘पटनयेत्’ इसक सुनने से कपड़े के बिना और किसी वस्तु को ले मानी चाहिये ? और ‘अर्हन् देव’, सुसाधु गुरु” इत्यादि वाक्यों में परमपद प्राप्ति का कारण अर्हन् ही देव है । अर्हन् देव ही है, अर्हन् नहीं है । इसी प्रकार एक मात्र मोक्ष-मार्ग का अमितापी होने से सुसाधु ही गुरु है । इन वाक्यों को सावधारण्य माने बिना उपर्युक्त पदों में व्यवस्था नहीं हो सकेगी । इसी प्रकार सिद्धान्त प्रयोगों के वाक्य भी सावधारण्य होने से ही मनोहर हैं; अन्यथा नहीं । यथा “धम्मो मगलसुक्खि” इत्यादि वाक्यों से यह निश्चय होता है कि धर्म ही सर्वोत्कृष्ट मगल रूप है । धर्म उत्कृष्ट ही मगल है, न की दही-रूप आदि । यह सब सुनकर तिलकप्रमघरि ने कहा—‘अयोग्यव्यवच्छेदपरिहार, अन्ययोग्यव्यवच्छेद अथवा अत्यन्तयोग्यव्यवच्छेद क लिये ही बुद्धिमान लोग एवकार का प्रयोग करत हैं । और आपके कहे हुये “साम्मत युपनत्रैव स्थाप्यतः” अर्थात् अब आप यहाँ ही ठहरेंगे । इस वाक्य में प्रयुक्त एवकार शब्द स उपर्युक्त तीनों में से किसका व्यवच्छेद किया गया है । यदि आप कहेंगे कि यहाँ अयोग्य-व्यवच्छेद है, तो ठीक नहीं; क्योंकि विशेषण से आगे कहा हुआ एवकार अयोग्य-व्यवच्छेद क लिए समर्थ हुआ करता है । और यहाँ विशेषण का ही अभाव है । यहाँ अन्ययोग्यव्यवच्छेद

क लिये यदि एवकार को माना जाय तो भी ठीक नहीं। क्योंकि इस लीग हवा की तरह सदैव उपर विहारी रहते हैं। अतः हमारे लिये स्थानान्तर-योग का निषेध अशक्य है। और यदि यह कि अत्यन्तायोग्यव्यवच्छेद के लिये एवकार है तो भी युक्ति-युक्त नहीं। क्योंकि क्रिया के साथ पड़ा हुआ एव शब्द ही अत्यन्तायोग्य निवारण में समर्थ है, किन्तु केवल नहीं। यहाँ क्रिया का सर्वत्र अभाव है; इसलिये विचार मर्यादा की कसौटी पर कसने से यह आपका शब्द अपेक्ष्य ठहरता है।'

विलक्षणमयूर की ओर से कहे गये निष्कर्ष को सुनकर भीपूज्यजी ने बरा आवेश में तेजी से कहा—'हाँ, आपका कथनानुसार हमारा यह "एव" शब्द अयुक्त हो सकता है, यदि हम इसका किसी प्रकार समर्थन न कर सकें तो। इसके समर्थन के लिये पहले हमने अनेकों युक्तियाँ दर्शायीं। अब फिर हम आपके प्रश्न का उत्तर देने के लिये बहुत-सी युक्तियाँ दिखलायेंगे। देखिये—वर्तनीय वस्तु में सन्देह अथवा विरोध उपस्थित होने से उसे हटाने के लिये विषय-सम अन्वयार्थ अर्थ बाल एवकार शब्दों का प्रयोग करते हैं। जैसे कई लोग अपने युक्ति-बल से आत्मा के अस्तित्व का समर्थन करते हैं, जैसे ही दूसरे लोग युक्तियों द्वारा आत्मा की सत्ता का खंडन करते हैं। और आत्मा से साक्षात्कार अन्य घट-पटादि पदार्थों की तरह किसी को होता नहीं। इसलिये आत्मा है या नहीं, इस सशय में पड़ हुए शिष्य के प्रति तथा जिसके साथ किसी दूसरी चीज का स्थिर सम्बन्ध न बताया जा सका; ऐसी वस्तु आकाश-कमल की तरह कोई चीज हो नहीं है। सुख-दुःखादिक का साथ आत्मा का सम्बन्ध है या नहीं? इस सम्बन्ध में एकदम निरक्षय दना कठिन है। क्योंकि आत्मा के साथ सुख-दुःखादिक का भेद या अमेद सिद्ध करने के लिये इतु नहीं मिलता। यदि अमेद कहा जाय तो आत्मा द्वारा होने वाली सुख-दुःख-दायिनी क्रियाओं में विरोध आता है। क्योंकि नित्य सुख-दुःखादिक का साथ अमिश्र रूप आत्मा में क्रिया का होना अमम्वर है। यदि सुख-दुःख आदि के साथ आत्मा का भेद मानें तो भी ठीक नहीं पड़ता। क्योंकि विज्ञान साग बीजादूरादि क्रम से होने वाले मिला पदार्थों का समवाय सम्बन्ध (नित्य सम्बन्ध) नहीं मानत। परन्तु वास्तव में आत्मा का साथ सुख-दुःखादिकों का नित्य सम्बन्ध है। इस विरोधात्मक असमंजस में स्थित-मनस्क शिष्य के प्रति आत्मा सम्बन्धी निरक्षय करने के लिये गुरु को निरक्षयगमक शक्य वास्तवता पड़ता है—"अस्ति एव आत्मा"—अर्थात् आत्मा अवश्य है। क्योंकि प्रत्येक प्राणा में जो र्थन्त्य और धान दसा जाता है, यह आत्मा के बिना हा नहीं सकता। किसी स्थान पर प्रयोग किया हुआ अन्वयार्थ रूप 'एव' शब्द चाहे जिस किसी चीज का निराकरण करता है किन्तु हमारा म प्रयुक्त यह 'एव' शब्द अयोग्य-अन्यथा-अत्यन्तायोग्य तीनों का ही निगमन (व्यवच्छेद) करता है।

‘साम्प्रतं यूयमत्रैव स्थास्यावः’ अर्थात् अब आप यहाँ ही ठहरेंगे। इस वाक्य में कहे गये सप्तम्यन्त एतत् शब्द से निष्पन्न ‘अत्र’ पद से मासकन्यादि योग्य इतर क्षेत्रों से इस क्षेत्र का कुछ व्यवच्छेद होता है या नहीं? यदि नहीं होता है तब तो इस पद का प्रयोग ही व्यर्थ है और यदि होता है तो ‘अत्र’ पद विशेषण है और प्रकरबन्धन नगर विशेष्य होता है। विशेषण क आगे कहा हुआ ‘एव’ शब्द वर्तमान काल के लिहाज से इस नगर के साथ आपका अयोग सुतरां सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार अत्यन्तायोग भी समझ लीजिये। इसी अभिप्राय से हमने उक्त वाक्य में ‘साम्प्रतम्’ पद का प्रयोग किया है। इन युक्तियों से हमारे कथित वाक्यों में ‘एवकार’ का प्रयोग सर्वथा युक्तियुक्त है।

हाँ, एक बात और है क्रमचार-यच्छेदा विपरने वाले गुरु आदि के विषय में यदि एव शब्द का कहीं प्रयोग किया जाय तो व्याकरण के नियम के अनुसार पूर्व अवयव का लोप होता है। जैसे “हे गुरु! इहेव तिष्ठ, अन्यत्रैव वा तिष्ठ” अर्थात् हे गुरुजी! यहाँ ठहरो, अन्यत्र ठहरो, वैसी आपकी इच्छा हो बैसा करो। गुरु आदि के सिवा अन्य लोगों के प्रति, “इहेव तिष्ठ मायासीः क्वापि” अर्थात् यहाँ ही ठहरो, अन्य जगह कहीं भी मत जाओ! ऐसा आज्ञा द्योतक वाक्य कहा जाता है। इन दोनों वाक्यों में एक जगह अवयव का लोप हुआ है और दूसरी जगह नहीं हुआ है, इस रहस्य को व्याकरण-शास्त्र क जानकार अच्छी तरह से समझ सकेंगे।

पुनः भीषुन्यजी ने हँसकर कहा—‘हमारे वाक्य में आने वाले “अत्रैव” नियोग सूचक पद स लो प्रतीत होता है कि आप हमारे ही नियोग से इतने बड़े परिवार के साथ यहाँ ठहरे हुए हैं।’ तिलक-प्रमाचार्य ने कहा—‘हम यहाँ आपके नियोग स नहीं ठहरे हैं, फिर भी आपने नियोगसूचक पद का प्रयोग किया है। इसलिए आपका ‘अत्रैव’ शब्द अपशब्द है।’ उत्तर में भीषुन्यजी ने कहा—‘प्रयोगों के अर्थ को बिना जाने ही अपशब्द कहना उचित नहीं है।’ तिलकप्रम०—‘आपके कथन मात्र स ही मेरे में अज्ञानता का आरोप नहीं हो सकता।’ भीषुन्यजी बोले—‘यह बात यों ही है।’ तिलकप्रमाचार्य ने कहा—‘तो फिर आप बतलाइयें, आपका यह ‘एव’ शब्द किस अर्थ में है।’ भीषुन्यजी बोले—‘जैसे तो ‘एव’ शब्द के अनेक अर्थ हैं, परन्तु पहले हम इसको एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ बतलाते हैं। आप बरा साबधान होकर सुनिये, जैसे “वचनमेव वचनमात्रम्” इत्यादि प्रयोग में स्वार्थ में ही ‘एव’ शब्द प्रयुक्त है। इसी प्रकार हमारे वाक्य में भी समझिये। अब दूसरा अर्थ सुनिये, अहाँ वहाँ संभावना अर्थ में ‘अपि’ शब्द का प्रयोग किया हुआ देखा जाता है, जैसे ही यह ‘एव’ शब्द भी संभावना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जैसे हरिमप्रधरि क वाक्यों में “बपुरेव तत्राच्ये मगबन्। बीतरागताम्।” अर्थात् मगबन्। आपका शरीर ही बीतरागता का परिचय दे रहा है। और मी-

यत्र तत्रैव गत्वाहं भरिव्ये स्वोदरं युधा ।

मा विना यूयमत्रैव भविष्यथ तृणोपमाः ॥

[ हे पंडितों ! मैं वहाँ नहीं जाकर अपना पेट भर लूँगा ) परन्तु आप लोग मेरे बिना एक क्षण्य समयके आभोग । ] इसी प्रकार एकदम मैं आप किसी प्रकार अर्घ्य-सम्बन्धी आपसि नहीं कर सकते । इसके अतिरिक्त प्रश्न करते समय प्रश्नकर्ता सावधारण वाक्य बोले या निरवधारण वाक्य बोले, यह उसकी इच्छा पर निर्भर है । उसके बचन में कोई ऊहापोह नहीं किया जाता, यह लौकिक मर्यादा है । प्रश्नकर्ता अनजान है इसलिये पूछता है । हाँ, वही मनुष्य परिचय प्राप्त करने के बाद यदि अन्य समय में सावधारण ( निश्चयात्मक ) बचन बोले, तो उसके बचन में शक्ति का दोष दर्शाने की कोशिश करनी चाहिये । ऐसा करने से समाप्तोक्त की बड़ी शोभा होगी । कन्तु इस शिष्टमनों की रीति को भूल कर आपने अपनी पंडितार्थ का उत्कर्ष दिखाने के लिये प्रश्न किया है । इस बात को हम मंजी भाँति समझ गये ।

इस प्रकार भीजिनपतिहरिजी के मुख से 'एवकार' शब्द के विषय में सैंकड़ों उच्च सुनकर गुणव्राही तिलकप्रसाधार्यजी प्रसन्नित मन से कहन लगे—'आचार्यजी ! आप समस्त गुवराव व सिंहा की तरह निबर होकर बिभरे । आपके सम्मुख प्रतिपद्य रूप से कोई नहीं उबर सकेगा । मैं आपका प्रभाव को अच्छी तरह से जान लिया है ।' इस शुभ बचन को सुनकर महाराज के पास में बैठे हुए एक मुनि ने अपने कपड़े की खूँट में शङ्खन प्रन्धी बाँधी । अपने या अपने प्यार के सम्बन्ध में कोई शुभ सम्वाद सुनकर कपड़े में गँठ लगाने की प्रथा अब भी मारवाड़ में प्रचलित है ।

इस पंडितगोष्ठी से तिलकप्रसाधरि को अमृतपूर्व आनन्द हुआ । अतएव धीपूज्यजी की अधिकारिक प्रशंसा करते हुए वे अपने उपाध्य को चल गये ।

१७ इसके बाद सब वहाँ से चलकर आशापद्धी पहुँचा । वहाँ पर सेठ चेमेश्वर साधु ने में स्थित अपने पुत्र प्रद्युम्नाचार्य को बन्दना करने के लिये बाड़ी देवाचार्य की पौपशाला में गये । बन्दना प्यवहार क बाद प्रद्युम्नाचार्य ने कुशलवाचा के बहाने सेठ क माय बार्तालाप करते हुये कहा—'सेठजी ! बादसम्भि द्वारा अगस्त्य विख्यात भीतवाचार्य प्रदर्शित, पितृपरम्परागत मार्ग को छोड़कर आप कुमार्ग में लग गये; इसका क्या कारण है ?' उच्च में सेठ चेमेश्वर ने कहा—'मैं आपको मस्तक से बन्दन करता हुआ निवेदन करता हूँ कि मैंने जो अपनी ओर से किया वह अच्छा किया है । हरतरगण्ड्य में सब विद्याओं के पारंगत सिद्धान्तानुयायी भीजिनपतिहरिजी को मैंने अपना गुरु माना है, यह कोई झूठी बात नहीं है ।' अरा गुस्से में आकर प्रद्युम्नाचार्य ने कहा—'मारवाड़ क रूठ मुष्क में अब लोगों को पाकर आपके गुरु सर्वज्ञ बन बैठे हैं तो ठीक है; वहाँ की वृष नहीं होता, वहाँ भ्रष्ट को भी वृष मान लिया जाता है । लेकिन हमारा मन तो इस बात को सोचकर दुःख पाता है कि परम गुरु भीदेवधरि क बचनानुसृत से पूछ आप लोगों की कर्तव्युत्तरी रूप मर स चीप गय हृदयचक्र में जो दिवकीर वैदा हुआ था उस पर जिनप्रबचन के विरुद्ध प्रत्यक्ष

करने में प्रवीण पूर्व लोगों के उपदेश का पाला पढ गया, यह महान् अनर्थ हुआ। खैर 'भीती ताहि विसारिये' के अनुसार अब भी आप हमसे मिल लिये यह अच्छा ही हुआ।' सेठ चेमवर ने कहा— 'आचार्य ! हमारे गुरु मारवाह को छोड़कर इस समय गुजरात में आपके पास नगारे के पीसे का साथ था पहुँचे हैं। यदि आप उनके सम्मुख हों तो आपको उनकी असलियत का पता लग जाय।' नकली हँसी हँसते हुये प्रधुञ्जाचार्य ने कहा, 'सेठ शास्त्रार्थ में अपनी प्रकृष्टता को स्थिर करने के लिये आप अपने गुरु को शीघ्र तैयार करें, हम तैयार हैं।' अपने पुत्र प्रधुञ्जाचार्य को महाराज से प्रतिबोध मिल जाय तो अच्छा है, इस अभिप्राय से महाराज के पास आकर सेठ चेमवर कहने लगा— 'महाराज ! आप मेरे पुत्र प्रधुञ्जाचार्य को आपतन-अनापतन सम्बन्धी विषय को समझकर अपना शिष्य बनालें। मैं अभी पौषशास्त्रा में उसको बन्दना करने के लिये गया था, वह इस विषय में परामर्श करने के लिये तैयार—ना दीखता है।' सुनकर पून्यजी ने कहा— 'सेठ ! बहुत अच्छा, ऐसा करने को हम तैयार हैं।' इस शास्त्रार्थ की तैयारी को देखकर महाराजली गोश्राय समय, बाह्य गोत्रीय उद्धारण आदि सब के प्रधान पुरुषों ने परस्पर में सलाह करके महाराज से कहा— 'महाराज ! मिस प्रयोजन की लेफर आये हैं, पहले उसे करना चाहिये और बाद-विवाद आदि परचात करने योग्य है।' सेठ चेमवर ने भी इसे ठीक समझा। श्रीपूज्यजी ने कहा— 'जैसा आप लोग उचित समझें, हम वैसा करने को तैयार हैं।' चेमवर सेठ ने प्रधुञ्जाचार्य के पास आकर कह दिया, 'आचार्य ! इस समय सारा संघ उत्कटावश तीर्थ-बन्दना के लिये उठावला है; अतः जाने की जन्दी है। लौटव समय हमारे आचार्यभी आपके साथ आपतन-अनापतन सम्बन्धी विचार अवश्य करेंगे।' प्रधुञ्जाचार्य ने इस बात को स्वीकार करते हुए कहा कि, 'दखो, लौटवी पक इस स्थान से बचकर मत निकल जाना।'

वहाँ से प्रस्थान करके सारा संघ स्वस्मनक ( छम्भात ) उजयन्त ( गिरिनार ) आदि तीर्थों में जाकर ठहरा, वहाँ पर महाद्रव्यस्तव एवं महाभाषस्तव से तीर्थ-बन्दना तथा पूजा की गई। इससे आगे मार्ग को गढ़बड़ी के करब सप शत्रुभय तीर्थ में नहीं जा सका।

४८ अब संघ लौटकर आने लगा, तब सप के कई एक मनुष्य कीतुकश सप का पहुँचने के पहले ही आसापल्ली नगरी में आ पहुँचे। वहाँ पर श्रीपूज्यजी के अनन्य-मक्त लोग किमी एक स्थानीय बनिये की दुकान पर बैठ गये। उन लोगों से दुष्मनदार बनिये ने पूछा, 'संघ के साथ कोई आचार्य भी हैं ?' उन लोगों ने कहा— 'हाँ हैं।' पुनः दुष्मनदार कहने लगा, 'हाँ परा-मंडल पर आचार्य अनक हैं, परन्तु भरत क्षेत्र में प्रधुञ्जाचार्य का समान तो कोई नहीं है।' इस बात को सुनकर उन लोगों को बड़ी हँसी और बोलते कि, 'सठजी ! यह आपन बहुत सच कहा। मासूम होता है, आपके समान भी संसार में कोश नहीं है। आचार्य के समान तो —



होता ही कहाँ से। हाँ, इस बात को हम भी मानते हैं कि जो प्रद्युम्नाचार्य से गुप्तों में प्रवेश  
वे मन्त्रा प्रद्युम्नाचार्य के समान कैद हो सकते हैं।'

सब आशापक्षी वासियों को सूचना मिली कि भीरस्य नगर के समीप पहुँच गया, जहाँ  
एक नाम के नगर क्षेत्रवास के तत्त्वावधान में स्थानीय लोगों का एक बड़ा सङ्घाटन सच का  
खाने के लिये समूह पहुँचा। बड़े समागोह के साथ नगर-प्रवेश कराकर सच को योग्य-योग्य स्थान  
में ठहराया गया। भीरुज्यवी को स्वच्छ सुन्दर स्थान रहने के लिये दिया गया। वहाँ आचार्यजी का  
मुनि पदसह क साथ ठहरे।

सेठ चेमबर भीरुज्यवी की आज्ञा लकर प्रद्युम्नाचार्य की बन्दना करने के लिये उल्लूक  
गया। आचार्य ने सेठजी से चार्ज-बन्दन सम्बन्धी बातें पूछीं और उनका प्रति जवाब देकर  
पूर्व प्रविष्टा को यह दिशावत हुए कहा कि, 'सेठजी आप अपना बचन पूरा गप।' उधर सेठजी  
ने कहा—'मैं मन्त्रा उस बात को कैसे पूरा सकता हूँ। उम प्रयोजन से तो यहाँ आना ही हुआ।'  
प्रद्युम्नाचार्य ने अपने मन में सोचा कि, 'इस अवसर से हमें लाभ उठाना चाहिये। सच में हमें  
एक सांसारिक बन्धु आये हुए हैं, शास्त्रार्थ क बहाने उन सच को हम प्रतिबोध दे सकेंगे।'  
इस प्रकार निश्चय करके सेठ चेमबर से कहने लगे—'सेठजी! तो आप विलम्ब किस बात करे?'  
सेठ ने कहा—'उठिये, अभी चलिये, देरी का क्या काम?' इस प्रकार सेठ चेमबर के साथ प्रद्यु-  
चार्य भीरुज्यवी के पास आया। साधु सप्रदाय के नियमाजुसार पढ़-कोठे क दिशावत ले  
ओ से बन्दनाजुबन्दन का व्यवहार प्रदर्शित किया गया।

खतरावाद भीरुज्यवी ने प्रद्युम्नाचार्य से पूछा कि—'आपन कौन-कौनस ग्रन्थ देखें हैं?'  
नई उम्र में स्वभावतः पैदा होने वाले अहंकार के अधीन होकर प्रद्युम्नाचार्य बोला कि—'सर्व  
ग्रन्थ में वर्तमान सभी ग्रन्थ हमने देखे हैं।' इस अहंकार भर वाक्य को सुनकर भीरुज्यवी ने  
विचार कि, 'यदि हम इसके सम्बन्धों में पहले ही पहले तुलनाधीनी करेंगे तो, पर ज्ञान-  
हाकर कुछ का कुछ बोलने लग जायगा। ऐसा होने से इसके शास्त्रीय ज्ञान का स्वरूप भी  
जायगा।' अतः भीरुज्यवी ने कहा—'आप अपने अध्यस्त शास्त्रों का नाम तो बतायें।' उन्हे  
कहा, 'हम व्याकरण आदि लक्ष्य शास्त्र, माधकर्म्य आदि महाकर्म्य, काव्यज्योतिष आदि कर्म्य, कर्म  
कर्मि द्वारा प्रणीत नाटक्यदि, जयदेवचरित गणित कन्दोद्यान्य, कन्दोली, किरावाली आदि  
आदि सर्व, काव्यप्रकाशदि अन्तःकार और सभी सिद्धान्त ग्रन्थ हमने आज्ञापूर्वक देखे हैं।'

भीरुज्यवी मन ही मन कहने लगे—'इसने तो कुछ गाल बजाये। इसका शास्त्रीय ज्ञान  
है कि नहीं? जरा जांच तो करें।' भीरुज्यवी ने पूछा—'आचार्य! सच क क्या लक्षण है?'

कितने मेद हैं ।' प्रद्युम्नाचार्य काव्यप्रकाश के अनुसार लक्ष्य के स्वरूप और भेदों का विवेचन करने लगा । तब श्रीपूज्यजी ने बिचारा कि यदि हम बीच में ही इसे रोकें-टोकेंगे, तो यह इसी पर अड़ बायगा । आयतन-अनायतन बिपपक चर्चा नहीं हो सकेगी । इसलिये इसे बेरोक-टोक बोलने दिया जाय; जिससे यह अड़कार की चरम सीमा तक पहुँच जाय । इसलिए श्रीपूज्यजी ने ऐसा कोई बचन नहीं कहा, जिससे उसका मन स्थान हो ।

प्रद्युम्नाचार्य ने काफी देर तक अपनी गल-गर्भना करके भीपूज्यजी से प्रश्न किया कि, 'आचार्य ! अनायतन किस सिद्धान्त-ग्रन्थ में कहा है ? आप व्यर्थ ही मोले-मासे लोगों को इस प्रकार बहका रहे हैं ।' श्रीपूज्यजी ने जवाब दिया, 'वशावैकालिक, ओपनिर्मुक्ति, पंचकल्प, व्यवहार आदि सिद्धान्त ग्रन्थों में अनायतन बिपपक विवेचन ठीक ठौर से किया गया है ।' प्रद्युम्नाचार्य बोले कि, 'महाबन् ! गाढ़ अम्यास क करण सम्पूर्ण ओपनिर्मुक्ति तुम्हें अपने नाम की तरह अनुभूत है । मैं दास्ये के साथ कह सकता हूँ कि उसमें अनायतन सम्बन्धी कोई चर्चा नहीं है ।' स्वाव में भीपूज्य जी ने कहा, 'आचार्य ! दूर रहने दीजिये अन्य सिद्धान्तों को, यदि हम किसी तरह 'ओपनिर्मुक्ति' से आपको यह सिद्ध कराएँ कि वेनगृह और जिनप्रतिमा आयतन नहीं है, तब तो आप हमारी वीत हुई मानोगे ?' उधर में उन्होंने कहा, 'हां, यह बात हमें मंजूर है । परन्तु आज तो देर बहुत हो गई है, बार्तालाप का समय कल प्रातःकाल का निश्चित रखिये । भीपूज्यजी ने कहा— 'ज्या हर्ष है, ऐसा सही ।' प्रद्युम्नाचार्य चेमबर को साथ लेकर अपनी पौपचशाला में चले गये । वहाँ पर सेठ रासल के पिता सेठ चरबेश्वर ने जिनपतिस्वरिजी के पैर में फोड़े पर बँधी हुई पाटी को लप्य कर ध्यङ्ग बचन कहा कि, 'आपके गुरुजी के पैर में बँचे हुए पीरकटक का प्रमाथ कल सुबह मालूम होगा ।' इस बात को सुनकर क्रोधवश शाल नेत्र होकर सेठ चेमबर ने कहा, 'रे लम्पट ! समाज में प्रतिष्ठित बने बैठे तुम्ह जैसे से तो भीपूज्य के पैर में बँचे हुए पीरकटक की कहीं अधिक शक्त है ।'

इस तू-तू मैं-मैं को शान्त करते हुए प्रद्युम्नाचार्य ने कहा— 'तुम्हें करण को लेकर आप छोड़ो का कलह करना अच्छा नहीं है । प्रातःकाल सबके लिये अच्छा होगा और सभी के मान-प्रमाथ जाने आयगे ।' बंदना करके इसके बाद चेमबर सेठ भीपूज्यजी क पास आ गया । वहाँ पर—

यदपसरति मेघः कारयां तत् प्रहर्तुं, मृगपतिरपि कोपात् संकुचस्युस्पतिष्णुः ।  
हृदयनिहितवैरा गृधमन्त्रोपचाराः, किमपि विगणयन्तो धुद्धिमन्ताः सहन्ते ॥

[ जिसके हृदय-मन्दिर में विद्रोपाधि बसक रही हो, जिनकी गुप्त मंत्रया बुझें हो, ऐसे बुद्धिमान लोग भी अनुकूल समय की प्रतीक्षा में किसी शत्रुओं से किये जाने वाले दुर्घ्नबहार को

मी घुपचाप सह लेते हैं। लड़ाई में मेढ़े का पीछे की ओर हटना हार का चिन्ह नहीं है, किन्तु ओर से टकर देने के लिये है। सिंह का सिङ्कड़ना-कमजोरी एष भीरुता का चिन्ह नहीं है, किन्तु वह अपने शिकार पर ऊँची छलांग मारने के लिये सिङ्कड़ता है।]

धीर पुरुषों की मी यही नीति है। व प्रथम ही प्रथम दुरमन के साथ नम्रता से पेश आयेंगे। बाद में अपने पराक्रम का परिचय देंगे। प्रद्युम्नाचार्य के साथ चर्चा को प्रारम्भ करते हुए, श्री-पूज्यजी ने मी इसी आह्वार को अपनाया था। परन्तु स्पृष्ट बुद्धि के भावक लोग श्रीपूज्यजी के इस अभिप्राय को न मानते हुए कहने लगे, 'महाराज। प्रद्युम्नाचार्य ने अपने गाल फुला-फुलाकर बहुत कुछ कहा और उसके निकट आप कुछ भी नहीं बोले, यह कहाँ तक उचित है। बरा आप ही सोचें।' इसके उत्तर में महाराज कहने लगे, 'भावक लोगों। शान्त रहो धैर्य धारण करो, उठावले मत बनो। कहावत है "एक ही सपने में रात खत्म नहीं हुआ करती है।" इधर ये बातें हो रही थीं, उधर प्रद्युम्नाचार्य की तरफ का हाथ मुनिये—प्रद्युम्नाचार्य ने शास्त्रार्थ का रस-निमंत्रण स्वीकार तो कर लिया, परन्तु अब मानहानि का भय हुआ। प्रद्युम्नाचार्य ने अपने पक्ष के पंडितों को साथ लेकर 'भोषनिर्मुक्ति' और उसके व्याख्या ग्रन्थों को देख देने के लिये रातों-रात दीपक बलाया, परन्तु ओर परिभ्रम करने पर मी 'अनापत्तन के स्वरूप' को बतलाने वाला स्वस-प्रकरण उन्हें नहीं मिला। बड़ी निराशा हुई। आखिर उपायान्तर न देखकर पूछने के लिये श्रीपूज्यजी के पास अपने आह्वान को भेजा। श्रीपूज्यजी ने उनके प्रश्न के अनुसार स्थल बतला दिया। बतते हुए उद्देश के अनुसार अनापत्तन सम्बन्धी प्रसंग मिला गया। उस प्रकरण की व्याख्या और गाथाओं के भावार्थ को हृदयङ्गम करके प्रद्युम्नाचार्य शास्त्रार्थ के लिये उद्यत हो गये। प्रातःकाल होते ही हथरों नगरीक लोगों के साथ, अमयदह नामक शहर कोतवाल की देख रेख में दूर-दूर से घुसाये हुये अनेक आचार्यों को लिए हुए प्रद्युम्नाचार्य श्रीपूज्यजी के निवास स्थान पर पहुँचे। श्रीपूज्यजी उस समय मकान के ऊपरी भाग में थे। ये लोग बन्दनादि शिष्टाचार का परिपालन बिना किये हुए मकान के नीचे भाग में ही आकर बैठ गये। श्रीभिनपतिहरिजी मी इनके आगमन की सूचना मिलने पर अपने परिवार के साथ नीचे आये। महाराज की वैयावक्त (सेवा) करने वाले बिनगरगण्ड्य ने उन लोगों की कम्पत्त्रिया देखकर कहा, 'भगवन्! आपका आसन कहाँ निकलू ? तीन तरफ का बिस्ता इन लोगों ने रोक लिया है।' श्रीपूज्यजी ने कहा—'यदि और कोई बैठने के योग्य बगह नहीं है तो यहाँ निकल दो।' शिष्य ने कहा—'महाराज! यहाँ बैठने से योगिनी सन्मुख पड़ती है।' श्रीपूज्यजी ने कहा—'श्रीभिनपतिहरिजी महाराज सब मत्ता करेंगे।' ऐसा कहकर महाराज उसी स्थान पर विराज गये।

उस समय मरी समा में सेठ चेमन्वर, और बाहिर गोत्रीय उदरव्य आदि ने लड़े हो, हाथ जोधकर आचार्यजी से किनती की कि, 'यह बड़े-बड़े आचार्यों का सम्मेलन आज अनेक दिनों में हमें देखने

को मिला है, इसलिये यदि आप लोग संस्कृत भाषा में बोलें तो, हमारे कानों को बड़ा सुहावना लगेगा । श्रीपुन्यजी ने कहा—‘हाँ, इसमें क्या पुरा है ? परन्तु यह बात आप प्रद्युम्नाचार्य से भी स्वीकार करवा लें ।’ आपको न प्रद्युम्नाचार्य स प्रार्थना की—‘मगधन् । सुनते हैं कि देवता लोग परस्पर में सदैव संस्कृत भाषा ही बोलते हैं । परन्तु देवदर्शन हमें दुर्लभ है और संस्कृत सुनने का हम लोगों को बड़ा चाव है । इसलिये आप लोग हमारे ऊपर परम अनुग्रह करके संस्कृत भाषा बोलेंगे तो हमारी देवदर्शनेच्छा पूर्ण हो जायगी । वैसे भी आप दोनों आचार्यों ने अपना सुन्दरा कृति से देवताओं को मत कर दिया है ।’ इसपर प्रद्युम्नाचार्य ने कहा—‘धावक लोगों ! आप लोग संस्कृत भाषा समझ जायेंगे ?’ वे बोले—‘हाँ, महाराज ! आपका कहना युक्त ही है । मारवाड़ में पैदा होने वाले इतना भी नहीं जानते कि बेर की गोलाई ऊपर है, नीचे है या बाईं ओर है । महाराज ! कहाँ श्रीपुन्यजी, कहाँ आप और कहाँ हम लोग । आज यह आप लोगों का शुभ संयोग हमारे माध्य से ही हो गया है । आप लोगों के शुभ संभाषण से यदि हम लोगों के कानों को सुख मिले तो यह बड़े सन्तोष की बात होगी । इस तरह फेदु लीम समागम के होने की आगे बहुत कम सम्भावना है ।’ आपको का इस प्रकार अत्यधिक अनुरोध देखकर प्रद्युम्नाचार्य ने कहा—‘बहुत अच्छा, आप लोग कहते हैं, वैसा ही करेंगे ।’

प्रद्युम्नाचार्य अपने साथ दवात, कलम, पुट्टा आदि लिखने का साधन लाये थे । उसे देखकर श्रीपुन्यजी ने कहा—‘इनका क्या बनेगा ?’ प्रद्युम्नाचार्य ने कहा—‘संस्कृत भाषा बोलते समय यदि कोई अपरशब्द निकल जाय तो उसको सिद्ध करने के लिये इन साधनों की आवश्यकता पड़ेगी ।’ श्रीपुन्य०—‘वो पुरुष ब्रह्मानी शब्द—सिद्धि करन में असमर्थ है और जो पिता लिखे सुने हुए अपरशब्दों को हृदय में याद नहीं रख सकता, उसे संस्कृत भाषा में बोलने का क्या अधिकार है ? वह पुरुष अपने प्रतिवादियों को धीठने की इच्छा कैसे रख सकता है ? इसलिये कृपया आप अपने इस उपकरण को अलग फेंकिये ।’ महाराज के कहने से प्रद्युम्नाचार्य ने वे चोमें अलग रख दीं । अब नैपायिक पद्धति से ‘अनायतन’ विषय को लेकर दोनों आचार्य संस्कृत भाषा में खडन संवत्समक मापक करने लगे । उस समय खेन—शास्त्रों में बर्णित मरुदेश और बाहुबलि क युद्ध की तरह उन दोनों आचार्यों का बाग्युद्ध देखने योग्य था । प्रद्युम्नाचार्य के तात्कालिक शास्त्रार्थ की रीति, युक्ति, प्रमाथ देखने की जिन्हें इच्छा हो वे सखन प्रद्युम्नाचार्य छुट “वादस्पल” नामक ग्रन्थ को देखें । इसी तरह जिनको श्रीजिनपतिव्रति के अगाध पंडित्य का रसास्वाद लेना हो वे महाजुमाव आचार्यभी की रची हुई “वादस्पल” पुस्तक का अवलोकन करें । उससे विदित होगा कि महाराज ने किस प्रकार प्रद्युम्नाचार्य के बचनों का निराकरण करके सब लोगों के सामने खरखरगण्य के मन्त्रियों की पुष्टि की है । इन दोनों ग्रन्थों के देखने से विद्वान् पाठकों को अपूर्व आनन्द प्राप्त होगा । शास्त्रार्थ के समाम विषय को हमने इसलिये नहीं लिखा है कि लिखने से पुस्तक का आकार—अकार

बहुत बड़ बापगा तथापि भावकों के मनोरञ्जन के लिये शास्त्रार्थ सम्बन्धी कुछ परिमित बातें लिखी जाती हैं और ये बातें पाठकों के लिये उपयोगी भी सिद्ध होंगी; ऐसी आशा है। यदि सारा बहसक लिखा जाता तो हम समझते हैं उस अटिल एवं कठिन विषय का सारांश साधारण पाठकों के समक्ष में आना ही कठिन था।

प्रधुम्नाचार्य ने कहा—‘जिस देवगृह में मोक्षार्थी साधु निवास करते हैं, आपके कन्यानुसर का अनापतन ही सही, परन्तु बाहर रहते हुए साधु लोग जिस देवगृह की “सारा” (संमत्त) करते हैं, उसे आप क्या कहेंगे ?’ श्रीपूज्यजी उनका यह कथन सुनकर खूब हँसे और बोले, ‘आचार्य ! आपने अपने वक्तव्य में “सारा” शब्द का प्रयोग किया है। इस शब्द का संस्कृत भाषा में प्रयोग करते हुये अनेक वर्तमान—कालवर्ती शास्त्र ज्ञान का परिषय अच्छी तरह दे दिया।’ उसने कहा—‘क्या सारा शब्द नहीं है।’ श्रीपूज्य०—‘हाँ, नहीं है।’ प्रधुम्नाचार्य—‘सब लोगों में प्रसिद्ध ‘सारा’ शब्द को आप केवल अपने कथन मात्र से ही अप्रस्थापित नहीं कर सकते।’ श्रीपूज्य०—‘लोगों से आपका मतलब इतना बताने वाले, गोपालन करने वाले लोगों से है अपना व्याकरणदि विद्याओं के पारंगत पंडित-गणों से ? यदि आप कहें कि मेरा अभिप्राय इसबाह्यकादि से है, तो कहना पड़गा कि संस्कृत भाषा के बीच में इसबाह्यकादि की भाषा बोलते हुए आप पंडितों की समा में अपने आपका गौरव करते हैं और यदि आप कहें कि ‘सारा’ शब्द के उच्चारण से मैं पंडितों का अनुकरण कर रहा हूँ, तो आप कृपया इसकी पुष्प-समर्पण के लिये किसी पंडित को साची रूप से उपस्थित करिये या किसी पंडित ने किसी पुस्तक में कहीं ‘सारा’ शब्द का प्रयोग किया हो तो हमें दिखाइयें।’

इस फटकार को सुनकर प्रधुम्नाचार्य आङ्गुल-भ्याङ्गुल हो गया और बोला—‘जैसे मारक-पातक इत्यादि शब्दों का प्रयोग है वैसे ही सारा शब्द का प्रयोग हमने किया है।’ श्रीपूज्यजी हँसकर बोले, ‘आचार्यजी ! आपने वर्तमान कालवर्ती शास्त्रों की बानधारी का बड़ा भ्रष्ट परिषय दिया है। अन्य हैं आप और अन्य है आपका शास्त्रज्ञान।’ प्रधुम्नाचार्य—‘अपनी कमवोरी का अनुभव करके कुछ-कुछ खिन्न होकर बोला, ‘सिद्धान्त-ग्रन्थों का विचार प्रारम्भ करके बीच में यह शब्द-शब्दों की विचारण क्यों शुरू करदी। आपका-अनापतन विषयक निर्याय करने के लिये प्रसन्न सिद्धान्त ग्रंथों को बाधना चाहिये।’ श्रीपूज्यजी ने कहा, ‘हाँ, ऐसा करिये।’ उसी समय प्रधुम्नाचार्य ने स्थापनिका रखदी और उसके ऊपर ओषधिनिर्यायिक सूत्र-हृत्वि पुस्तक और सब प्रकार के पानों पत्रों स मरी हुई कपसिका (बस्ता) रख दी। श्रीपूज्यजी ने कहा, ‘ग्रन्थों को पढ़कर बौन सुनायेगा ?’ कस्त-छिद्र से मरे हुए प्रधुम्नाचार्य ने कहा—‘मैं पढ़कर सुनाऊँगा।’ सरस हृदय वाले श्रीपूज्यजी ने विचारता कि, ‘क्या सोमवरा इसकी बुद्धि विचलित हो गई, जो यह हमारे सामने बाधक पद को स्वीकार करता हुआ अपने आपकी सधुता को भी ध्यान में नहीं लाता। और, इसकी मर्जी ?’ प्रधुम्नाचार्य निम्नलिखित गायार्थों को बोलने लगे—

नागास्त दंसगास्त य, चरगास्त तत्य होइ वाघाओ ।  
वज्जिज्ज वज्जभीरु, अगाययगावज्जउ खिप्प ॥  
जत्थ साहम्मिया वहवे भिन्नचित्ता अगारिया ।  
मूलगुणप्परिसेवी, अगाययगा तं विजाणाहि ॥  
जत्थ साहम्मिया वहवे, भिन्नचित्ता अगारिया ।  
उत्तरगुणपडिसेवी, अगाययगा तं विजाणाहि ॥  
जत्थ साहम्मिया वहवे, भिन्नचित्ता अगारिया ।  
खिगवेसपडिच्छन्ना, अगाययगा तं विजाणाहि ॥  
आययगा पि य बुद्धिहं, दब्बे भावे य होइ नायव्वं ।  
दव्वम्मि जिगाहराई, भावे मूलुत्तरगुणेषु ॥  
अत्थ साहम्मिया वहवे, भिन्नचित्ता वहुस्सुया ।  
चरित्तायारसंपन्ना आययगा तं विजाणाहि ॥  
सुंदरजगासंसग्गी, सीलदरिहं कुण्ड य सीलदहं ।  
जह मेरुगिरिखम्मा, तया पि कयापत्तगामुवेइ ॥

[ यहाँ पर रहने से ज्ञान, दर्शन और चारित्र का ब्यापार होता हो, उसे अनापत्तन कहते हैं, पापभीरु साधु उस स्थान को बहुत बन्दो छोड़ दे ।

यहाँ पर भिन्न चित्त वाले, अनर्थ मूलगुणों के विरोधी अनेक साधर्मों रहते हैं, उसे अनापत्तन बानों ।

यहाँ भिन्न-भिन्न चित्त वाले उत्तरगुणों के विरोधी बहुत से समान धर्म वाले रहते हैं, उसे भी अनापत्तन समझो ।

यहाँ पर भिन्न चित्त वाले, अनापारी केवल साधु के चिह्न और बेग को धारण करने वाले बहुत से समानधर्मा पुरुष रहते हैं, उसे अनापत्तन कहना चाहिये ।

द्रव्यापत्तन और मात्रापत्तन भेद से आयत्तन दो प्रकार का होता है । द्रव्य में जिनगुणों की गणना है, मूलगुणों और उत्तरगुणों सहित भिन्न चित्त वाले बहुभुज और वीत्याचार सम्पन्न बहुत से सद्वर्मा यहाँ रहते हैं उसे आयत्तन कहते हैं । इसी का नाम मात्रापत्तन भी है ।

अन्धे सदाचार सम्पन्न मनुष्यों का ससर्ग शील रहित मनुष्यों को भी शीलवान् बना देता है । जैसे स्वर्णाक्ष मरु नाम के पहाड़ में ऊगा हुआ पास भी सुवर्ण बन जाता है । ]

श्रीपूज्य द्वारा बसाई हुई इन गाथाओं को प्रद्युम्नाचार्य बाँचने लगे और पूज्यजी महाराज अस्वस्थित वासी से इनकी हाथों-हाथ ब्याख्या करने लगे । इसके बाद अपने भक्त की स्वाभामा क लिये विसर्गी बुद्धि में कण्ठ मरा हुआ है, ऐसे प्रद्युम्नाचार्य ने सबकी आँखों में धूल भँकते हुये उस प्रकरण को टाँसने के लिये एक साथ ही दो पन्नों को उलट दिया और अन्य गाथा-वृत्ति को बाँचने लगे ।

श्रीपूज्यजी के पास बैठ हुए अिनहितोपाभ्यास ने इस चालाकी को देखकर प्रद्युम्नाचार्य का हृत् पकड़कर कहा—‘आचार्य ! इन छोड़े हुए पिछले दो पन्नों को बाँचकर आगे बाँधिये ।’ चालाकी के पकड़े जाने से प्रद्युम्नाचार्य आङ्गुल-भ्याङ्गुल हो गये और यों ही आगे पीछे के पन्नों को उलटने लगे ।

इस अवसर पर ‘हेड़ाबदक’ उपाधि के धारक करने वाले भीमास बंशोत्पन्न वीरनाग नामक भावक ने मामा पदवी धारी अमयक नामक शहर के क्षेत्रवाल से कहा—‘मामा ! आपके नगर में क्या उसी पुराण को कौड़ किया जाता है, जो रात्रि में जोरी करे और दिन दहाड़े जोरी करने वाला यों ही छोड़ दिया जाता है ?’ इस बात को सुनकर कोतवाल चौंका और इधर-उधर देखता हुआ बोला, ‘हेड़ाबदक आप क्या कहते हैं ?’ वीरनाग बोला—‘मामा साहब देखिये, तुम्हारे गुरु प्रद्युम्नाचार्य ने चालाकी से दो पन्नों को क्षिया दिया ।’ इस बात को सुनकर बिड़े हुए अमयक नायक ने पमड़े की बेल द्वारा वीरनाग की पोठ पर आघात किया । इधर प्रद्युम्नाचार्य चालू प्रकरण को बाँचने लगे और पूर्ववत् पूज्यजी उलटते ब्याख्या करने लगे । मानों श्रीपूज्यजी के मान्य-बल से प्रेरित प्रद्युम्नाचार्य ने कहा, आचार्य ! इस रीति से तो देवगृह ही अनापठन होता है, प्रतिमा अनापठन नहीं समझी जाती और आप तो प्रतिमा को भी अनापठन बतलाते हैं ।’ श्रीपूज्यजी—‘हँसकर बोले, आप स्थिरता रखिये । इस समा के बोच आपने देवगृह अनापठन होता है, यह तो स्वीकार कर लिया । इससे हमारे सभी मनोरथ सिद्ध हो गये । देवगृह और प्रतिमा दोनों को ही आप अनापठन समझिये ? प्रद्युम्नाचार्य बोले—‘आपके कहने से समझें या इसमें कोई युक्ति भी है ?’ श्रीपूज्यजी बोले—‘युक्ति और प्रमास रहित बचन हलवाहकवि गैबार लोग ही बोलता करते हैं, हम नहीं बोलते ।’ उन्होंने कहा—‘तो वह कौन-सी युक्ति है ?’ श्रीपूज्यजी ने विचार कर कहा, ‘सुनिये—

एवमिणं उवगरणं धारेमाणो विहीड परिमुद्ध ।  
होइ गुणाणाययणं अविहि असुद्धे अणाययणं ॥

[ देवगृह में जो जिन प्रतिमा त्रिभि परिशुद्ध उपकरण को धारण करती है, वह गुणों का अनापतन समझी जाती है और जो प्रतिमा अविधिपूर्वक अशुद्ध उपकरण को धारण करती है, उसे अनापतन करते हैं । ]

श्रीपूज्यजी के मुख से इस गाथा की व्याख्या सुनकर प्रद्युम्नाचार्य उदास हो मौन धारण करके चुपचाप बैठ गये । इसके बाद सेठ चेमचर ने हाथ जोड़कर प्रद्युम्नाचार्य से पूछा कि, 'जिन प्रतिमा अनापतन है या नहीं ?' प्रद्युम्नाचार्य ने कहा—'सेठजी इस गाथा के अर्थ से तो यही जाना जाता है कि जिनप्रतिमा भी अनापतन होती है ।'

दत्तचरचात् नेत्रों में आनन्दाभ्रु-धारण करते हुए सेठ चेमचर ने अपने मस्तक के केशों से प्रद्युम्नाचार्य के चरण पोंछे और पुत्र-स्नेह से बोला—'बस्स ! श्रीजिनदत्तद्वारिजी के मार्ग में लगे हुए मुझे इतन दिन हो गये, परन्तु मेरे मन में यह बात नहीं समी थी कि लाखों रुपये लगाकर जैसे तोरख बोला जो देवगृह बनाया जाता है, अविधि के कारण वह भी अनापतन हो सकता है ? आज तुम्हारे मुह से ऐसा देवगृह भी अनापतन हो सकता है यह बात सुनकर मुझको बड़ी खुशी हुई ।' प्रद्युम्नाचार्य ने कहा, 'सेठ चेमचर ! दूसरे सिद्धान्तों के प्रमाण दिखासाकर मैं यह सिद्ध करूँगा कि देवगृह अनापतन नहीं होता ।'

प्रद्युम्नाचार्य ने श्रीपूज्यजी से कहा कि—'आचार्यजी ! इमार नाम से अकित पराजय सम्भ-ची रासकाम्य और चौलाई बगैरह मत बनवाना और न किरी से पढ़वाना ।' इसके बाद श्रीपूज्यजी ने सेठ चेमचर की सभानी अपने सभ में यह घोषणा करवादी कि, 'जो हमारी आज्ञा मानता है, उसे चाहिये कि प्रद्युम्नाचार्य के पराजय सम्भ-ची अर्थ से पूर्ण रासकाम्य और चौलाई बगैरह न बनाये और न दूसरों को पढ़ावे । प्रेमार्द्र-हृदय से आँखों में अश्रु लाकर सेठ चेमचर ने कहा—'बस्स ! मैंने तुम्हें बड़नाम करने के लिये यह बाद आरम्भ नहीं कराया है । मेरा अभिप्राय तो यह था कि विद्यापात्र, आचार्य पद प्राप्त मेरे पुत्र को प्रतिबोध दित्तवाकर युगप्रधान श्रीजिनपतिद्वारिजी का शिष्य बना दूँ । पिता पुत्र में जबकि इस प्रकार की बातें हो रही थीं उसी समय अति प्रसुद्धित हुए भावकों के साथ अमपद दंडनायक व्र हाथ पकड़कर श्रीपूज्यजी वहाँ से उठकर मकान के ऊपर वाले तले में चले गये । अन्यान्य नागरिक लोगों के साथ अमपद दण्डनायक बन्दना करके नीचे आ गया । प्रद्युम्नाचार्य मानसिक परिताप के कारण स्थान मुख हुए, समाज्य पृथ्वी की ओर देखते हुए सेठ चेमचर के साथ अपनी पीठपशाला में चले गये । वहाँ एकत्रित हुए अन्य तमाम कौतुहल-प्रेमी लोग भी अपने-अपने घरों को गये ।

३६ अपने गृह प्रद्युम्नाचार्य के मानसिक कष्ट को देखकर दंडनायक अमपद का बड़ा दुःख हुआ, इसी कारण सारे नगर में शून्यता का गई और इसके विपरीत मंत्र में अति —



हुआ। मा० संभव, वैद्य सहाय ठ० हरिपाल, सेठ सेमंघर, बाहिरिक उद्धार और सठ सोमदेव आदि प्रमुख लोगों की ओर से विजय के उपलक्ष्य में बड़े विस्तार के साथ एक महोत्सव मनाया गया।

अमरपट्ट दंडनायक ने सोचा कि, 'ये लोग आगे जाकर मरे गुरु की निन्दा करेंगे, इसलिये इन लोगों को किसी तरह यहाँ शिवा दे दी जाय तो बड़ा अच्छा हो।' ऐसा विचार कर अमरपट्ट दंडनायक ने मालवा देश में स्थित गुजर-कण्ठ के प्रतीहार जगदेव के पास विद्वान्ति पत्र सहित एक मनुष्य को भेजा। हमरे दिन सय को राजाज्ञा सुना दी गई कि—“महाराजाधिराज भीमीमदेव का हुकम है कि आप लोग हमारी आज्ञा के बिना यहाँ से नहीं जा सकेंगे।” इतना ही नहीं सय की चौकसी के लिये गुठ रूप से एक सौ सैनिकों की गारद भी यहाँ डाल दी। सय के लोग डर कर अपने-अपने मन में नाना प्रकार की समावना करने लग गये।

अपने पक्ष की विजय देखकर हिसोरे सेते हुए परम आनन्द के बग होकर महशाली सेठ संभव भीषुन्यमी के पास आकर हण पूर्ण गद्गद बाणी से कहने लगा, “प्रमो! हम आपके परमम को मानते हैं। सिंह के बच्चे भी सिंह ही होत हैं न कि मृगाल। गुजरातियों में प्रायः कण्ठ बाहुष्य है, इसलिये इन क्राटियों के साथ शास्त्रार्थ करने में सफलता की भी विरला ही पाता है। मैंने आप को प्रथुज्ञाचार्य के साथ बाद् करने की अनुमति इसलिये ही तो नहीं दो थी कि—यदि इन क्राटियों के कूट प्रयोग से कदाचित् कोई निन्दा हो जायगी तो फिर लोगों के सामने ऊँचा मस्तक करके बोल नहीं सकेंगे। परन्तु महाराज! आपने सा बड़ा ही अच्छा किया कि गुजरात प्रान्त में समस्त आचार्यों के सुकृन्मृत प्रथुज्ञाचार्य को सब लोगों के सामने हराकर, उसकी बोलती बन्द करके दूत लड्डे कर दिये। महाराज! आपके इस चरित्र से खरतरगन्धर्व को अपार हर्ष हुआ। और आपके सुभास्यन्दी मापस को सुनकर भीषिनदक्षधरिजी महाराज के मापस से मिलने वाले अमृतपान की अभिलाषा को हम लोग भूल गये। प्रमो! आपके पैरु को देखकर भगवती शासनदेवता आंख भी आपकी सहायता के लिये तैयार हैं। मृगन्तु! आपकी इस प्रकार की जालन्धि को देखकर भगवती सरस्वती बर्तते हैं कि आज मेरी कृपावश से कलकली हो गई। पूनपार! आपका अपूर्व साहस देखकर इन्द्र आदि देव भी आपको मुँह मोंगा कर देने को तैयार हैं।” इस प्रकार महशाली ने महाराज की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इसके बाद भीमालक्ष्य भूषण वैद्य सहाय, सेठ सखमीधर, ठाकुर हरिपाल, सेठ सेमंघर, बाहिरिक उद्धार आदि सब-प्रधान पुरुषों ने महाराजकी को पास आकर अमरपट्ट दंडनायक का हुए अभिप्राय कहा। महाराज ने सब सोचकर अन्त दिया कि, 'भावक महाजुभावों! आप लोग किसी

प्रकार से मन में परिताप न करें; भीजिनदचहरिजी महाराज की शरण रूपा से सभ सभा होगा ।' अब आप लोगों के प्रति मेरा आदेश यह है कि, 'भीपार्श्वनाथ मगधान की आराधना करने के लिये स्नात, क्षपोत्सर्ग आदि धार्मिक कृत्य करने के लिये उत्पत्त हो जायें ।' भीपून्यजी के उपदेश से सारा ही सभ चर्म चर्म में उत्पत्त हो गया । पूजा, भर्म—प्यान करते—करते चौदह दिन भीत गये । परन्तु फिर भी वहाँ से सभ के निकलने का कोई उपाय नहीं दृष्ट पड़ा । तब सभ के लोगों ने यह मन्त्रणा की कि अपने साथ की दो सौ ऊँठनी अपने को सैपार कर लेनी चारिये । प्रातःकाल होते ही इनको लेकर एसा साहस करेंगे; जिससे लोग अपने-अपने स्थानों पर पहुँच जायें ।

अमपड़ दंडनायक के भेजे हुए मनुष्य ने वहाँ पहुँच कर सेनापति बगदेव परिहार की सभ में हाजिर हुआ और अपने भेजने वाले मालिक का संदेश करते हुए यह पत्र उनके शरणों में दे दिया । बगदेव की आज्ञा से उनका कर्मचारी ने पत्र को पढ़कर सुनाया । उसमें लिखा था कि— 'अपने देश में इस समय बड़े-बड़े धन सपन्न, मपादलक्षक देश का एक संघ आया हुआ है । यदि आपकी आज्ञा हो तो, सरकारी घोड़ों के लिये दाने का बन्दोबस्त कर दू ।' इस समाचार को सुनकर बगदेव आग बपूला हो गया और उसी क्षण अपने आज्ञाकारी क हाथ से एक आज्ञा पत्र लिखवाया । उस पत्र का आशय यह था कि— 'मैंने बड़े कष्ट से अजमेर के अधिपति भी पृथ्वीराज के साथ संधि की है । यह संघ अजमेर सपादलक्ष देश का है । इसलिये इस सभ के साथ छेड़-छाड़ बिलकुल भूल कर भी मत करना । यदि करोगे तो, याद रखना, बीते भी तुमको गधे की खास में खिला दूँगा ।' राजाज्ञा से अवाच मेमा गया । उस मनुष्य ने भी शीघ्र गति से पहुँचकर दंडनायक को पत्र दिया ।

आये हुए इस जबाब को पाकर अमपड़ की आज्ञासूताओं पर पाला पड़ गया । वह टंडा होगया और उसकी नानी मर गई । फलस्वरूप अमपड़ ने शीघ्र बाकर उन लोगों से चमा माँगते हुए बड़े आदर सम्मान के साथ संधि को वहाँ से बिदा किया । सभ वहाँ से चलकर अजमेर नगर पहुँचा । वहाँ पर भीपून्यजी ने अपने गच्छ के चालीस आचार्यों को इकट्ठा करके नाना प्रकार के वस्त्र दकर उनका सम्मान किया ।

६० इसके बाद आचार्यभी सभ के साथ लक्ष्मण खेटक नाम के नगर में गये । वहाँ पर पृथ्वीराजगण, मानचन्द्रगण, गुणमद्रगण आदि को क्रम से बाधनाचार्य की पदवी दी । इसके बाद पुष्करकी नाम की नगरी में बाकर स० १२४५ के फाल्गुन मास में धमदध, इन्द्रचन्द्र, सहदेव, सोमप्रम, धरप्रम, कीर्तिचन्द्र, भीमप्र, सिद्धसेन रामदेव और चन्द्रप्रम आदि मुनियों को तथा सपमभी, शान्तमति, रत्नमति आदि साधियों को दीया दी । स० १२४६ में भाषणन में भीमराजी

प्रतिमा की स्थापना की। सं० १२४७ और १२४८ में सख खेड़ा में रहकर मुनि जिनदित को उपाध्याय पद दिया। सं० १२४६ में पुना पुष्करिणी जाकर मलयचंद्र को दीक्षा दी। सं० १२५० में विक्रमपुर में जाकर साधु पद्मप्रम को आचार्य पद दिया और सर्वदेवदरि नाम से उनका नाम परिवर्तन किया। सं० १२५१ में वहाँ से मांडव्यपुर में जाकर सेठ सचमीधर आदि अनेक भावकों को बड़े ठाठ-बाट से माता पहनाई।

६१ वहाँ से अजमेर के लिये विहार किया। वहाँ पर मुसलमानों के उपद्रव के कारण दो मास बड़े कष्ट से बिताये। तदनन्तर पाटख आये और पाटख से भीमपट्टी जाकर चातुर्मास किया। इन्द्रियप ग्राम में जिनपालगण्डि को वाचनाचार्य पद दिया। रम्या भीकेश्वर की ओर से विशेष आग्रह होने के कारण पुनः सखखेड़ा जाकर 'दक्षिणार्ध अरात्रिकवतारखत' बड़ी भूमि नाम से मनाया। सं० १२५२ में पाटख जाकर जिनयानन्दगण्डि को दीक्षित किया। सं० १२५३ में प्रसिद्ध मंडारी नेमिचंद्र भावक को प्रतिबोध दिया। इसके बाद मुसलमानों द्वारा पाटख नगर का विध्वंस होने पर महाराज ने घाटी गाँव में जाकर चातुर्मास किया। सं० १२५४ में भीमारा नगरी में जाकर भीशान्तिनाथदेव के मंदिर में विधिमार्ग को प्रपलित किया। अपने तर्क सम्बन्धी परिष्कारों से महावीर नाम के दिग्म्बर को अतिरिक्त किया और वहाँ पर रत्नभी को दीक्षित किया। आगे चलकर यही महासती प्रवर्तिनी पद को आकर हुई। उत्तरवात् महाराज ने नागद्व नामक गाँव में चौमासा किया। सं० १२५६ की चैत्र बदि पंचमी के दिन नेमिचंद्र, देवचंद्र, परमकीर्ति और वेवेन्द्र नाम के पुत्रों को सखखेड़ा में व्रती बनाया। सं० १२५७ में भी शान्तिनाथदेव के विशाल मन्दिर की प्रतिष्ठा करनी थी, परन्तु प्रशस्तशक्त के अभाव में विलम्ब हो गया। इसलिये वही प्रतिष्ठित सं० १२५८ की चैत्र बदि ५ को की गई और विविपूर्वक मूर्ति स्थापना तथा शिखर-प्रतिष्ठित भी की गई। वहाँ पर चैत्र बदि २ के रोज वीरप्रम तथा देवकीर्ति नामक दो भावकों को साधु बनाया। सं० १२६० में आयाइ बदि ६ के दिवस वीरप्रमगण्डि और देवकीर्तिगण्डि को बड़ी दीक्षा दी गई और उनके साथ ही सुमतिगण्डि एवं पूर्वमद्रगण्डि को व्रत दिया गया तथा आनन्दी नाम की आर्मा को 'महचरा' का पद दिया।

तदनन्तर जेसलमेर के देवमंदिर में काम्युन सुदि जितोपा को भी पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा की स्थापना की। इस का उत्सव सेठ बगदर ने बड़े विस्तार के साथ किया। सं० १२६३ काम्युन बदि चातुर्मास को सखखेड़ा में मई० हुआकर कारित महावीर प्रतिमा की स्थापना की। उक्त स्थान में ही नरचन्द्र, रामचन्द्र, पूर्वचन्द्र और विवेकभी, भगवत्प्रति, कल्याणभी, जिनभी आदि साधु-साधिनियों को दीक्षा देकर परमदेवी को प्रवर्तिनी पद से भूषित किया। उसी अवसर पर वहाँ २० आसुस आदि पागड़ीय भावक समुदाय भीपूज्यबी की चरख बन्दना करने के लिये आ गया

वा। सब शस्त्रों में ही स० १२६५ में मुनिचन्द्र, मानचन्द्र, सुन्दरमति, और आसमति इन चार स्त्री-पुरुषों को मुनिव्रत में दीक्षित किया। स० १२६६ में विक्रमपुर में भावदेव, विनम्र तथा विजयचन्द्र को व्रती बनाया। गुणशील को वाचनाचार्य का पद दिया और ज्ञानभी को दीक्षा दत्त साध्वी बनाया। स० १२६६ में वाघाहीपुर में मह० कुचपर के द्वारा स्थापित की। श्रीविनपालगणिको उपाध्याय पद दिया। धर्मदेवी प्रवर्तिनी को महत्तरा पद देकर प्रभाकरी नामान्तर किया। इसके अतिरिक्त महेन्द्र, पुसपति, मानदेव, चन्द्रभी तथा केवलभी इन पाँचों को दीक्षा देकर 'विक्रमपुर' की ओर विहार कर गये।

६२ स० १२७० में बागड़ी लोगों की प्रार्थना स्वीकार करके 'बागड़' देश में गये। वहाँ बाहर दारिद्र्यरक नाम के नगर में सैकड़ों भावक-भाषिण्यों को सम्पत्त, मालारोपण, परिग्रह परिमात्र, दान, उपासन, उपापन आदि धार्मिक कार्यों में लगाया और बड़े विस्तार के साथ सत्य नन्दियाँ की। स० १२७१ में बृहदार में संसुखागत भी आसराज रायक आदि समाज के मुख्य-मुख्य लोगों के साथ ठाकुर विजयसिंह से विस्तार पूर्वक क्रिये जाने वाले उपापन में सामिन्ना हुये और पूर्ववत् नन्दियों की रचना करके उत्सव को सफल बनाया। वहाँ पर मिथ्यादृष्टियों की मिथ्या क्रिया को बंद कराया। इससे वहाँ के रहने वाले भावक वर्ग के हृदयों में अत्यधिक प्रमोद का संचार हुआ।

स० १२७३ में बृहदार में लोकप्रसिद्ध 'गंगादशहरा' पर्व पर गंगा-स्नान करने के लिये बहुत से रायकों के साथ नगरकोट के महाराजाधिराज भी पूज्यचन्द्र भी आये हुये थे। उनके साथ में मनोदानन्द नाम का एक कारमीरी पंडित रहता था। उस पंडित को विनयियोपाध्याय के शिष्य भीविनम्रद्वरि (विनवास) ने विनपतिशरिणी के साथ शास्त्रार्थ करने को उकसाया। पंडित मनोदानन्द ने कब्र में दिन के दूसरे पहर पीपचशाला के द्वार पर शास्त्रार्थ का पत्र चिपकाने के लिये अपने एक विद्यार्थी को भेजा। दिन के दूसरे पहर के समय उपाध्याय में आकर वह पत्र चिपकाने को तैयार हुआ। श्रीपूज्यजी के शिष्य धर्मरुचिगणिको ने विस्मय भरा होकर अलग से आकर उससे पूछा—'यहाँ तुम क्या कर रहे थे।' ब्राह्मण बालक ने निर्मय होकर उत्तर दिया कि, 'राजपंडित मनोदानन्दजी ने आपके गुरु श्री विनपतिशरिणी को लक्ष्य करके यह पत्र चिपकाने को दिया है।' उस विद्यार्थी की बात सुनकर ईसते हुए धर्मरुचिगणिको ने कहा—'र ब्राह्मण बालक। हमारा एक संदेश पंडितजी को कर देना कि—'पं० श्रीविनपतिशरिणी के शिष्य धर्मरुचिगणिको ने मेरी खबानी ब्रह्मसाया है कि पं० मनोदानन्दजी! यदि आप मेरा कहना मानें तो आप पीछ हट जायें तथा अपना पत्र वापिस ले लें, अन्यथा आपका दाँत तोड़ दिये जायेंगे। अभी न सही किन्तु बाद में आप

अबश्य ही मेरी सलाह का मूल्य समझेंगे।' उसी विद्यार्थी से पं० मनोदानन्द के विषय में जानन योग्य सारी बातें पूछकर उसे छोड़ दिया। धर्मरुचिगणि ने यह समस्त घटान्त भीपूज्यजी के आगे निवेदन किया। वहाँ पर उपस्थित ठ० विजय नामक भावक ने शास्त्रार्थ—यत्र सम्बन्धी बात सुनकर अपने नौकर को उस पत्र चिपकाने वाले विद्यार्थी क पीछे भेजा और कहा कि—'तुम इस लड़के के पीछे—पीछे जाकर नाच करो कि यह लड़का किस किस स्थान पर जाता है। हम तुम्हारे पीछे ही आ रहे हैं।' इस प्रकार आदेश पाकर वह नौकर उक्त कर्प का अनुसंधान करने के लिये लड़के के चरण चिन्नों को देखता हुआ चला गया।

अनेक पंडित प्रकांडों को शास्त्रार्थ में पकड़ाने वाल प्रगाढ विद्वान् यशस्वी श्रीजिनपतिधरिणी ने अपन आसन स उठकर अपने अनुयायी सुनिवरों को कहा कि, 'श्रीघ्न वस्त्र धारण करो और तैयार हो जाओ। स्वयं भी तैयार हो गये। शास्त्रार्थ करने को चलना है।' महाराज को जाने को तैयार हुए देखकर सुनि जिनपालोपाध्याय और ठ० विजय भावक कहने लगे, 'मगवन् ! यह मोहन का समय है, साधु लोग दूर से बिहर करके आये हैं। इसलिये आप पहले मोहन करें। बाद में वहाँ जायें।' उन लोगों क अनुरोध से महाराज मोहन करके उठे। श्रीजिनपालोपाध्यायजी ने महाराज के चरणों में वन्दना करके प्रार्थना की कि, 'प्रभो ! मनोदानन्द पंडित को सीठने के लिये आप मुझे भेजें। आपकी कृपा से मैं उसे हरा दूंगा। मगवन् ! प्रत्येक साधारण मनुष्य से आप यदि इस प्रकार वाद—प्रतिवाद करेंगे तो फिर हम लोगों को साथ लाने का क्या उपयोग है। उस मामूली पं० मनोदानन्द को हराने के लिये आप इतने व्यग्र क्यों हो गये हैं। कहा भी है—'

क्रेपादेकतलाघातनिपातमत्तदन्तिन ।

हरेर्हरियायुद्धेषु कियान् व्याघ्रेपविस्तर ॥

[अपने चरण की एक चपेट से मस्त हाथियों के मारने वाले सिंह को हरिणों के साथ युद्ध करने में कोई विरोध व्यग्र होने की वकूत नहीं है।]

राजनीति में भी पहले पैदल सेना का युद्ध करती है और वह सब—बिना विशारद सेनापति सहा करते हैं।

भीपूज्यजी ने कहा—'उपाध्यायजी। आप जो कहते हैं वह पचास है, किन्तु पंडित की योग्यता कैसी है यह मालूम नहीं।' उपाध्यायजी ने कहा—'पंडित कैसा भी क्यों न हो, सब व्यग्र आपकी कृपा से विजयसुखम है।' भीपूज्यजी ने कहा—'कोई हर्ष नहीं, हम भी कहते हैं, किन्तु तुम्हीं बोलना।' उपाध्यायजी ने कहा—'महाराज ! आपकी उपस्थिति में लज्जा बश मैं कुछ भी नहीं बोल सकूंगा। इसलिये आपकी परी विराजना अच्छा है।'

श्रीजिनपालोपाध्याय का विशेष आग्रह देखकर महाराजभी ने प्रसन्न मन से मन्त्रोच्चारण के साथ मस्तक पर हाथ रखकर धर्मरुचिगणि, वीरमद्भगणि, सुमतिगणि और ठाकुर विजयसिंह आदि भास्करों के साथ उपाध्यायजी को मनोदानन्द पंडित को भीतने के लिये भेज दिया। पंडित जिनपालोपाध्याय नगर को छोड़िये राजाधिराज भी पृथ्वीचन्द्र के समाभवन में अपने परिवार के साथ पहुँचे।

६३ उस समय वहाँ पर पूर्व बर्णित गंगा-यात्री राजा लोग भी महाराजाधिराज का कुशल भयस पूछने के लिये आये हुए थे। उपाध्यायजी ने सुन्दर श्लोकों द्वारा राजा पृथ्वीचन्द्र की समय-उत्कृष्ट प्रशंसा करके वहाँ पर बैठे हुए प० मनदानन्द को सम्बोधन करके कहा, 'पंडितरत्न ! आपने हमारी पौषधशास्त्रा के द्वार पर विज्ञापन-पत्र किसलिये लिपिकाया था।' उसने कहा, 'आप लोगों को भीतने के लिये।' उपाध्यायजी ने कहा, 'बहुत अच्छा, किसी एक विषय को लेकर पूर्व पण अङ्गीकार कीजिये।' पंडित—'आप लोग पद्दर्शनों से बहिर्भूत हैं। इस बात को मैं सिद्ध करूँगा, यही मेरा पक्ष है।' उपाध्याय—'इसे न्यायानुसार प्रमाथ सिद्ध करने के लिये अनुमान स्वरूप बौधिय।' पंडित—'विवादाध्यासिता दर्शनवाद्याः, प्रयुक्तवारविकलत्वात् श्लेच्छवत्' अर्थात् बाद-प्रतिवाद करने वाले जैन-साधु छहों दर्शनों से बहिष्कृत हैं, प्रयुक्त आचार में विकल होने से श्लेच्छों की तरह। श्री उपाध्याय हैंसकर बोले—'पंडितराज मनोदानन्द ! आपके कहे हुये इस अनुमान में कई दुष्प्रतिपत्ति दिलाया सकता हूँ।' पंडित—'हाँ, आप अपनी शक्ति के अनुसार दिखायें। परन्तु इसका भी ध्यान रहे कि उन सबका आपको समर्पण करना पड़ेगा।' उपाध्याय, 'पंडितराज ! सावधान होकर सुनिये—आपने कहा—'विवादाध्यासिता दर्शनवाद्याः, प्रयुक्ताचारविकलत्वात् श्लेच्छवत्'। आपके इस अनुमान में 'प्रयुक्ताचारविकलत्वात्' यह हेतु नहीं अनैकान्तिक हेतु है। आपका उद्देश्य हम लोगों में पद्दर्शन बाधता सिद्ध करने का है अर्थात् पद्दर्शनबाध साध्य है। परन्तु आपके लिये हुए हेतु से पद्दर्शनों के मीतर माने हुये बौद्ध, चार्वाक आदि भी विषय सिद्ध होते हैं। उनमें भी आपका हेतु चला जाता है—लागू होता है, क्योंकि वे भी आपके अभिमत वेद प्रयुक्त आचार से पराङ्मुख हैं। इसलिये अतिव्याप्ति नामक दोष अनिवार्य है और आपका दिया हुआ 'श्लेच्छवत्' यह दृष्टान्त भी साधनविकल है। आप श्लेच्छों में प्रयुक्त आचार की विकलता एक देश से मानते हैं या सर्वतोभावेन ? यदि कहीं एक देश स, तो भी ठीक नहीं, क्योंकि श्लेच्छ भी अपनी वांछि अनुसार कुछ न कुछ लोकधार का पालन करते हुये दिखाताई देते हैं। अन्य सभी लोकधार बेदोक्त हैं, इसलिये आपका कहा हुआ हेतु दृष्टान्त में नहीं पड़ता। यदि आप कहीं कि श्लेच्छों में सम्पूर्ण बेदोक्त आचार नहीं पाया जाता, इसलिये वे दर्शन बाध हैं, तो ऐसा कथन भी ठीक नहीं, क्योंकि फिर तो आप भी दर्शन बाध हैं। बेदोक्त सम्पूर्ण आचार व्यवहार का पालन आप भी नहीं करते

इस प्रकार तर्करीति से बोलत हुए उपाध्यायजी ने समा में स्थित तमाम लोगों को अपने में बाल दिया और अपने दोष दर्शाकर मनोदानन्द के प्राथमिक कथन को अभ्यवस्थित बतलाया।

इसके बाद मानी मनोदानन्द घुष्टता से अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिये अन्यान्य प्रमात्र उपस्थित करने लगा। परंतु उपाध्यायजी ने अपनी प्रचुर प्रतिभा के प्रभाव से राजा आदि समस्त लोगों के सामने असिद्ध, विरुद्ध, अनेकान्तिक आदि दोष दिखलाकर तमाम अनुमानों का खंडन करके पं० मनोदानन्द को पराजित कर दिया। इतना ही नहीं, उपाध्यायजी ने प्रधान अनुमान के द्वारा अपने आपको पठदरानाम्यन्तरवर्ती भी सिद्ध कर दिया। ऐसे वाक्यपटु जैन मुनि के समक्ष जब कोई उचर नहीं दे सके, तब अति लज्जित होकर पं० मनोदानन्द मन ही मन सोचने लगा कि—'यहाँ समा में बैठने वाले राजा रईस लोगों को जैसा चाहिये वैसे शास्त्रीय ज्ञान का अभाव है। इसीलिये वे लोग अपने सामने अधिक बोलते हुए किसी व्यक्ति को देखकर समझ बैठते हैं कि यह पुरुष बहुत अच्छा विद्वान् है। अतः इस भारणा के अनुसार मुझे भी कुछ बोलते रहना चाहिये। लोग जान भायेंगे कि पं० मनोदानन्द भी एक अच्छा बोलने वाला वाक्यपटु पुरुष है।' ऐसा सोचकर—

शब्दमह्य यदेकं यच्चैतन्यं च सर्वभूतानाम् ।

यत्परिणामस्त्रिभुवनमस्त्रिखमिदं जयति सा वाग्मी ॥

इत्यादि पुस्तकों से याद किया हुआ पाठ बोलने लगा। ऐसा देखकर भीमान् उपाध्यायजी ने बरा कीपावेश में आकर कहा—'अरे निर्दोषों के सरदार ! ऐसा यह असपद्ध क्यों बोल रहा है ! मैंने तुमको पददर्शनों से बहिर्भूत सिद्ध कर दिया है। प्रमाण और युक्तियों के बल से अगर तुम्हारी कोई शक्ति है तो पौष्यशाळा के द्वार पर बिपक्षये गये अपने शास्त्रार्थ-यज्ञ के समर्पन के लिये कुछ उपमात्र बोलो। पढ़ी हुई पुस्तकों के पाठ की आशुषि करने में तो हम भी समर्थ हैं। इसके बाद उपाध्यायजी की आज्ञा पाकर भर्मरुचिगणि, वीरप्रमगणि और सुमसिगण्य ये तीनों मुनि भीजिनबह्ममहारीजी महाराज की वतार्थ हुई वित्रकूटीय प्रशस्ति, सच पदक, चर्मशिवा आदि संस्कृत प्रकरकों का पाठ ऊँचे स्वर में करने लगे। इनको पाराप्रवाह रूप चढ़ाचढ़ संस्कृत पाठ का उच्चारण करते हुए देखकर वहाँ पर उपस्थित सभी राजा रईस लोग कहने लगे—'ओ हो ! ये तो सभी पंडित हैं।'

इस लामे हुए पंडित मनोदानन्द का मुख मस्तिन देखकर राजाधिराज पृथ्वीचन्द्र ने विचारा कि, हमारे पंडित मनोदानन्दजी की मुखच्छम्या फीकी है, अगर यह रामपंडित हम भायमा तो इतनिया में हमारी सज्जता सिद्ध होगी। इसलिये उपस्थित जनता के आगे दोनों की समानता सिद्ध

की बात तो अच्छा है।' मन में ऐसा निश्चय कर उपाध्यायजी की ओर लक्ष्य करके राजाजी रहने लगे, 'आप बड़े अच्छे महर्षि-महात्मा हैं।' जैसे ही मनोदानदजी की ओर मुख करके 'आप भी बड़े अच्छे पंडित हैं।'

भीष्मपुत्री राजा के मुँह से यह वचन सुनकर उपाध्यायजी ने विचारा कि, 'आज दिन से हम शास्त्रार्थ करने लगे थे, रात के तीन पहर बीत गये हैं। इस बीच हमने अनेक प्रमाण दिखलाये, अपनी दिमागी शक्ति खर्च की; लेकिन फल कुछ नहीं हुआ। हमने मनोदानन्द को परास्त करके उसकी अमान बन्द करदी, निरुत्तर बना दिया। फिर भी राजा साहब अपने पंडित के पदपात के कारण दोनों की समानता दर्शा रहे हैं। अस्तु, कुछ भी हो, हम अद्य-पत्र लिपे बिना इस स्थान से नहीं उठेंगे।'

उपाध्यायजी—'महाराज आप यह क्या कहते हैं, मैं कन्धा एव झट्टी ठोककर कहता हूँ कि सारे भारत खण्ड में मेरे सामने टिकने वाला कोई पंडित नहीं है। यह पंडित मनोदानन्द मेरे साथ व्याकरण, न्याय, साहित्य आदि किसी भी विषय में स्वतंत्रता से बोल सकता है। अगर इसकी शक्ति नहीं है, तो यह पौषपशाखा वाल पत्र को अपने हाथ से फाड़ डाले। अरे यक्षोपवीत को धारण करने वाले मनोदानन्द! भीजिनपतिस्त्रिबी महाराज के ऊपर पत्र चिपकाता है, तुम्हें मालूम नहीं, उन्होंने सब विद्याओं में दखल रखने वाले भीषण म्नाचार्य जैसे पंडितराजों की सब लोगों के सामने पूरा उड़बड़ी है।'

इस अवसर पर भीष्मपुत्री राजा ने उस शास्त्रार्थ-पत्र को लेकर फाड़ डाला। उपाध्यायजी ने कहा—'महाराज! इस पत्र को फाड़ने भर से ही मुझे सन्तोष नहीं होता।' राजा ने कहा—'आपको सन्तोष किम बात से हो सकता है?' उपाध्यायजी ने उत्तर दिया कि, 'इस सन्तोष अद्यपत्र मिलने से होगा। और राजन्! हमारे सम्प्रदाय में ऐसी व्यवस्था है कि जो कोई हमारे उपाध्य के द्वार पर पत्र चिपकाता है उसी पुरुष के हाथ से अद्यपत्र लिखवा कर उपाध्य के द्वार पर अद्यपत्र लगवाया जाता है। इसलिये आपसे निवदन है कि आप अपने न्यायाधीशों से सम्मति लेकर हमारी सम्प्रदायी व्यवस्था को सुरक्षित रखें।' पंडित मनोदानन्दजी की मुखन्ध्याया को मस्तिन हुई देखकर यद्यपि राजा को ऐसा करने में बड़ा मानसिक दुःख होता था, परन्तु समा में बैठने वाले न्याय विचार में प्रवीण प्रचान् पुद्गिमान् पुरुषों के अनुरोध से अपने स्वस्विकार के हाथ से अद्यपत्र लिखवाकर जिनपालोपाध्याय के हाथों में देना पड़ा। उपाध्यायजी ने इसके बदल में धर्मलाम अशीर्वादि आदि कहकर राजा की भूमि-भूमि प्रशंसा अनेक रत्नोंको द्वारा की। रात भर शास्त्रार्थ होते रहने के कारण प्रातःकाल वहाँ से उठकर राखणनि आदि द्वारा बर्षाई सत हुण तथा अद्यपत्र को स्थिर रूप सुनि-मंडली को साथ लेकर उपाध्यायजी भीष्मपुत्री के पास आये। भीष्मपुत्री ने अपने



शिष्य के द्वारा होने वाली जिनशासन की प्रमावना से बड़े हर्ष का अनुभव किया और बड़े आनन्द उत्पन्न के साथ जिनपालोपाध्याय को अपने पास बिठलाकर शास्त्रार्थ सम्बन्धी सारी बातें व्योक्त कर लीं। स १२७३ वेट वदि १३ के दिन श्री शान्तिनाथ भगवान के जन्म-कन्यात्वक के अवसर पर इस उपलक्ष में वहाँ के भाषकों ने एक वृद्ध व्योत्सव मनाया।

६४ वर्षों से सं० १२७४ में विहार करके आते हुए श्रीपूज्यजी ने मार्ग में भावदेव हर्मि को दीक्षा दी। सठ स्थिरदेव की आर्चना स्वीकार करके दारिद्र्य रक गाँव में पातुर्वास किया। वहाँ मो पक्षे की तरह नन्दी स्थापना की। स० १२७५ में बाबालिपुर आकर वेट वदि १२ के दिन सुवनश्रीपशिनी, अगमसि तथा मंगलश्री इन तीन साधियों की और विमलचन्द्रगणि पक्षे पक्षि इन साधुओं को दीक्षा दी। सं० १२७७ में पातशपुर आकर अनेक प्रकार की धर्मप्रमावनामें की। वहाँ पर महाराज क नामि के नीचे स्नान पर एक गाँठ पैदा हुई। उसकी वेदना सताने लगी और साथ-साथ सप्रहसा रोग भी पैदा हो गया। महाराज ने अपनी आयु शेष हुई जानकर चतुर्विंशसंघ की एकत्रित करके विभ्या-दुष्कृत दिया और सध को शिखा दी। 'आम लोग मनमें कोरें तरह से खेद न करें और यह भी नहीं समझें कि जो आचार्य जीते जो अनेक लोगों से शास्त्रार्थ करके धर्म प्रमावना करते रह हैं, अब उनके बिना काम कैसे चलेगा। हमारे पीछे सर्वदेवदरि, जिनहितोपाध्याय और जिनपालोपाध्याय आदि सब यथोचित उचर देने में समर्थ हैं। ये आप लोगों के मनोरथों को पूरा कर सकेंगे और इनके अतिरिक्त वाचनाचार्य हरप्रम, कीर्तिचन्द्र, वीरप्रमगणि तथा सुमतिगणि, ये चारों ही शिष्य महाप्रधान हैं। इनमें एक-एक का अपूव सामर्थ्य है, ये गिरत हुए आकाश को भी स्थिर रखने में समर्थ हैं। परन्तु अब हम अपने पाठ के योग्य बैठाने में से किसी को छांटते हैं, तो हमारे ध्यान में वीरप्रमगणि आता है। हमारे शरीर में इस समय बड़ी क्वाचि है। इसलिये यदि संघ बढ़े तो अभी हम उसे अपने पाठ पर बैठो दें। शोक और हर्ष दोनों का द्रव्य जिसके विष में मना हुआ है, ऐसे संघ ने भीपूज्यजी से निवेदन किया कि, 'महाराज! जैसे तो जो आपके समक में आता है, वही हमें मान्य है। परन्तु इस बक्त जन्तो में की हुई आचार्य पद की स्थापना, जैसी चाहिये वैसी शोभा क साथ नहीं हो सकेगी। इसलिये यदि आप की आज्ञा हो तो यहाँ के भीसध की और से मेरी हुई आमत्रस पत्रिकाओं की देखकर आये हुये समस्त देश वासों खरतरगण्यीय लोगों की उपस्थिति में बड़े आनन्द के साथ पाठ महोत्सव मनाकर वीरप्रमगणि को बड़े ठाठ-ठाट के साथ आचार्य पद पर स्थापित किया जाय।' भीपूज्यजी ने कहा—'जो कुछ कर्तव्य समुदाय के ध्यान में आये वही अच्छा है।' इसके बाद सब लोगों स धमत बामखा करके सब लोगों के विष में धमत्कार पैदा कर अनशन विधि के साथ भीजिनपतिदरिजी महाराज स्वर्ग को सिधार गये।

६५ खरतरपाठ पद्यि भीपूज्यजी के विपोग से होने वाले परम दुःख से संघ का अन्त करके किञ्चन्यविमुक्त सा हो गया था; परन्तु उनके पीछे होने वाले देह-संस्कार आदि कार्य को अस्था-

हरक समझकर एक सुन्दर विमान में भीपूज्यजी क शव की स्थापना करके उनक टाह मुँककर क लिए तैयारी की गई । स० १२७७ आपत हुआ दशमी को उष समय की प्रथा क अनुसार कर्ष को मुखदायक हृदय को द्रवित कर देने वाली मेघराग आदि रागिनियों को बाराहनाये पारही थीं । उसी प्रकार प्राणहारी मृत्युदेव को उपासम्म देने वाले और मो नाना प्रकार क गायन गये बरहे थे । अनेक प्रकार के कमलगङ्गा आदि वन फलों की उद्यान हो रही थी । शम्पादि पौष प्रकार के सुसुल अन्न के पीष ममस्त नागरिक लोगों के साथ अतुर्विष मंत्र के लोग महागात्र की अर्था को ले जा रह थे ।

इसी अवसर पर प्रधान माधुओं क साथ भीजिनदितोपाध्यायजी जायालीपुर स बदां आ पहुँचे । उन्होंने कलपीठ नाम के गाँव में ही महाराज की बीमारी क ममाचार चुन लिया । इसीक्षिपे वे बड़ी अन्दी से यहाँ आ पहुँचे । जिनदितोपाध्यायजी ने भीपूज्यजी की यह अवस्था दृष्ट कर शोक से बिह्वल हो उनके गुण-गणों को पाद कर निम्नलिखित १६ श्लोकों स इस प्रकार विज्ञाप करने लगे—

श्रीजिनशासनकाननसंवर्द्धिविलासलाससे वसता ।  
 हा श्रीजिनपतिसूरे !, किमेतदसमञ्जसमवेचे ? ॥१॥  
 जिनपतिसूरे ! भवता श्रीपृष्ठीराजन्वृपसदसरसि ।  
 पद्मप्रभासिबदने नाऽरमिव जयश्रिया सार्धम् ॥२॥  
 मथितप्रथितप्रतिवादिजातजलधे प्रभो ! समुद्धृत्य ।  
 श्रीसंघमन कुण्डे न्यधात् स्वमानन्दपीयूषम् ॥३॥  
 बुधबुद्धिचक्रवाकी पदतर्कासरिति तर्कचक्रेण ।  
 क्रीडति यथेच्छमुदिते जिनपतिसूरे ! त्वयि दिनेशे ॥४॥  
 तव दिव्यकाव्यदृष्टावेकविध सोमनस्यमुल्लसति ।  
 द्राक् सुमनसां च तद्यतिपद्माणा च प्रभो ! चित्रम् ॥५॥  
 धातुविभक्त्यनपेक्षं क्रियाकलाप स्वनन्यसाध्यमनि ।  
 यं साधयत् जिनपते ! चमत्कृते कस्य नो जान ॥६॥  
 मयि सति कीदृक् चासन्नयमत्र षधिरिति नाम ॥७॥  
 रोपादसुराचार्यं जेतुं किं जि—

भगवस्त्वयि दिवि गच्छति हर्षाश्वदमिमुखमधता चिताः ।  
 सुररमणीभिर्मन्ये सारीमृतास्त एवाभ्र ॥८॥  
 इन्द्रानुरोधवशतो मध्ये स्वर्गे ययौ भवानित्थम् ।  
 जिनपतिसूरे ! सन्तो दाक्षिण्यधना भवन्ति यत ॥९॥  
 वामपदघातलम्बेन्द्राण्यवतारितशरावपुटखण्डम् ।  
 स्वभ्रीविवहृकार्यं तव नूनं दिव्युद्धमृता ॥१०॥  
 जिनजननदिनस्तानाधानेच्छातं किमाकुक्षीभूय ।  
 त्वं पञ्चत्वं प्राप्तं सुरपतिवज्जिनपतिर्भगवान् ? ॥११॥  
 त्वदमिमुखमिष च्चिसानाशानारोभिरश्वतान् नूनम् ।  
 उपभोक्तु वियदजिरे विरचति चन्द्रो मराल इव ॥१२॥  
 नास्तिकमतकृद्मरगुरुजयनायेवासि जिनपते ! स्वरगाः ।  
 परमेतज्जगद्घुना विना भवन्तं कथं भावि ? ॥१३॥  
 हा ! हा ! श्रीमज्जिनपतिसूरे ! सूरे स्वयीत्थमस्तमिते ।  
 अहह कथं भविता नीतिश्वक्रवाकी वराकीयम् ॥१४॥  
 फरतज्जघृतदीनास्ये श्रीशासनदेवि ! मा कृथा फष्टम् ।  
 पन्मन्ये तव पुण्यैर्जिनपतिसूरिर्दिवमयासीत् ॥१५॥  
 रे देव ! जगन्मातुः श्रीवाग्देव्या अपि स्वयात्रेपि ? ।  
 ना मन्ये यदमुष्याः सर्वस्वं जिनपतिरहारि ॥१६॥

इत्यादि श्लोकों से शोक-विहाय करते हुए उपाध्यायजी मूर्च्छित हो गये । मूर्च्छा टूटने पर वेर्य  
 पारब करके श्रीपूज्यजी की वरखों में बहना करके और्ध्व-दृष्टिक अन्तिम संस्कार कृत्य करने के  
 लिये परिवार सहित श्रीभिनदितोपाध्यायजी आये । अपने साधु नियम के अनुसार योग्य कार्य को  
 करके उपाध्याय में आगये । वहाँ पर गणेश्वर भी गौतमस्वामी आदि महाराजों के चरित्रों का कीर्तन  
 करके उपस्थित बनता की आह्लादित किया । इस स्थान पर यह भी समझ लेना चाहिये कि इस  
 संस्कार करके अन्य भावक लोग भी इस उपदेश में सम्मिश्रित हो गये थे ।

## द्वितीय आचार्य जिनेश्वरसूरि

६६ इसके बाद भीजिनपतिछरिजी महाराज के शिष्यों ने आवालिपुर में ज्ञान चतुर्मास किया। चतुर्मास समाप्त होने के बाद वहीं पर सारे सब की सम्मति से भीजिनहितोपाध्याय, भीजिनपालोपाध्याय आदि प्रधान-प्रधान साधुओं के साथ भीसर्षदेवछरिजी ने भीजिनपतिछरिजी महाराज की बतार्ह हुई रीति के अनुसार आचार्यपद के योग्य, ज्ञानी गुणों से युक्त, सौमन्य मात्र, युवराज, विनीत, व्रमा आदि दस प्रकार के यतिधर्मों का आचार स्थान भीबीरप्रमगणि को सं० १२७८ माघ सुदि ६ के दिन स्वर्गीय आचार्य भीजिनपतिछरिजी के पाट पर स्थापित किया। अब इनका नाम परिवर्तन कर जिनेश्वरसूरि रखा गया। यह पाट महोत्सव अनेक दृष्टियों से अनुपम हुआ था। इस शुभ अवसर पर बड़े मक्तिमान् से देश-देशान्तरों से अनेक धनो-मानी सम्पन्न लोग आये थे। उनकी ओर से स्थान-स्थान पर गरीबों के लिये सदावर्त न्मोल गये थे। बर्ष-भरा सुन्दरी सल्लनायें युगप्रधान गुरुओं की कीर्ति गान के साथ नृत्य कर रही थीं। उत्सव के दिनों में प्राक्लिष के नियम की घोषणा की गई थी। इबारों रूपये व्यय कर पाषण्डों के मनोरथ पूरे किये जा रहे थे। आये हुये लोग और आभूषणों की छटा से इन्द्र की भी सर्वा कर रहे थे। उस समय जैन शास्त्र की प्रभावना देखकर अन्य दर्शनी लोग भी निःसंकोच होकर शास्त्र की प्रशंसा करते थे। अन्यमातावसन्धी लोग अपने-अपने देवों को बार-बार चिन्तित हुए जैनधर्म पर मुग्ध हुए जाते थे। माट लोग खरतरगन्ध की पिठदावली पड़ रहे थे। चारों तरफ से अनेक प्रकार के आशीर्वादों की झड़ी लग रही थी। तीर्थ-प्रभावना के निमित्त तोरख बन्दरवाल आदि से भगवान् महावीर का मन्दिर बड़े अच्छे ढंग से सजाया गया था।

पाट महोत्सव के बाद ही माघ सुदि नवमी के दिन भीजिनेश्वरसूरिजी महाराज ने पशु-कलशगणि, त्रिनयनगणि, बुद्धिसागरगणि, रत्नकीर्तिगणि, तिलकप्रमगणि, रत्नप्रमगणि और अमरकोर्तिगणि इन सात साधुओं को दीक्षित किया। आवालीपुर से सेंट यशोधरख के साथ विहार करके भीमालपुर गये। वहाँ पर जेठ सुदि १२ के दिन भीषिष्य, हेमप्रम, तिलकप्रम, विवेकप्रम और चारित्रमाता गणिनी, ज्ञानमाता, सत्यमाता गणिनी इन साधु-साध्वियों को दीक्षा देकर निवृत्तिमार्ग के पथिक बनाये। इसके बाद वहाँ से विहार कर गये। फिर बगदर की प्रार्थना स्वीकार करके आपाह सुदि दशमी के दिन पुनः भीमालपुर आये। उन्हीं सेंटजी के प्रयास से महाराज का नगर प्रवेश अमृत पूर्णरिति से हुआ। वहाँ पर भी शान्तिनाथ भगवान् की स्थापना की गई। और आवालीपुर में देव मन्दिर रचना प्रारम्भ करवाई। आवालीपुर में ही सं० १२७६ माघ सुदि ५ पंचमी के दिन अर्धरथगणि और विवेकभीगणिनी, शीलमाला-पणिनी चन्द्रमाला गणिनी, त्रिनयमाला गणिनी को सपम प्रदान किया।

वहाँ स पुनः श्रीमालपुर में आकर सं० १२८० मास शुद्धि १२ को श्रीशान्तिनाथ स्वामी  
 क मंदिर पर अज्ञात अशुभ आरोपण किया और भूषमदेव स्वामी, भीमोत्तमस्वामी, भीमिनपतिहरि मेहनत  
 चक्रपाल और पञ्चाक्षरी देवी इनकी प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाई । तत्पश्चात् फाल्गुन कृष्ण प्रतिष्ठा  
 क दिन कृष्णचन्द्र कनकचन्द्र और पूर्वाभी गण्डिनी, हेमभी गण्डिनी को साधु-साध्वी बनाए उनके  
 विधि सन्ताप का निवारण किया । वहाँ से वैशाख शुद्धि १४ क रोष प्रज्ञादनपुर ( पल्लनपुर )  
 में आकर बड़ी धूम-धाम स पंचायती स्तूप में भी अिनपतिहरि की प्रतिमा की स्थापना की । इत  
 स्तूप को विस्तार स प्रतिष्ठा भीमिनहितोपाध्याय न की । सं० १२८१ वैशाख शुद्धि ६ के दिन  
 जाबाहीपुर में विजयकीर्ति, उदयकीर्ति, गुणसागर, परमानन्द और कमलभी, कृष्णभी प्रभृति का  
 दीक्षा कार्य सम्पन्न किया । उसी नगर में न्येष्ठ शुद्धि ६ के दिन महावीर स्वामी के मन्दिर पर  
 अज्ञातारोपण किया । सं० १२८२ माह बदि २ क दिन बाङ्गमेर में श्रीभूषमदेवकी चैत्य पर अज्ञा  
 फहराई । माह बदि ६ को श्रीहरप्रमोपाध्याय को उपाध्याय पद देकर सम्मानित किया और उसी  
 दिन महासमिति गण्डिनी को प्रवर्तिनी पद तथा श्रीकलशगण्डि, नन्दिवर्द्धनगण्डि और विजयवर्द्धन  
 गण्डि को दीक्षा दी । तदनन्तर सं० १२८४ में बीजापुर जाकर श्रीवासुपुन्य स्वामी की स्थापना  
 की एवं आपाङ्ग शुद्धि २ को अमृतकीर्तिगण्डि, सिद्धिकीर्तिगण्डि और पारित्रसुन्दरी गण्डिनी, धर्मसुन्दरी  
 गण्डिनी को दीक्षित किया । सं० १२८५ की न्येष्ठ शुद्धि द्वितीया को कीर्तिकलशगण्डि, पूर्वाक्षर-  
 गण्डि तथा उदयभी गण्डिनी को उपदेश देकर निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थिनी बनाये । न्येष्ठ शुद्धि ६ को  
 बीजापुर में श्रीवासुपुन्य स्वामी क मन्दिर के अन्दर पर बड़े समारोह के साथ अज्ञात अशुभ  
 किया । बीजापुर में ही अठ सुद्धि नवमी के दिन विद्याचन्द्र, न्यायचन्द्र और अमरपचन्द्र गण्डि को  
 साधुधर्म में दीक्षित करके लोकमान्य मुनि बनाय । सं० १२८७ फाल्गुन शुद्धि १५मी को  
 पालनपुर में प्रयसेन, देवसेन, प्रमोषचन्द्र, अशोकचन्द्र गण्डि और कृष्णभी गण्डिनी, प्रमोदभी  
 गण्डिनी का दावा देकर अक्षर सक्षर से मुक्त किया । सं० १२८८ माहवा सुद्धि १० को जाबाहि-  
 पुर में स्तूप-अज्ञात की प्रतिष्ठा करवाई । इसी वर्ष आश्विन शुक्ला दशमी को पालनपुर में  
 महादास सहित सठ सुवनपाल न रामकुमार भी जगसिंह की उपस्थिति में अज्ञातारोपण सम्पन्नी महा-  
 महोत्सव किया; जो भीमिनपाशोपाध्याय के हाथों से सम्पन्न हुआ । पौष शुक्ला एकदशी को बाहोए  
 में कल्याणकलश, प्रसन्नचन्द्र, लक्ष्मीतिलकगण्डि श्रीतिलक, रत्नतिलक और धर्ममति, विनयमति,  
 विद्यामति, पारित्रमति इन स्त्री-पुत्रों को दीक्षित किया । विचौड़ में अष्ट सुद्धि १२ को अश्वि-  
 सन, गुणसेन और अमृतमूर्ति, धर्ममूर्ति, राजीमति, हेमावली, कनकावली, रत्नावली गण्डिनी तथा  
 सुकावली गण्डिनी की दीक्षा हुई । वहीं पर आपाङ्ग बदि द्वितीया के दिन श्रीभूषमदेव, भीमिननाथ  
 भीपार्ष्णनाथ की मूर्तियों की प्रतिष्ठा की । इत देवों की मूर्तियां सेठ लक्ष्मीचर-ने बनवाई

और प्रतिष्ठा में सेठ लक्ष्मीधर एवं सेठ राम्हा ने आठ हजार रुपये खर्च किए थे। मूर्तियों को स्नान करने के लिये सरकारी गाँजे-गाँजे के साथ जल लाया गया था।

सं० १२८६ में श्रीपूज्य जिनेश्वरसरि ने ठा० अचाराज और सेठ राम्हा की सहायता से उज्जयन्त, शुभ्रजय और स्वम्भनक प्रधान तीर्थों की यात्रा की थी। स्वम्भनक (खम्भान में) शरी यमदह नाम के दिग्गम्बर पवित्र से पूज्य भी का शास्त्रार्थ हुआ था। वहीं पर परिवार सहित प्रसिद्ध महामंत्री भी वस्तुपाल नगर प्रवेश के समय पूज्यभी के सम्मुख आए थे। इससे उस समय दिन शासन की प्रमातना हुई थी। सं० १२९१ वैशाख शुद्धि दशमी के दिन बाबाक्षीपुर में आकर पत्तिकच्छ, चमाचन्द्र, शीसरत्न, धर्मरत्न, चारित्ररत्न, मेघकुमारगण्डि, धर्मपत्तिकच्छाण्डि, भीष्मभार तथा श्रीसामुन्दरी, चन्दनसुन्दरी, इन साधु-साध्वियों को विधि-विधान से दीक्षा दी। अठे बदि द्वितीया के दिन शुभ मूर्तुर्ग में मूलनक्षत्र पर भीविजयदहसरि को आचार्य पद से भूषित किया। सं० १२९४ में श्रीसंप्रदित्तमुनि को उपाध्याय पद दिया। सं० १२९६ फल्गुन बदि पंचमी को चालनपुर में प्रमोदमूर्ति, प्रबोधमूर्ति, देवमूर्तिगण्डि इन तीनों की दीक्षा विपुल धन व्यय के साथ की गई। अठे शुद्धि १० को उसी नगर में श्रीशान्तिनाथ मगवान् की प्रतिष्ठा करवाई; यही मूर्ति आम्बकल पाटश में वर्तमान है। सं० १२९७ चैत्र शुद्धि १४ के दिवस देवतित्तक और धर्मतिलक को चालनपुर में दीक्षा दी गई। सं० १२९८ वैशाख की एकादशी को बाबाक्षीपुर में समुद्राय सहित महं० क्लृप्तधर ने छत्रधार मुखचन्द्र से बनबाकर सुवर्णमयदठ और पञ्चा का आरोपण किया। सं० १२९९ के प्रथम आश्विन मास की द्वितीया के दिन प्रगाढ वैराग्य के बशीभूत होकर महामंत्री क्लृप्तधर ने दीक्षा धारण की। इनकी दीक्षा के समय जो महोत्सव किया गया; वह राजा लोग और नागरिक लोगों का आश्चर्य समुद्र को बढाने में पृथ्विमा के चाँद के समान हुआ अर्थात् इतने बड़े वैभवशाली राजनीतिपटु मंत्री को साधु होते हुए देखकर उन लोगों के आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही। दीक्षा के बाद मन्त्रीकी का नाम क्लृप्तित्तकमुनि रक्खा गया था।

सं० १३०४ वैशाख शुद्धि १४ के दिन जिनेश्वरसरिजी ने विजयवर्द्धनगण्डि को आचार्य पद दिया और इनका नाम बदल कर जिनरत्नाचार्य रक्खा। त्रिलोकहित, जीवहित, धर्माकर, हर्षदण्ड, संप्रप्रमोद विवेकसमुद्र, दहगुरुमक, चारित्रगिरि, सर्वज्ञमक और त्रिलोकानन्द को संपन्न प्रदान किया। सं० १३०४ में आषाढ शुद्धि १० को चालनपुर में श्रीमहाशोर स्वामी, श्रीभूषण-दह स्वामी, श्रीनेमिनाथ स्वामी, श्रीपार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमाओं की तथा नन्दीश्वर तीर्थ के माव पुक पट्ट की प्रतिष्ठा की।\*

\* इति श्रीजिनचन्द्रसूरि-श्रीजिनपतिसूरि-श्रीजिनेश्वरसूरिसत्कसज्जनमनश्च मत्कारिप्रभावनावाचार्त्तानामपरिमितस्येऽपि तन्मध्यवर्त्तिन्य कतिचित्

६८ इसके बाद भीजिनेश्वरछरित्री ने श्रीमालनगर में सं० १३०६ में जेठ सुदि १३ के दिन कन्युनाथ और अरनाथ मगवान् की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की और सेठ बोधक की प्रार्थना स्वीकार करके बुधवार अत्रारोपण किया ।

स्थूषा स्थूषा वार्ता श्रीचतुर्विधसधप्रमोदार्थम् ।

बिल्लीवास्तव्यसाधुसाधुजिसुत सा० हेमाभ्यर्थनया ।

जिनपालोपाण्यायैरित्थं प्रथिता स्वयुरुवार्ता ॥

[ जैसे तो मखिपारी भीजिनपद्मछरि, भीजिनपतिछरि और भीजिनेश्वरछरित्री महाराज क बीकन चरित्र में अनेक चमत्कार पैदा करने वाली अनेक बातें हैं । परंतु दिल्ली निवासी साधुजी सेठ के पुत्र भीरमचन्द्र सेठ की प्रार्थना से भीजिनपालोपाण्याय ने चतुर्विध सध के अमोद के लिये उनमें से मोटी-मोटी और सरल बातें उपर्युक्त रीति से लिखी हैं । ]

वे स्वयं लिखते हैं—

लोकभाषानुसारिण्यः सुखबोध्या भवन्त्यत ।

इत्येकवचनस्थाने काऽपि [ च ] बहुक्लिपि ॥

धात्वात्बोधनायैव सन्ध्यभावः कचित्कृतः ।

इति शुद्धिदृष्ट्वेतोभिः सन्निज्ञेय स्वचेतति ॥

बुद्धये शुद्धये ज्ञानवृद्धये जनसमृद्धये ।

चतुर्विधस्य संघस्य भण्यमाना भवन्त्यत ॥

[ हमने इन भाषाओं के जीवन की बातें संस्कृत में लोक भाषा के मुहावरों के अनुसार लिखी हैं । इनमें काठिन्य नाम मात्र को मी नहीं है । हर एक आदमी सुगमता से जान सकें, इसका ख्याल रखा गया है । कहीं-कहीं भाषार्थादि के लिये एकवचन के स्थान में बहुवचन भी दे दिया गया है । साधारण संस्कृतियों की जानकारी के लिये कहीं-कहीं सन्धि का अभाव भी किया गया है । शुद्धाशुद्ध का विचार करने वाले विद्वान् लोग हमारे इस अभिप्राय को जान लें । हमारी कड़ी हुई प्रार्थना स्मरणीय भाषाओं के जीवन चरित्र सम्बन्धी ये बातें चतुर्विध सध के लिये शुद्धि, शुद्धि, ज्ञान-वृद्धि और जन-समृद्धि को देने वाली हो । ]

पाठकशुभ ! ऊपर के लेख से निदिस होता है कि भीजिनपालोपाण्यायत्री ने भीजिनेश्वरछरित्री महाराज का जीवन चरित्र यहीं तक लिखा है । उनका भाग्य का जीवन चरित्र किसी अन्य विद्वान् सुनि का लिखा हुआ है ।

सं० १३०६ में मार्गशीर्ष शुक्ला १२ को समाधिरोखर, गुणरोखर, दशरोखर, माधुमक, धीरव्रजम मुनि तथा मुक्तिसुन्दरी साध्वी को दीक्षा दी और उसी वर्ष माघ सुदि १० को श्रीशान्तिनाथ, अत्रितनाथ, धर्मनाथ, वासुपुत्र्य, मुनिसुम्रत, सीमधर स्वामी, पद्मनाम आदि तीर्थंकरों की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा सेठ विमलचन्द्र सा० हीरा आदि धनी-मानी भावक मसुदाय ने पूज्यभी से करवाई। यहाँ पर यह बतला देना भी अनुचित न होगा कि किस-किस भावक मसुदाय के धन व्यय से कौन-कौन तीर्थंकर मगवान् की प्रतिमा स्थापित की गई थी। सेठ विमलचन्द्र ने नगरकोट में पहले से स्थापित श्रीशान्तिनाथजी की प्रतिष्ठा पर्याप्त धन व्यय करके करवाई। अत्रितनाथ महाराज की प्रतिष्ठा बल० साधारण भावक ने, धर्मनाथ स्वामी की विमलचन्द्र के पुत्र चेमसिंह ने, वासुपुत्र्य स्वामी की सब भाविकाओं ने, मुनिसुम्रत स्वामी की येहड़ गौठी ने, सीमधर स्वामी की गौठी हीरा न, पद्मनाम मगवान् की भावक भावसार हाहाक न बिपुल धनराशि खर्च करके विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करवाई। प्पान रह कि यह प्रतिष्ठा सम्बन्धी कार्य पासनपुर में हुआ था। उसी साल सहजाराम सेठ के सुपुत्र बन्धु ने बाङ्गमेर जाकर बड़े उत्सव के साथ दो स्वर्ण कलशों की प्रतिष्ठा करवा कर आदिनाथ मंदिर के शिखर पर चढाये।

सं० १३१० में वैशाख सुदि ११ को जाबालीपुर (जासोर) में चारित्रव्रजम, हेमपर्वत, अचल पिच, सामनिचि, मोदमदिर गजकीर्ति, रत्नाकर, गतमोह, देवप्रमोद, शीरानन्द, विगतदोष, राज-सल्लित, बहुचरित्र, विमलप्रभ और रत्ननिधान इन पन्द्रह साधुओं को प्रमन्या चरण कराई। इन पन्द्रह में चरित्रव्रजम और विमलप्रभ पिता पुत्र थे। इन्होंने साथ ही दीक्षा धारण की। इसी वर्ष वैशाख की त्रयोदशी के दिन शनिवार स्वाति नक्षत्र में भीमहावीर मगवान क विधि-चैत्य में राजा श्रीवृद्धसिंहजी आदि बहुत से राजा लोगों की उपस्थिति में राजमान्य महामन्त्री श्री नेत्रसिंहजी के उत्सवधान में प्रह्लादनपुर (पासनपुर), बागड आदि स्थानों क मुख्य-मुख्य भावकों की उपाधि में श्रीसिंह जिनालय, एक मौ सपर तीर्थंकर, सम्मेत शिलर, नदीश्वर, तीर्थंकरों की माता हीरा भावक के पास में स्थित नेमिनाथ स्वामी, उन्नयिनी सरक भीमहावीर स्वामी, भीषद्रप्रम स्वामी, श्रीशान्तिनाथ स्वामी एवं सेठ हरियाल सरक सुरमा स्वामी, श्रीविन्दचरित, सीमधर स्वामी, युगमधर स्वामी आदि की नाना प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा अमृत महामहोत्सव के साथ की और प्रमोदश्री गण्धिनी को महेश्वरी की उपाधि देकर सप्तमीनिधि नाम दिया तथा ज्ञानमासा गण्धिनी को प्रवर्तिनी पद दिया।

सं० १३११ वैशाख सुदि ६ को पासनपुर में भीषद्रप्रम स्वामी क विधिचैत्य में सीमपल्ली नगरी के मन्दिर में स्थित भीमहावीर प्रतिमा की प्रतिष्ठा सेठ मुननपाल ने अपने निजोपाहित धन के व्यय से करवाई। पचासत की ओर से अणमदेव स्वामी की शौरित्य भावक की तरफ से



स्वामी की, मोष्हाक नाम के भावक द्वारा अभिनन्दन स्वामी की, आम्बा के माई मावसर केन्द्र की ओर स वाङ्मेर के लिये नेमिनाय स्वामी की, सेठ हरिपाल के छोटे माई सेठ कुमारपाल की तरफ स भीक्षितदत्तहरिमी की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा पूज्यभी से करवाई गई ।

इसके बाद पालनपुर में खरतरगण्ड्य की नौका क कर्वाधार, सस्कृत साहित्य के प्रौढ़ विद्वान् बयोद्वय श्रीजिनपालीपाष्यायत्री ने अनशन करके इन्द्रादि देवों के गुरु बृहस्पति के साथ शास्त्रार्थ करने के लिये ही स्वर्ग की ओर विहस किया ।

तत्परचात् स० १३१२ बैशाख सुदि पूर्णिमा के दिन चन्द्रकीर्तिगधि को उपाध्याय पर प्रदान किया गया और चन्द्रतिलकोपाध्याय नया नामकरण किया गया । उसी अवसर पर मधोपवन गधि और लक्ष्मीतिलकाधि को बाचनाचार्य के पद से सम्मानित किया गया । इसके बाद बेट बदि १ को उपशमधिच, पवित्रधिच, आभारनिधि और त्रिलोकनिधि को प्रयज्या धारण करवाई गई ।

स० १३१३ फाल्गुन सुदि चतुर्थी को जालौर में स्वर्णगिरि के ऊपर बाले मंदिर में बार्हिक उद्धारण नाम क भावक स करित भीशान्तिनाथ मगवान् की मूर्ति की स्थापना की । ये सुदि चतुर्दशो को कनककीर्ति, विदशकीर्ति, विपुधाराध, रम्यरोखर, गुणरोखर तथा जयलक्ष्मी, कल्याणनिधि, प्रमोदलक्ष्मी और गण्डबुद्धि की दीक्षा हुई । इसके बाद स्वर्णगिरि शिखर पर के दूसरे मंदिर में पद्म और मूलिग नाम के भावकों ने बहुत सा धन खर्च करके बैशाख बदि १ को भीशान्तिनाथ प्रतिमाकी स्थापना करवाई । पालनपुर में आपाङ सुदि १० के दिन मावनातिलक और मरठकीर्ति की दीक्षा दी गई और उसी दिन मीमपल्ली में भीमदावीर स्वामी की प्रतिमा की स्थापना हुई ।

स० १३१४ माह सुदि १३ को इस नगरी क ऊपर बनवाये हुए सुस्थ मंदिर पर धजा चढ़ाई गया । यह ध्वज भी उदयतिह राजा की देख-रख में निर्भिन्ता पूर्वक सम्पन्न हुआ था । तदनन्तर पालनपुर में अग्रिम वर्ष की आपाङ सुदि १० को सकलदित तथा राजर्षाब को ष्व पुद्दिमबुद्धि, अद्विसुन्दरी, रत्नदृष्टि इन साध्वियों को दीक्षा दी गई ।

स० १३१६ माह सुदि १४ के दिन जालौर में धर्मसुन्दरीगणिनी को प्रतिनी पद तथा माह सुदि ६ को पृथ्वीखर, कनककस्तुर को प्रयज्या दी गई । माह सुदि ६ के दिन भीषाधिगद्व क रात्रत्व में पद्म और मूलिग नाम के भावकों ने स्वर्णगिरि में भीशान्तिनाथ स्वामी क मंदिर पर स्वर्ण कस्तुर और स्वर्णमय ध्वजदंड का आरोपण कराया । इसी प्रकार भीमोपचन्द्र नाम क मशी न बीजापुर में आपाङ सुदि ११ के दिन भीवासुपूज्य मगवान् के मंदिर पर स्वर्णकस्तुर और स्वर्ण क बनाये हुए ध्वजदंड चढ़ाये ।

सं० १३१७ माह सुदि १२ को लक्ष्मीविलक्षणसि को उपाध्याय पद प्रदान किया तथा अधिक धन व्यय के साथ पद्माक्षर नाम के व्यक्ति को दीक्षा दी गई। माह सुदि १४ के दिन भी बाबा लीपुर के शोमात्मर्द्धक श्री महावीर विनेन्द्र के मंदिर में स्थापित चौबीस देवकुलिकाओं पर पंचायत की तरफ से सुवर्ण कलश और सोने के अर्घ्य चढ़ाये गये। फल्गुन सुदि १२ को भी शान्तनपुर में अक्षितनाथ स्वामी के मंदिर की प्रतिष्ठा और अग्ररोहण किया गया। यह प्रतिष्ठा सम्मन्धी अर्घ्य वाचनाचार्य पूर्वाकलश गखिने करवाया था। इसी प्रकार भीमपल्ली में भी मांडलिक राजा के राजत्व काल में बैशाख सुदि १० सोमवार के दिन राज्य के प्रधान दंडनायक श्रीमीलगाथ (? सीलगाथ) की संनिधि में सेठ भी लीमड़ के पुत्र सेठ अगदर और उनके पुत्र भी सेठ सुबनराय ने कुडुम्बियों के साथ बड़ा धन खर्च कर भी वर्द्धमान स्वामी के "मंदिरविलक" नाम के मन्दिर पर स्वर्ण दंड और स्वर्ण कलश चढ़ाये और उनकी प्रतिष्ठा भी उसी दिन करवाई। उस समय वहाँ पर भीमहावीर स्वामी के केवलज्ञान महोत्सव का दिन होने से पालानपुर आदि अनेक नगरों के भावकों के आने से खासा मेला लग गया था। इसके अतिरिक्त वहाँ पर और भी बहुत से देवी-देवताओं की प्रतिष्ठा करवाई गई थी। सेठ हरिपाल और उसका भाई कुमारपाल ने सवार की तमाम सर्वभेष्ट विद्याओं की चक्रवर्ती, चन्द्रमा के समान घबलकान्ति वाली, सकल सघ को सुपुत्रि देने वाली तथा एकबन अंगुल प्रमाणावाली "सरस्वती" प्रतिमा की प्रतिष्ठा बड़े समारोह से करवाई। सेठ राघवदेव ने तीस अंगुल प्रमाणा की श्रीशान्तिनाथ स्वामी की प्रतिमा की स्थापना करवाई। मूलदेव और बेमंभर ने अक्षयमदेव प्रतिमा, सावदेव के पुत्र पूर्वासिंह ने भीमहावीर स्वामी की प्रतिमा, आत्रड़ पुत्र बोधा ने श्रीपार्ष्वनाथ स्वामी की प्रतिमा, चारसिंह न श्रीपार्ष्वनाथ और भीमसुब्रह्म पराक्रम युक्त चन्द्रपाल प्रतिमा, भीमपमदेव और महावीर स्वामी की प्रतिमा पूनाशी उद्या ने, चौबीस तीर्थकर्तों के पङ्क और पीतल की प्रतिमा सेठ बालचन्द्र ने, अक्षयमदेव की प्रतिमा मतलब सुठ सेठ घांचल ने, शान्तिनाथ की प्रतिमा बोधरा शासिग ने, अक्षयमदेव की प्रतिमा आसना ग ने, महावीरवी की तीन प्रतिमायें सखल पुत्र चणपास ने, शान्तिनाथ की प्रतिमा सेठ मोत्राक ने, भिनदचधरि और चन्द्रप्रम स्वामी की प्रतिमा सेठ हरिपाल तथा कुमारपाल ने, भीनेमिनाथ की प्रतिमा रूपचन्द्र क पुत्र नरपति ने, स्तम्भनक पार्ष्वनाथ प्रतिमा सेठ बनपाल ने, चण्डे० (?) की प्रतिमा सेठ भीवाने और अम्मिकादेवी की प्रतिमा भीसप ने स्थापित करवाई। श्रावरी क दिन सौम्यमूर्ति और न्यायलक्ष्मी नामक साध्वियों की दीक्षा भूम-भाम से करवाई गई।

सं० १३१८ वीप सुदि वृतीया के दिन सभमक को दीक्षा और धर्ममूर्तिगथि को वाचना-  
धाय पद दिया गया।

सं० १३१६ मिंगसिर सुदि ७ के दिन अमयतिलकगण्डि को उपाध्याय पद दिया गया। उसी वर्ष सं० देवमूर्ति आदि साधुओं को साथ लेकर धीअमयतिलक उपाध्यायजी उज्जैन गये, वहाँ पर तपागण्ड के पंडित बिद्यानन्द को बीतकर "प्रासुकं शीतलं अलं यतिकल्प्यम्" इत्यादि सिद्धान्तों के बत से अपने पद का स्थापन करके राव-समा में जय-पत्र प्राप्त किया। इन महाराज का पावनपुर आदि स्थानों में बड़े विस्तार से प्रवेशोत्सव हुआ था। सं० १३१६ माह बदि पंचमी को विद्यपसिद्धि साध्वी की दीक्षा हुई। माह बदि ६ को श्रीचन्द्रप्रम स्वामी की प्रतिमा, अश्विननाथ प्रतिमा सुमतिनाथ प्रतिमा की सेठ पुषचन्द्र ने बड़े महोत्सव से प्रतिष्ठा कराई। सेठ सुवनपाल ने अयपदेव स्वामी की प्रतिमा, कशहर के पुत्र बीकित भावक ने धर्मनाथ स्वामी की प्रतिमा, रत्न और पेयड़ भावक ने सुपार्थ स्वामी की प्रतिमा, सेठ हरिपाल और उसके भाई कुमारपाल ने भीमिनकमण्डरि मूर्ति और सिद्धान्तपचमूर्ति की स्थापना एवं प्रतिष्ठा कराई। सेठ अमयचन्द्र ने भीपचन में अचय तृतीया के दिन श्रीशान्तिनाथ देव के मंदिर पर दंडफलय श्राधे।

सं० १३२१ फगुन सुदि २ के दिन गुरुवार को चित्रसमाधि और शान्तिनिधि नायक आर्याओं की दीक्षा हुई। सं० १३२१ फगुन बदि ११ को पावनपुर में तीन मन्दिरों की और अम्बदंड की प्रतिष्ठा कर, बेसलमेर के भी सभ की प्रार्थना से भीमिनेकरहरिबी बेसलमेर पहुँचे और वहाँ पर सेठ सुदि १२ के दिन सेठ यशोपबल के बनबाये हुए देवगूर शिखर पर दंडध्वज का आरोपण किया और पार्थनाथ स्वामी की स्थापना की। सं० १३२१ सेठ सुदि पंचिमा के दिन अरिनबोहर, लक्ष्मीनिवास तथा रत्नवतार नाम के तीन साधुओं को दीक्षा दी।

सं० १३२२ माह सुदि १४ को बिक्रमपुर में त्रिदशानन्द, शान्तमूर्ति, त्रिभुवनानन्द, कीर्तिमंडल, सुभुदिराज, सर्कराज, बीरप्रिय, जयवज्रम, लक्ष्मीराज और हेमसेन तथा सुक्तिवज्रमा, नेमिमक्ति, मंगलनिधि, प्रियदर्शना को तथा बिक्रमपुर में ही बैसाख सुदि ६ को बीरसुन्दरी को दीक्षित किया गया।

सं० १३२३ मार्गशिर बदि पंचमी को नेमिध्वज को साधु और विनयसिद्धि तथा आगमसिद्धि को साध्वी बनया। सं० १३२३ बैसाख सुदि १३ के दिन देवमूर्तिगण्डि को वाचनाचार्य का पद दिया और द्वितीय जेठ सुदि दशमी को बेसलमेर में श्री पार्थनाथ विधि सैत्य पर बहाने के लिये सेठ नेमिभुमार और गणदेवक द्वारा बनबाये हुये स्वर्णदंड और कस्तूरों की प्रतिष्ठा की

\* नोट—इस निबन्ध में तिथियाँ गुजराती मास के हिसाब से ली गई हैं। अतएव सुदि-बदि का आगे पीछे होना असोत्पादक नहीं है।

तथा विवेकसमुद्रगणि को बाधनाचार्य का पद दिया। आपाठ यदि एकम को हीराकर को साधु पद प्रदान दिया।

स० १३२४ मार्गशीर्ष कृष्ण २ शनिवार के दिन कुलभूपथ, हेमभूपथ दो साधु और अनन्त सखी, व्रतसखी, एकलसखी, प्रधानसखी, पाँच ( १ चार ) साध्वियों को गाजे-बाजे आदि श्रद्धा के साथ दीक्षित किया। यह दीक्षा महोत्सव का बालीपुर ( मालौर ) में हुआ था।

स० १३२५ बैशाख सुदि १० को बा बालीपुर में ही भ्रमहावीर-विधिचैत्य में पालनपुर, चम्पल, मेवाड़, उष्ण, बागड़ आदि स्थानों से आये हुए समुदायों के मेले में व्रतग्रहण, मानारोपण, सम्यक्त्वरोपण, सामायिक ग्रहण आदि तथा नन्दिया विस्तार से की गई। वहाँ पर राधेन्द्रवल्ल नाम का साधु तथा पद्मावती नाम की साध्वी बनाई गई। बैशाख सुदि १४ के दिन महावीर विधि चैत्य में चौबीस दिनप्रतिमाओं की, चौबीस भोज दंडों की, तीर्मंभर स्वामी, युगंभर स्वामी, बाहु-सुबाहु स्वामी की मूर्तियों की बड़े विस्तार से प्रतिष्ठा हुई। वैसे ही छठ यदि चौथ के दिन सुवर्णगिरि में स्थित श्रीशान्तिनाथ विधिचैत्य में चौबीस देवकालिकाओं में उन्हीं चौबीस दिन प्रतिमाओं की, तीर्मंभर स्वामी, युगंभर स्वामी, बाहु-सुबाहु प्रतिमाओं की स्थापना सर्व समुदायों के मेले में बड़े उत्सव से की। उसी दिन धर्मतिलक गणिक को बाधनाचार्य का पद दिया गया और वैसे ही बैशाख सुदि १४ को वे सप्तमेर के भी पार्षनाथ विधि चैत्य में सेठ नेमिह्वार और गणदेव के बनाये हुए सुवर्णदंड और सुवर्ण कलश का अर्पण महोत्सव पूरा किया गया।

६६ सं० १३२६ में सेठ मुबनपाल के पुत्र भ्रमयचन्द्र ने तथा म० अशित सुव देदाक नाम के आकर ने रास्ते के प्रबन्ध मार को स्वीकार कर लिया। तभी से सेठ भ्रमयचन्द्र, मई० अशित सुव मई० देदा, सेठ रामदेव, सेठ हमारपाल, सेठ विम्बदेव, धीपति, मूलिग और बनपाल आदि सप्त के प्रमुख सजनों ने शत्रुञ्जपादि तीर्थों की यात्रा के लिये महाराज से बहुत प्रार्थना की। चतुर्विध सप्त की प्रार्थना स्वीकार करके भीमिनरत्नापाय, भीमन्त्रतिलकोपाप्याय, हृद्यदचन्द्र आदि २३ साधु तथा भीमप्रमोनिधि महेश्वर आदि मुख्य १३ साध्वियों को साथ लेकर भीमिनेश्वरछरिनी महाराज ने पालनपुर से तीर्थ-यात्रा के लिये विहार किया। मार्ग में स्थान-स्थान पर विधिमार्ग की प्रमाणों के लिये हुआ भीसप्त भी तारण महातीर्थ पहुँचा। वहाँ पर म० देदाक ने पाँच हजार द्रम्म दक्ष रत्नपद लिया। पूनाधी के पुत्र सेठ वेणु ने चार सौ रूपों में मंत्रिपद, हृद्यचन्द्र क पुत्र वीजड़ ने सौ रूपये देकर सारथिपद, सेठ राजाक ने एक सौ दस रूपये में भांडागारिक पद, म० देदा की दो धर्मपत्नियों ने तीन सौ रूपये देकर आद्यधरमारि पद, वज्रपाल ने नौ रूपों में ध्वजधर पद और सेठ वपदेव तथा सेवपाल की पत्नियों ने पिछला धरमारि पद प्राप्त किया।

इसी प्रकार बीजापुर में भीवासपूज्य भगवान् के विधि-चैत्य में सेठ भीपति ने तीन सौ सोलह रुपये में मांसा ली। इस प्रकार सारा मिसाकर मंडार में तीन हजार रुपयों का संग्रह हुआ।

उदनन्तर सप्त खमात पहुँचा। वहाँ पर बडुगुण के भाई धकण ने छः सौ सोलह रुपये से इन्द्रपद पाया। साकरिया गोत्रीय सद्वन्पात्र ने एक सौ बालीस रुपयों में मन्त्रीपद प्राप्त किया। सप्त पासु भाक्क ने दो सौ बर्षीस में चमरधारियों के चारों पद लिये। सांगरा के पुत्र ने अस्ती रुपये मेंट चढाकर प्रतिहार का ओहदा प्राप्त किया। पासु पुत्र ने सचर रुपये देकर सारथि का स्थान ग्रहण किया। मां० राधक के पुत्र नानंबर ने अस्ती रुपयों में मंडारी का पद प्राप्त किया। बडुगुण ने बालीस रुपयों में छत्रपर पद प्राप्त किया। कां० पारस के पुत्र सोमाक ने पचास रुपयों में शिनिष्-बाहक का पद लिया। पदधारियों की तरफ से कुल तेरह सौ आठ रुपये संग्रह किये गये। बैसे सारे संच की तरफ से साढ़े पाँच हजार रुपये इकट्ठे किये गये।

वहाँ से चलकर सप्त शत्रुञ्जय महातीर्थ में पहुँचा। सा० मूलिग ने एक हजार चार सौ चौदह रुपये मेंट चढाकर इन्द्रपद को चारण किया। मह० देदाक के पुत्र माहं० पूनमसिंह ने आठ सौ रुपयों में मन्त्रि पद प्राप्त किया। मां० राजापुत्र इसल ने चार सौ बीस में मांडागारिक पद प्राप्त किया। सालक ने दो सौ चौदह में प्रतिहार का स्थान ग्रहण किया। मह० सांभत के पुत्र आन्हयसिंह ने दो सौ चौबीस में सारथि का स्थान पाया। सठ घसपात्र के पुत्र धीवाक ने एक सौ सोलह में छत्रपर का पद पाया। छो० दहड़ न दो सौ अस्ती में पारथिय पद लेकर अपने को कुतार्थ किया। पभासिंह ने एक सौ रुपये देकर पासकी बाहक का पद लिया। बडुगुण ने साढ़े चार सौ में आष चमरधारी क प्रतिष्ठित पद को प्राप्त करके अपने को सच का प्रीति पात्र बनाया। मां० राजाक ने तथा सा० रूपा ने सौ रुपयों में पीछे की ओर का चमरधारी का स्थान ग्रहण किया। इन उपर्युक्त सब पदों को पाँच हजार तीन सौ अड़तीस रुपये आय हुई। सा० पाछ भाक्क ने अड़तीस सेप्यमय ब्रमक से (१) मूलनायक युगादिदेव की सुखोत्पाटन मांसा ली। पद्क पुत्र सेठ दाहड़ ने तीन सौ चार में मूलनायक युगादिदेव की मांसा पहनी। माहं० देदा की माता हीरस भाषिका ने पाँच सौ रुपय में मखेबी स्वामिनी की मांसा पार्य। सेठ राजद्व की माता तीवी (१) भाषिका ने एक सौ बालीस में पुन्दरीक गजधर की मांसा ग्रहण की। उसके पुत्र मूलरात्र ने एक सौ सचर रुपयों में कपर्दियस की मांसा पहनी। इस प्रकार सप्त मिसा कर तीर्थ के खजाने में सचरह हजार रुपये इकट्ठे किये गये।

इसके बाद संच वहाँ से चलकर उज्जयन्त महातीर्थ में पहुँचा। वहाँ पर शाह भीपति ने इकीस सौ रुपये मेंट देकर इन्द्रपद, सेठ हरिपाल के पुत्र पूर्बपात्र ने छः सौ सोलह में मन्त्रि पद, सेठ रामद्व के पुत्र सख्य ने दो सौ बालीस में शिनिष्बाहक का स्थान, पाछ भाक्क ने दो सौ

नम्बे में प्रतिहार पद, मा० राजपुत्र अटा ने पांच सौ में मंडारी का पद, कां० मनोरथ ने दो सौ अठ में सप्तपि पद, सा० राजदेव के मठीजे सुवनाक ने षेड सौ में पारिषिय पद, सा० राजदेव के पुत्र सलख्या ने एक सौ चालीस में शिबिक्रवाइक का पद, बनदेन ने एक सौ तेरह में छत्रचर पद, सठ भीपति ने दो सौ में प्रथम चमरचारि पद और पचासी रुपये में चतुर्थ चरम चारिपद भी, वै० सा० बहुगुप्त ने एक सौ अठ में द्वितीय चमरचारि पद और नम्बे में तृतीय चमरचारि पद, वै० हांसिल पुत्र वै० देवड ने पांच सौ सोलह में श्री नेमिनाथ सुखोद्घाटन माता, सेठ अमयचन्द्र की माता तिहु अम्बपाल ही आबिका ने एक सौ चालीस में राजमति माता, सेठ भीपति की माता मोन्हा आबिका ने पैसीस में अम्बिका माता, पाम्हाय के पुत्र देवकुमार ने एक सौ चम्मालीस में सम्बमाता, शाह अमय चंद्र के पुत्र वीरचबल ने एक सौ अस्ती में प्रद्युम्न माता, सेठ राजदेव क माई मोलाक ने तीन सौ म्यारह में कन्यायाश्रयमाता, सेठ पाख की बहन रासल आबिका ने दो सौ चालीस में भीरमुञ्जय अम्बदेव माता, सेठ पाख की माता पाम्ही आबिका ने एक सौ चौबीस में मरुदेवी माता, सा० उद्या पुत्र मीमसिंह ने एक सौ अठ में पुन्डरीक माता, सेठ बखवास ने अबसोकनाशिखरमाता तथा साह राजदेव क माई गुद्याचर के पुत्र बीमड ने चौबीस रुपयों में कपर्दिचमाला ग्रहण की। इस प्रकार सब मिलाकर ७०६७ रुपये हुए। शम्भुअय तीर्थ के देवमंडार में बीस हजार और उज्जयन्त तीर्थ क देवकोय में सतरह हजार रुपये संग्रह किये गये।

भीमिनेश्वरधरिजी महाराज ने उज्जयन्त तीर्थ में भीनेमिनाथ स्वामी की मूर्ति क समथ बेट बदि में प्रबोधसमुद्र, विनयसमुद्र को दीया दी तथा मालारोपण आदि महोत्सव किया। इसके बाद संघ देवपचन में गया। वहाँ पर पठियाख (पटेख) और बाहिक जाति के लोगों ने विपुल धन संग्रह कर संघ को दिया और उस धन के द्वारा चतुर्विध संघ सहित भीमिनेश्वरधरिजी ने सकल लोगों का शिव करने क लिये 'चैत्यपरिपाठि' महोत्सव किया। ऐसा करने से पठियाख के वासी और उसका मासिक बहुत खुश हुए।

इस प्रकार मार्ग में स्थान-स्थान पर महाप्रभावना करने से संघ ने अपने अन्न और सामर्थ्य को सफल किया। महाराज ने मी बिधि-मार्गति, संघ के साथ तीर्थयात्रा निर्भिन्न समाप्त करके अपने चिर संकल्पित मनोरथ को सफल किया। सेठ अमयचन्द्र ने आषाढ़ सुदि नवमी के दिन चतुर्विध संघ सहित भीमिनेश्वरधरिजी महाराज का पासनपुर नगर में ऐसा प्रवेश महोत्सव कराया कि जिसे देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। इस प्रकार तीर्थयात्रा और नगर-प्रवेश दोनों ही वृत्त्यर्थ भीमिनेश्वरधरिजी महाराज के पुण्य प्रभाव से निर्विघ्ना के साथ सम्पन्न हुये। इस प्रसंग में दानवीर कर्मवीर सेठ अमयचन्द्र के गुणों का परिचय देने वाले श्लोक तथा उनका मायात धर्म किया जाता है—

सुमेरौ निर्मेरैरपि सपदि जग्मे तख्वरै—  
 धुंगव्या दिव्यन्ते सखिलनिधौ चिन्तामणिगणौ । (?)  
 कसौ काले वीक्ष्यानवधिममितो याचयगणं  
 न तस्यो केनाऽपि स्थिरमभयचन्द्रस्तु विजयी ॥  
 धैर्यं ते स विद्वोकतानभय ! य शैलेन्द्रधैर्योत्मना,  
 गाम्भीर्यं स तवेक्षता जखनिभेर्गाम्भीर्यमिच्छुक्ष य ।  
 भक्तिं देवगुरौ स पश्यतु तव श्रीधेष्णिकं पः स्तुते,  
 यात्रा तीर्थपतेः स वेत्तु भवतो यः स साप्रतीं शोप्सति ॥

[ कलियुग में शैलरफ अनगणित याचकों की फौज को देखकर कल्पद्रुम माग कर सुमेरु पहाड़ पर चले गये । क्षमभेजु और चिन्तामणि बौरा भी अपने-अपने स्थान पहुँच गये । याचकों की अधिकता को देखकर सभ की स्थिरता जाती रही । परन्तु हमें इस बात को प्रकाशित करते हुए महान् हर्ष होता है कि दानवीर विजयी अमयचन्द्र की स्थिरता न्यों की स्थीं रही । ]

हे अमयचन्द्र ! दर्राकों को आपका धैर्य विमाचल पहाड़ के समान दिखलाई देता है । जिस युद्ध को समुद्र के गाम्भीर्य का ज्ञान है, वही आपके गाम्भीर्य को मली-मांति अनुभव में ला सकता है । देवगुरु की भक्ति करने में आप भेषिक महाराज के समान यशस्वी हैं । जो युद्ध प्रियदर्शी राजा अशोक क पुत्र महाराज सम्प्रति की तीर्थ-यात्रा का बर्णन जानना चाहता है वह आपके द्वारा की गई तीर्थ यात्रा के बर्णन का मर्म समझे । ]

इसके बाद स० १३२८ वैशाख सुदि चतुर्दशी के दिन जालोर में सेठ बेमसिंह ने भीचन्द्रप्रम स्वामी की बड़ी मूर्ति की, मह० पूर्णसिंह ने अक्षयमदेव की और मह० श्रीगणेशदेव ने भी महावीर प्रतिमा की प्रतिष्ठा का महोत्सव किया । जेठ बदि ४ को हेमप्रभा को साष्ठी बनाया । स० १३३० वैशाख बदि ६ को प्रबोधमूर्तिगणेश को वाचनाचार्य का पद और कल्याण-श्रद्धि गणिनी को प्रवर्तिनी का पद दिया । तदनन्तर वैशाख बदि अष्टमी को सुबयागिरि में भी चन्द्रप्रम स्वामी महाराज की बड़ी प्रतिमा की स्थापना गिखर पर की ।

७० संसार के विष को चमत्कृत करने बाल शरित्रों को करते हुए भीमहावीर शासन की प्रमाचना को बड़ाव हुए, पत्नी दुर्ग आपदाओं की तरङ्गों से भयानक-संसार रूपी महासमुद्र में डूबते हुए माष्ठी समुद्र को बचान बाले, समस्त प्राणियों क मन में उत्पन्न होन बाले अनक विष मनोरथों

को कल्पवृक्ष की तरह पूर्वा करने वाले, अपनी बाल्यपद्धता से देवगुठ बृहस्पति को पराजित करने वाले, लोकोत्तर ज्ञानधन क महार, जाजालीपुर (जाजोर) में स्थित प्रसू भी जिनेश्वरसरिभी महाराज ने अपना मृत्युकाष्ठ निकट आया ज्ञानकर सरि—सब क सामने अनेक गुणों की खान बाधनाचार्य प्रबोध-सूर्यमणि को स० १३३१ आश्विन वदि पंचमी को अपने पाट पर अपने हाथ से स्थापित किया । उनका जिनप्रबोधसरि नाम दिया । पालनपुर में स्थित भीजिनरत्नाचार्य को यह संदेश मित्रवत्या कि—‘षातुर्मास के बाद सारे गन्ध और समुदाय के साथ जिनप्रबोधसरि का आचार्य पद स्थापना महोत्सव करना ।’ इसके बाद पूज्यभी ने अनशन ग्रहण कर लिया । और पंचपरमेष्ठी का ध्यान करते हुए, अनेक स्तोत्रों का पठन करते हुए, प्राणि मात्र से जमा-प्रार्थना करके द्युम ध्यान में निमग्न होकर आश्विन वदि ६ को दो पड़ी रात बीते बाद जिन शासन गगन के चमकते हुए चाँद भीजिनेश्वरसरिभी महाराज सदा के सिये इस संसार को त्याग कर स्वर्गीय देवों से परिचय बढ़ाने के लिये यह हीला संबरण करके स्वर्गधाम को पधार गये ।

प्रसन्न होने पर रत्ना-प्रभा आदि सारे समुदाय ने एकत्रित होकर गाछे बाछे के साथ भी-पूज्यभी का दाह संस्कार किया । सर्व समुदाय की सम्मति से सेठ जेमसिंह ने धिता-स्नान पर भी पूज्यभी की यादगारी में एक सुन्दर स्तूप बनवा दिया ।



## आचार्य जिनप्रबोधसूरि

षाहुर्मास समाप्त होने पर श्रीजिनरत्नाचार्यजी आवासीपुर आ गये। वे श्रीजिनेश्वरहरिजी महाराज की आज्ञानुसार श्रीजिनप्रबोधहरिजी के पद स्थापना की सांज्ञोपासना के लिये महोत्सव की श्रेष्ठा करने लगे। भावकों की ओर से आर्मंत्रक पत्रिका पाकर चारों दिशाओं से अनेक नगरोंपनगरों के लोग आकर जुट गये। धीचन्द्रकिलकोपाष्याप, श्रीसप्तमीकिलकोपाष्याप, वाचनाचार्य पद्यदेवगण्डि आदि मुख्य-मुख्य साधु लोग भी आये। प्रतिदिन दीन अनाथबुद्धियों को दान दिया जाने लगा। खान-पान-मिष्ठान आदि सुख साधनों से आगन्तुक चतुर्विध संघ का भ्रमर सत्कार होने लगा। लोयों के मन-मयूर को आनन्दित करने के लिये मेघादम्बर के समान नाना प्रकार के नाच-छूट खेल किये जा रहे थे। उसी समय सं० १३३१ से फल्गुन वदि अष्टमी रवि के दिन गण्ड के नियन्ता, ब्यबहार पद, बयोहृद श्रीजिनरत्नाचार्यजी ने श्रीजिनप्रबोधहरिजी की पद स्थापना की। इसके बाद फल्गुन सुदि पंचमी के दिन स्थिरकीर्ति, सुकनकीर्ति दो मुनियों और केवलप्रभा हर्षप्रभा, वपप्रभा, पशुप्रभा नामक तीन साधियों को जिनप्रबोधहरिजी ने दाया दी।

सं० १३३२ जेठ वदि प्रतिपदा शुक्रवार के दिन भी आवासीपुर में सभी देशों से आये हुए भी संघ के मेले में भावक शिरोमणि भी सेठ चेमसिंह ने नमि-निमि सहित भीष्मवन्देवकी, भी महावीर स्वामी, अमलोकना शिखर, भीनेमिनाथजी, शान्-प्रद्यम्न, श्रीजिनेश्वरहरिजी, चन्द्रवच और सुवर्ष गिरि में स्थित भीचन्द्रप्रम स्वामी और बैजयन्ती की मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई। उसी अवसर पर दिङ्गी निवासी दलिकरु भावक ने भीनेमिनाथ स्वामी की, सेठ हरिचन्द्र भावक ने शान्तिनाथ मगवान् की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई। इस प्रकार और भी देवमूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई गई। जेठ वदि ६ को सुवर्षगिरि में भीचन्द्रप्रम स्वामी की पञ्चाक्ष आरोपण किया गया। जेठ वदि नवमी के दिन स्तूप में श्रीजिनेश्वरहरि की मूर्ति स्थापित की गई। उसी दिन विमलप्रज्ञ मुनि को उपाष्याप पद, राजविलक को वाचनाचार्य का पद प्रदान किया गया। अठ सुदि द्वातीया के दिन गण्डकीर्ति, चारित्रकीर्ति, चेमकीर्ति नामक मुनियों को और लम्बिमाला, पुण्यमाला नामक साधियों को दीक्षित किया गया।

सं० १३३३ माघ वदि १३ को आवासीपुर में कुरासमी गण्डिनी को प्रवर्तिनी पद दिया गया। इसी वर्ष सेठ विमलचन्द्र के पुत्र सेठ चेमसिंह और सेठ चाहड़ के द्वारा बनाये हुए कार्यक्रम का अनुसार और इन्हीं दोनों भावकों द्वारा मार्ग-प्रबन्ध करने पर सेठ चेमसिंह, सा० चाहड़, हेमचन्द्र, हरिपाल, दिङ्गी निवासी जेणू सेठ के पुत्र सेठ पर्सवाल, सोनी घांसल के पुत्र मीमसिंह, राजा क

मन्त्री वेदा के पुत्र मन्त्री महारासिंह आदि सब दिशाओं से आकर इकट्ठे हुए विधि सब ने, शत्रुञ्जय आदि महालीयों की यात्रा के लिये महाराज से अनुरोध किया। सब को प्रार्थना अङ्गीकार करके जिनरत्नाचार्य, लक्ष्मीविलासकोपाध्याय, विमलप्रज्ञोपाध्याय, बाचक पद्मदेवगणेश, वा० रामविलासभास्ति आदि सचर्यस साधु, प्रवर्तिनी ज्ञानमाला गण्डिनी, प्र० कुशलभी, प्र० कल्याणभद्रि आदि पन्डित साध्वियों को साथ लेकर गुरु भीजिनप्रबोधसरिजी चैत्र बदि पंचमी के दिन बाबा सीपुर से तीर्थ-यात्रा के लिये चल पड़े। भीसंप ठौर-ठौर चमत्कार करने वाली विधिमार्ग की प्रमाणा करता हुआ भी भी मास पहुंचा। वहां पर शान्तिनाथ मगवान् के विधिवैत्य में इस आये हुए विधि सब की तरफ से चौदह सौ चौदह रुपये मंदिर के फल में दिये गये।

इसी प्रकार पालनपुर बगीरह में बड़े विस्तार से वैत्यपरिपाटी आदि कर्मों से प्रमाणा करके संप भी तारण तीर्थ पहुँच गया। वहां पर सेठ निबदेव के पुत्र साहू हेमा ने ग्यारह सौ चौदह रुपये में इन्द्रपद ग्रहण किया। इन्द्र परिवार ने इककीस सौ देकर मंत्री पद प्राप्त किया। इस प्रकार सारे मिलाकर कोश में पाँच हजार दो सौ चौदह रुपये की आय हुई। भीसप ने बीजापुर पहुंच कर माता आदि ग्रहण करके श्रीवासुपूज्य विधिवैत्य के कोश में चार हजार रुपये प्रदान किये। इससे आगे चलकर स्तम्भनक महातीर्थ में गोठी सेमर के पुत्र यशोबल ने ग्यारह सौ चौदह रुपये देकर इन्द्रपद, इन्द्र परिवार ने बीस सौ देकर मन्त्री आदि के पद प्राप्त किये। भीसंप की ओर से कुछ आय सात हजार रुपये की हुई। इसी प्रकार सुगु कच्छ तीर्थ में भीसंप ने चार हजार सात सौ रुपये मेंट बढ़ाये।

भीशत्रुञ्जय तीर्थ में युगादिदेव मगवान् के मंदिर में दिल्ली वाले सेठ पूर्णपाल ने पचीस सौ में इन्द्रपद, इन्द्र परिवार ने तीस हजार में मन्त्री आदि के पद लेकर सेठ हरिपाल ने माता पदन कर बैपलीस सौ प्रदान किये। कलश आदि की बोली बोलकर अन्य भावकों ने पचीस हजार रुपये दिये। इस प्रकार दान देकर भीसप ने द्रव्य का सदुपयोग करके अक्षय कीर्ति उपार्जन की।

वहां पर युगादिदेव श्रीचपमनाथ मगवान् की मूर्ति के सामने भीजिनप्रबोधसरिजी ने छेठ बदि सप्तमी को बीजानन्द साधु तथा पुष्पमाला, यशोमाला, धर्ममाला, लक्ष्मीमाला साध्वियों को रीवा दी और विधिमार्ग की प्रमाणा के लिये मास्तरपद आदि महोत्सव भी बड़े विस्तार से किया। भी भेषासप्रभु के विधिवैत्य में भीसंप ने सात सौ आठ रुपये दिये। इसके बाद गितार (उज्जयन्त) तीर्थ में सेठ मूलाग के पुत्र कुमारपाल ने साढ़े सात सौ में इन्द्र पद लिया। इन्द्र भावक के परिवार वालों ने साढ़े इककीस सौ में मन्त्री आदि पद प्राप्त किये। सेठ हेमचन्द्र ने अपनी माता राहू के बाले दो हजार में नेमिनाथ मगवान् की माता को। इस प्रकार सारी आमदनी का टोटल वैस हार रुपये वहां के कोश में संग्रहित हुए।

इस प्रकार तीर्थों में, गाँवों में, नगरों में, शहरों में, प्रबचन, उत्सव आदि विविध प्रभावनाओं से अपना जन और अन्य सफल करके तीर्थयात्रा की पूर्ति से सफल मनोरथ होकर श्रीसप्त बाहौर भा पहुँचा। सेठ चैतसिंह ने आषाढ़ सुदि चतुर्दशी के दिन चतुर्विध संघ सहित, देवों से भी मंत्र रहित ऐसे भीषिनप्रबोधसुरिणी का नगर प्रवेश विधिभार्या की प्रभावना के लिये निर्विभ्रता पूर्वक करवाया। यह प्रवेश महोत्सव तब तक चरख-बाँद रहें, तब तक समस्त सप्त को ममोद देने वाला हो।

७३ सं० १३३४ मार्गसिंह सुदि १३ दिन रत्नवृत्तिगङ्गिनी को प्रवृत्तिनी पद दिया गया। छन्दन्तर भी मपल्ली नगरी में बैशाख बदि पचमी के दिन सेठ रामदेव ने भी नेमिनाथ स्वामी, श्रीयार्वर्धनाथ स्वामी, भीञ्जिनदचरि की मूर्तियों की प्रतिष्ठा तथा भीशान्तिनाथ देव के मंदिर पर इष्ट-पूजा का आरोपण किया। इसी प्रकार सब समुदायों को सुलाकर महोत्सव के साथ सेठ स्वयं के भीगौतम स्वामी मूर्ति की प्रतिष्ठा की। बैशाख बदि नवमी के दिन मंगलकलश साधु को दीया ही गई। इसके बाद जेठ सुदि द्वितीया के रोज पूज्यभीषी महाराज बाङ मेर की ओर बिहार कर गये। वहाँ पर सं० १३३५ में मार्गसिंह बदि चतुर्थी के दिन पद्मकीर्ति, सुषाकलश, सिलककीर्ति, सखीकलश, मेमिप्रम, हेमविलक और मेमिविलक साधुओं को बड़े समारोह से दीवित किया।

७४ पौष सुदि नवमी को वहाँ से चिचौड़ की ओर बिहार कर गये। चिचौड़ में सोनी भीषाबल और उसके पुत्र भा० बाहड़ आबक ने सारे समुदाय तथा राजा-राईस-नागरिक लोगों के साथ बड़ी सम्रघ्न से महाराज का नगर-प्रवेश महोत्सव करवाया। फागुन सुदि पचमी को भी संभरसिंह महाराज के रामरान्य में आस-पास के नगरों एवं ग्रामों से आने वाले लोगों को मेला लग गया। इसके अलावा चिचौड़ में रहने वाले ब्रह्मसू, बटाघर-ठपरबी राजपुत्र, प्रधान चैत्रसिंह, कर्बाराज आदि सुख्य-सुख्य नागरिक लोगों की उपस्थिति में महोत्सव हुआ। स्थानीय एकदश मन्दिरों के एकदश छत्रों सहित पालकियों से नगर की शोभा बढ़ रही थी। ठौर-ठौर पर बारह प्रकार के नाँदी निनाद हो रहे थे। यात्रकों के मनोरथों को पूर्ण करने वाला दान दिया जा रहा था। उस समय चिचौड़ के पौराधी नामक मोहनस में लोगों के चिच में आश्चर्य पैदा करने वाली अलपय्या के साथ भीमनिमुग्रत स्वामी, युगादिदेव भी अञ्जितनाथ स्वामी, बसुपूज्य भगवान् की प्रतिमाओं तथा भी महाबीर समवसायको स्थापना की गई। इसके साथ ही सेठ घनपद के पुत्र सेठ समुद्र से बनवय गये और पूजगिरि में स्थित शांतिनाथ बिधिषेय में पिषलमय शान्तिनाथ स्वामी का समवसरण एव शम्भु आदि अन्य मूर्तियों का तथा दहधारी डारपाल प्रतिमाओं का विधिभाग के अय-अय-कार के साथ बड़े विज्ञान से प्रतिष्ठा महात्सव करवाया गया। उसी दिन पौराधी मोहनसे में भीष्मपनाथ और नेमिनाथ स्वामी की मूर्ति की स्थापना हुई। फागुन सुदि पचमी को ही उठी

भारती मोहम्हले में भी अपमदेव, नेमिनाथ, पार्ष्णाथ, शाम्भ, प्रद्युम्न मुनि, अम्बिका और अन्तर  
ही अम्बिका देवी के मन्दिरों में अज्ञा चढने के निमित्त एक बहुत बड़ा अपूर्व दर्शनीय महोत्सव  
किया गया। इस महोत्सव में सार रान्य के मार को बहन करने वाले महाराज कुमार भी अरिस्त्रिहवी  
की उपस्थिति से और विशेषता आ गई थी। इन सभी महोत्सवों में धन तो पचासत की ओर से लुप्त  
किया गया था, परन्तु सोनी सेठ धाँसलजी और उनके पुत्र बाहड़ ने पूर्ण परिभ्रम करके उत्सव  
को सफल बनाया था।

इसके बाद पूज्यभी बहू दहा गाँव में पधारे। वहाँ पर जिसकी प्रतिष्ठा कमी भी जिन दत्त सरि की  
महाराज ने करवाई थी, उसी भीपार्ष्णाथ विधिधैत्य का बीर्षोद्धार महण, म्हांमख आदि पुत्रों के  
विवाही सेठ आन्हाक ने करवाकर, उस पर विचौड़ में प्रतिष्ठित अज्ञ-दंड का आरोपण फागुन सुदि  
पसुर्दशी को विस्तार से करवाया। महाराज वहाँ से जाहोड़ा गाँव में गये। वहाँ पर सेठ कुमार  
आदि अपने कुटुम्बियों के साथ सोमल भावक ने चैत सुदि तेरस के दिन सम्पत्स्वारोपादि नन्दि  
महेत्सव किया। इसके बाद बर दिये स्नान में वैशख बदि ६ को भीपुन्डरीक, भीगौतमस्वामी,  
प्रद्युम्न मुनि, विनयप्रबोधसरि, भीजिनदत्तसरि, जिनेस्वामि और सरस्वती की मूर्तियों का मलयात्रा  
महोत्सव का साथ निर्दिष्टता से प्रतिष्ठा-महोत्सव सम्पन्न किया गया। वैशख बदि सप्तमी को मोह  
विषय तथा मुनिब्रह्म को दीक्षा दी गई और हेमप्रमगण को बाचनाचार्य पद दिया।

७४ सं० १३३६ सेठ सुदि नवमी को युगप्रबल भी आचार्यरचित\* मुनि के चरित्र को याद  
करते हुये भीपूज्यकी ने अपने पिता सेठ भीचन्द्र का अन्त समय जानकर शीघ्रतया विचौड़ से  
पलकर पालनपुर आकर उहाँ दीक्षित किया। उस समय माग्य से देवपुत्रनीय कोमलगच्छ के  
बहुत से भावक वहाँ आगये थे। सेठ भीचद के धन से दान और अनाथ लोगों के मनोरथ पूर्ण  
किये गये थे। सेठ ने दान योग्य सातों क्षेत्रों में अपने धन को देकर अपने को सफल कर दिया  
था। संपन्न धारण के समय बारह प्रकर का नादि निनाइ हो रहा था। सेठ भीचदजी निरन्तर शुद्ध  
श्रीत रूपी अलकर को धारण किये हुये थे। पुण्यराग (प्रेम) रूपी अङ्गराग-केमरादि लेप से उनका  
शरीर सुवासित था। व अनेक प्रकर के स्वाध्याय रसरूपी धाम्पून से रचित सुल बाल थे। इन  
पुण्यप्रमा भीचद ने ( विनय दीक्षित दूरा नाम भोकरुण रक्खा गया था ) एक प्रकर के पुरोहित  
सोमदेव का चरित्र प्रगट कर दिया, क्योंकि उ होंने ने भी अन्त समय में अपने पुत्र से दीक्षा धारण  
की थी। इन महत्मा भीचदजी ने अपने बढते हुए धैर्य से तीव्र अविधन के समान पापियों  
को दूष्पत्य साधुवत को धारण करके सत्रह दिनों में सत्रह प्रकर के असयम को निर्दलित करने  
के अपूर्व चरित्र के द्वारा लोगों को आश्चर्य चकित कर दिया। उन्होंने अविचार रहित प्रत्याम्प्यान

\* आचार्यरचित मुनि ने भी अपने पिता पु

इस प्रकार धीरों में, गांधों में, नगरों में, शहरों में, प्रबचन, उत्सव आदि विविध प्रमाणाओं से अपना धन और अन्न सफल करके तीर्थयात्रा की पूर्ति से सफल मनोरथ होकर श्रीसय बाहौर आ पहुँचा। सेठ चैतसिंह ने आयात सुदि चतुर्दशी के दिन चतुर्विध सय सहित, देवों से भी भव इहित ऐसे भीजिनप्रबोधसरिबी का नगर प्रवेश विधिमाग की प्रमातना क सिये निर्विभ्रता पूर्ण करवाया। यह प्रवेश महोत्सव अब तक खरम-बाँद रहे, तब तक समस्त सय को ममोद देने जाता हो।

७३ स० १३३४ मार्गसिर सुदि १३ दिन रत्नहृष्टिगखिनी को प्रबतिनी पद दिया गया। तदनन्तर भीमपट्टी नगरी में बैशाख बदि पचमी के दिन सेठ रामदेव ने भी नेमिनाथ स्वामी, श्रीपार्वनाथ स्वामी, भीजिनदचसरि की मूर्तियों की प्रतिष्ठा तथा भीशान्तिनाथ देव क मंदिर पर दूध-ज्यवा का आरोपण किया। इसी प्रकार सब समुदायों को बुलाकर महोत्सव के साथ सेठ कप क ने भीगौलम स्वामी मूर्ति की प्रतिष्ठा की। बैशाख बदि नवमी के दिन मंगलकलश साधु को दीया ही गई। इसके बाद जेठ सुदि द्वितीया के रोख पूज्यभीमी महाराज बाइमेर की ओर बिहार कर गये। वहाँ पर स० १३३५ में मार्गसिर बदि चतुर्थी के दिन पणकीति, सुभाकलश, सिलककीति, लक्ष्मीकलश, नेमिप्रम, हेमस्तिक और नेमितिलक साधुओं को बड़े समारोह से दीक्षित किया।

७४ पौष सुदि नवमी को वहाँ से चिचौड़ की ओर बिहार कर गये। चिचौड़ में सोनी श्रीधरवल और उसके पुत्र मा० बाइइ भाबक ने सारे समुदाय तथा राजा-रईस-नागरिक लोगों के साथ वही समय से महाराज का नगर-प्रवेश महोत्सव करवाया। फागुन सुदि पचमी को श्रीसमरसिंह महाराज के रामरान्य में आस-पास के नगरों एवं ग्रामों से आने वाला लोगों को मेला लग गया। इसके अलावा चिचौड़ में रहने वाले ब्रह्मख, खटापर-तपस्वी रामपुत्र, प्रधान चैतसिंह, कर्बाराज आदि सुम्प-सुण्य नागरिक लोगों की उपस्थिति में महोत्सव हुआ। स्थानीय एकादश मन्दिरों के एकादश छत्रों सहित पालकियों से नगर की शोभा बढ़ रही थी। ठौर-ठौर पर बारह मकर के नांदी निनाद हो रहे थे। यापकों के मनोरथों को पूर्ण करने वाला दान दिया जा रहा था। उस समय चिचौड़ के पौराधी नामक मोहल्ले में लोगों के धिच में आभय पैदा करने वाली अतयाता के साथ भीमनिमुप्रत स्वामी, सुगादिदेव श्री अजितनाथ स्वामी, बसुपुण्य भगवान् की प्रतिमाओं तथा श्री महावीर समवसरखकी स्थापना की गई। इसके साथ ही सेठ धनचंद के पुत्र सेठ समुद्र से बनबये गये और पूषणिरि में स्थित शान्तिनाथ विधिचेत्य में विचलमय शान्तिनाथ स्वामी का समव सरख एव शम्भ आदि अन्य मूर्तियों का तथा दूधचारी द्वारपाल प्रतिमाओं का विधिमाग के बय-जय-कार के साथ बड़े विहार से प्रतिष्ठा महोत्सव करवाया गया। उसी दिन पौराधी मोहल्ले में धीक्षपमनाथ और नेमिनाथ स्वामी की मूर्ति की स्थापना हुई। फागुन सुदि पचमी को ही उसी

महामंत्री विन्ध्यादित्य, ठाकुर जयदेव आदि राज्य के कर्ता स्वयं शूलस क्य संघासन कर रहे थे। आनन्द-परबस पुरवासी सभी संप्रदायों के लोगों ने अपने हाट आदि स्थानों की दीवारों पर मालायें सबर्ष भी और देवमन्दिरों में सभी जगह शामियाने लाने लगे थे। उस समय सारे भूमण्डल पर भास्वर्ष पैदा करने वाला, मध्य लोगों के मन को हरने वाला साङ्गोपाङ्ग अलानयन महोत्सव अभूतपूर्व हुआ। दूसरे दिन मो उसी प्रकार महोत्सव होने लगे। जगह-जगह सदासर्व दिये जा रहे थे। सब जगह अहिंसा की घोषणा कर दी गई थी। ऐसे शुभ अवसर पर चौबीस दिन प्रतिमाओं का, पञ्च-दण्डों का, जोयला के वास्ते भीपार्ष्वनाथ का और बहुत-सी दिन प्रतिमाओं का प्रविष्टा महोत्सव विधिमार्ग के जय-जय घोष के साथ किया गया था। इस उत्सव के समय कृष्ण नाम के पवित्र ने भी पञ्चि का प्र बो प, भी वृ च प्र बो प, भी धौ द्वा पि कर वि ब र शक आदि भीपूज्यभी रचित प्रन्थों को देखकर, उत्साहित चित होकर तुरगपद समस्या, अतुलोम, प्रतिलोम आदि अनेक प्रकार से कहे हुए श्लोकों को सम्पूर्णा रूप से कहना आदि अनेक अवधान करके दिखलाय। उसने अनेक पवित्र तथा मंत्री विन्ध्यादित्य आदि उच्च श्रेणी के पुरुषों से मरी हुई समा में अनेक छन्दों में बनाये हुए पवित्र श्लोकों से भीपूज्यभी की स्तुति की। उस उत्सव में किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित नहीं हुआ, इसका एक-मात्र कारण भीपूज्यभी का वह वज्र समान जय-तप-ध्यान है जिसके द्वारा कलिकास्तोत्रम प्रत्यूह समूह-शैल निर्दलित हो गया है। ये पूर्वोक्त सभी महोत्सव सेठ हेम और आसपास आदि सकल संघ ने अपने छात्रों रुपये खर्च करके असार संसार को सफल बनाने के लिये किये थे। इस महोत्सव के समय भीवासुपूज्य विधिवैत्य में सच की ओर से तीस हजार रुपये दिये गये थे। वहाँ पर द्वादशी के दिन आनन्दमूर्ति तथा पुण्यमूर्ति नामक दो मूर्तियों को दीक्षा दी गई थी। इसके निमित्त खाशा महोत्सव भी हुआ था।

७= सं० १३३६ फागुन सुदि ५ के दिन, मंत्री पूर्णसिंह, मंडौरी राजा, गो० विसहड़ और देव-सिंह, मोहा आदि की प्रधानता में आयें हुये जा बा ली पुर के संघ के अतिरिक्त, प्रह्लाद न पुरी य, धी वा पुरी य, राम श य नी य, भी श म्पान य नी य, बा ड मेरी य, भी रत्न पुरी य आदि अनेक संघों के पांच सौ गाड़ इकट्ठे हुए थे। इन सब संघों को साथ लेकर तथा जिनरत्नाचार्य, देवाचार्य, शास्नाचार्य विवेक-सुप्रगम्य आदि नाना मूर्तियों को साथ लेकर तामस-अज्ञान पटलों को हटाने वाले, समस्त अनता के बदनरुपी कुसुदनी को विफसित करने वाले, सम्पूर्णा मनुष्यों के नेत्र चक्षुओं को बाष्मय-अमृत-वर्षा से आनन्दित करने वाले, प्रति-ग्राम तथा प्रति-नगर में विधिमार्ग के जय-जयकर के साथ अपने एर्ष्य को सकल करने वाले, पवित्रता की मूर्ति भीमिनप्रबोधहरिमी महाराज ने फागुन चातुर्मास में अतीव रमयायता धारण करने वाले, सर्वविरव के सारभूत, परबोचन आयु पहाड़ में जाकर वहाँ पर विराजमान भीष्मपमनाथ और नेमिनाथ-तीर्थहरों को बन्दना की। वहाँ पर आनन्द-मघ

• बर्तमान में ये तीनों ही मग्य दुष्प्राप्य हैं।

क्रिये थे। नई-नई आराधनाओं का अमृत पान किया था। खमत्त तीर्थयात्रा के लिये जाने वाले अनेक सभों के मन्त्रजनों को घर्मसामपूर्वक आशीर्वाद देकर पवित्र किया था। ये साधुओं में सब के समान थे। दोषा भरख करने के कारण ये अपने कुल रूपी महल के सुवर्ण कलश होगये थे। इन महासुनि भीकन्तशशी ने वर्षपरमण्डि महामन्त्र के ध्यान को स्वर्ग में चढ़ने के लिये सोपान-रुचि बनाकर स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया।

७६ सं० १३३७ में वैशाख बदि नवमी को गुठ भीक्षिनप्रबोधखरिबी महाराज ने अपने खरखिन्यास से समस्त गुजरात प्रान्त में प्रधान नगर बीजापुर को पवित्र किया। इस काम अखर में सेठ मोहन, सेठ आसपाल आदि समुदाय के मुख्य-मुख्य लोग और मंत्री विन्ध्यादित्य, ठाकुर उदयेश भा० लक्ष्मीधर आदि राज के मुखिया लोग तथा अन्य नागरिक महाराज लोगों के संगठित होने पर सब मनुष्यों के आनन्ददायी बारह प्रकार के नन्दि पात्रों के गुजार में, अनेक बारांगनयों ठौर-ठौर अपनी नृत्यकला का परिचय दे रही थीं। इन के लोभो माट लोग ऊँचे स्वर से स्तुति गान कर रहे थे। उच्चम उपदेश से आनन्दित मन्त्री विन्ध्यादित्य, ठा० उदयदेश आदि राजप्रधान पुरुषों के द्वारा उनकी प्रशंसा हो रही थी; उ होने विनेश्यों की तरह स्वेत छत्र धारण कर रक्खा था। सारे नगर में स्थित देवाधिदेवों को वे नमस्कार करते जाते थे। इस प्रकार पूज्यमी का प्रवेश महोत्सव बड़े ठाठ-ठाट से हुआ। उत्कृष्ट मिष्यास्य के कारण आम्र से पहले कमी इस प्रकार का प्रवेश महोत्सव इस शहर में नहीं देखा था। इसीलिये नगरवासी समस्त सुन्दरियों के मन में इसका देखने से घीम पैदा हुआ। इस उत्सव के प्रभाव से स्थानीय तमाम विभ टल गये। कई करखों को लेकर यह महोत्सव लोकोचर हुआ। भावकों ने मूक-इत्य होकर इसमें प्रचुर धन खर्च किया था, इसलिये इसमें अच्छा रंग आगया था।

७७ तदनन्तर वेठ बदि चौम शुकवार का दिन आया। श्री सारगदेव महाराजाधिराज के रामराज्य में महामात्य मल्लदेव और उनके समान बुद्धिसागर उपमन्त्री विन्ध्यादित्य का कार्यक्षल था। सकल पृथ्वी की सारभूत गुजरात भूमि रूपी स्त्री के पुर-ग्राम आदि अलङ्कृत थे। उन सब में सुन्द के समान बीजापुर नगर था। उस नगर में माणिक्य के समान भीवासुपूज्य विधिबैस्य था। उस पैत्य क दर्शनार्थ बड़ यात्र से अनेक देशों से आने वाले सम्पत्तिशाली भीसंच का मेला लगा। इस मले में पाषक लोगों स बजाये जाने वाले नन्दी पात्रे के निनन्द से दिग्-मङ्गलानाओं के कर्त्त-किर पुरित हो रहे थे। रोमांच और हर्ष पैदा करन वाली विरुदावली को इधारों आदमी पढ़ रहे थे। ठार-ठौर पर प्रसुदित मनुष्य रासलीला कर रहे थे। पर-पर सुन्दर मडप रचाये गये थे। महाविष्यास्य और महामाह आदि रूपी प्रबल शत्रुओं को पछाड़ने वाले तथा त्रिनशासन के सम्म-स्वरूप महाराज के आगे आगे छत्र चपर-पासरी आदि चल रहे थे। उत्सव में सुख के आगे आगे विपमान

महामंत्री विन्ध्यादित्य, ठाकुर जयदेव आदि राज्य के कर्ता स्वयं शूलस का संचालन कर रहे थे। आनन्द-परबरा पुरवासी सभी संप्रदायों के लोगों ने अपने हाट आदि स्थानों की दीवारों पर मालायें सज्जई थीं और देवमन्दिरों में सभी जगह शामियाने लाने गये थे। उस समय सारे भूमण्डल पर आश्चर्य पैदा करने वाला, मध्य लोगों के मन को हराने वाला साङ्गोपाङ्ग कलालयन महोत्सव अभूतपूर्व हुआ। दूसरे दिन भी उसी प्रकार महोत्सव होने लगे। जगह-जगह सदावर्त दिये जा रहे थे। सब जगह अईसा की घोषणा करदी गई थी। ऐसे हुए अबसर पर चौबीस दिन प्रतिमाओं का, पत्र-दण्डों का, घोषणा के बास्ते धीपारवनाथ का और बहुत-सी दिन प्रतिमाओं का प्रविष्टा महोत्सव विधिमाता के अय-अय घोष के साथ किया गया था। इस उत्सव के समय कृष्ण नाम के पवित्र ने भी पंक्ति का प्रबोध, भी वृत्त प्रबोध, भी शौद्धा विचार विचार शक आदि भीपूज्यभी रचित ग्रन्थों को देखकर, उस्ताहित विद्य होकर तुरगपद समस्या, अनुलोम, प्रतिलोम आदि अनेक प्रकार से कहे हुए श्लोकों को सम्पूर्णा रूप से कहना आदि अनेक अवधान करके दिखलाय। उसने अनेक पवित्र तथा मंत्री विन्ध्यादित्य आदि उच्च श्रेणी के पुरुषों से मरी हुई समा में अनेक छन्दों में बनाये हुए पवित्र श्लोकों से भीपूज्यकी की स्तुति की। उस उत्सव में किसी प्रकार का विष उपस्थित नहीं हुआ, इसका एक-मत्र कारण भीपूज्यकी का वह वज्र समान अय-अय-भ्यास है जिसके द्वारा क्लृप्तकालोत्सव प्रसूह समूह-शैल निर्दलित हो गया है। ये पूर्वोक्त सभी महोत्सव सेठ हेम और आसपाल आदि सफल सपने अपने जालों रूपये खर्व करके असार संसार को सफल बनाने के लिये किये थे। इस महोत्सव के समय भीवासुपूज्य विधिचित्य में सप की ओर से तीस हजार रूपये दिये गये थे। वहीं पर द्वादशी के दिन आनन्दमूर्ति तथा पुण्यमूर्ति नामक दो मुनियों को दीक्षा दी गई थी। इसके निमित्त खाशा महोत्सव भी हुआ था।

७८ सं० १३३६ फागुन सुदि ५ के दिन, मंत्री पूर्वसिंह, मंडारी राजा, गो० जिसहड़ और देव-सिंह, मोहा आदि की प्रधानता में आये हुये जाबासीपुर के संघ के अतिरिक्त, प्रह्लाद नपुरीय, वीजापुरीय, रामशयनीय, भीशम्यानयनीय, बाइमेरीय, भीरत्नपुरीय आदि अनेक संघों के पाँच सौगाड़ इकट्ठे हुए थे। इन सब संघों को साथ लेकर तथा जिनरत्नाचार्य, देवाचार्य, वाचनाचार्य विवेक-समुद्रगच्छि आदि नाना मुनियों को साथ लेकर तामस-अज्ञान पटलों को हटाने बाल, समस्त अनता के बदनरूपी कुसुदनी को विकसित करने बाले, सम्पूर्णा मनुष्यों के नेत्र चकोरों को बाह्य-अमृत र्णा से आनन्दित करने बाले, प्रति-ग्राम तथा प्रति-नगर में विधिमाता के अय-अयकर क साथ अपने पंचर्य को सफल करने बाले, पवित्रता की मूर्ति भीजिनप्रबोधसरिणी महाराज ने फागुन चातुर्मास में अतीव रमणीयता धारण करने बाले, सवत्रिद के सारभूत, पर्वतोत्थम आधु पहाड़ में आकर वहाँ पर विराजमान भीअपमनाय और नेमिनाय-दीर्घधरो को बन्दना की। यहाँ पर आनन्द-मंत्र



भावक लोग अपने घरों की विन्ता-फिकर भूल गये। घन सर्षप करके पुण्यमानुष की पुण्य का सचय करने वाले भावक लोग त्रिलोकी में अपने को घन्य मान रहे थे। इस उत्सव में आठ दिनों का समय लगा। इन दिनों में इन्द्रादि पद लेख्य भावक लोगों ने सात हजार रुपये संग्रह किये। तदनन्तर पूज्यभी के प्रताप से अपने बन्धु और वैभव को सकल करने वाले, दुर्गसि-दसन करने वाले तथा बड़े-बड़े मनोरथों को पूया करने वाले भीसच ने आनन्द पूर्वक नगर-प्रवेश महोत्सव के साथ जावालिपुर में प्रवेश किया।

७६ उसी वर्ष जेठ वदि चौथ के रोज जगन्नाथ मुनि और हनुमदलक्ष्मी, सुभमलक्ष्मी नाम की साध्वियों को दीपा दी गई और पंचमी के दिन चन्दनसुन्दरी गखिनी को महारा पद दिया। 'चन्दनभी' यह नामान्तर रक्खा गया। इसके बाद सम्मुख आये हुए भीसोम महाराज की वीनति स्वीकार करके पूज्यभी ने भी शम्यलपन में चातुर्मास किया। तदनन्तर अतुल बलशाली राजाओं के मुकुटों में लगे हुए रत्नों की किरणों के वासीय प्रवाह से निज चरण-कमलों को परलिय करने वाले, मध्य लोगों को सम्पत्त्व सम्पादित करने वाले, भी नैसलमेर नरेश कर्षदेव महाराज सम्पूर्ण सेना-सलदन के साथ मुनीन्द्र के स्वागत के लिये पधारे। मुनीन्द्र भी जिनप्रथोप खरिजी महाराज का बैसलमेर में स० १३४० फागुन महीने में बड़े समारोह के साथ नगर प्रवेश महोत्सव हुआ।

वहाँ पर वैशाख सुदि अष्य वृषीयाक दिन उषापुर, विक्रमपुर, जावालिपुर आदि स्थानों से आये हुये सचक मल में सर्वसमुदाय सहित सेठ नेमिकुमार और गण्यदेव ने विपुल घन ध्यय करके चौबीस जिनमन्दिर तथा अष्टापदादि तीर्थों की प्रतिमाओं का और चञ्च-दण्डों का प्रतिष्ठा महोत्सव किया। इस अवसर पर घर्म कोप में छा: हजार रुपयों की आप हुई। जेठ सुदि चतुर्थी के दिन मेरु-कलश मुनि, धर्मकलश मुनि, लम्बिकलश मुनि तथा पुण्यसुन्दरी, रत्नसुन्दरी, सुवनसुन्दरी, हर्ष-सुन्दरी का दीपामहोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। भी कर्षदेव महाराज का विशेष आग्रह होने से वहाँ पर चातुर्मास करके नाना प्रकार के धर्मोपदेशों से नागरिक लोगों के मन में चमरदार पैदा करके पूज्यभी न भीविक्रमपुर से आये हुए सच की शार्पता से विक्रमपुर वाकर वहाँ पर प्रगमपन थीजिनदचखरिजी महाराज द्वारा सस्थापित भीनहावीर' वरवीर्य की विपिपूर्वक बन्दना की। वहाँ पर उषापुर, मरुकोट आदि नाना स्थानों से आने वाले लोगों क मेल में भी महारी विपिचैत्य में बड़ विस्तार क साथ सम्पत्त्व पारण, माला प्रदण, दीपादान आदि नन्दि महोत्सव किया गया। यह कार्य स० १३४१ फागुन कृष्णा एफदशो के दिवस हुआ था। उस उत्सव क पीके पर विनयसुन्दर, सोमसुन्दर, लम्बिसुन्दर, चन्द्रमूर्ति, मेघसुन्दर, नामक साधु धर्मप्रभा, देवप्रभा नाम की साध्वियों को दीपा दी गई। ये साधु-साध्वी छोटी उम्र क थे, शमलिये इनको पुण्यक तिगा गया है।

वहाँ पर श्री महावीर तीर्थ का प्रभाव बढ़ाने वाले, ज्ञान-ध्यान के बल से सब मनुष्यों के मन में आरच्य उत्पन्न करने वाले, स्वपत्नी-परपत्नी, जैन-जैनेतर सब लोग जिनके चरख कमलों की आराधना कर रहे हैं; जिनके आचार चरित्र बड़ पवित्र हैं, ऐसे पूज्यश्री के शरीर में मयकर दाह ज्वर उत्पन्न हुआ। ज्वर की मयानकता देखकर ध्यान-बल से अपन आयुष्य का अत्यल्प परिमाण बचकर लगातार विहार करके भीपूज्यजी का बालि पुर आ गये। वहाँ पर सब लोगों के लिये आश्चर्य कारी भोवड़मान महातीर्थ में बारह प्रकर के नन्दि बाजों के बजते हुए, भेष्ट गीतों के गाये जाते हुए, सुर-सुन्दरियों के नाचते हुए, दीन-अनाथ-दुःखी लोगों को दान दिये जाते हुए, अनेक ग्राम अनेकों नगरों के भीसंधों की मौजूदगी में पूर्वजों के समान निर्मल चरित्रों वाले श्रीजिनप्रबोधसरिजी ने अपनी शरीर की शोभा से कामदेव को मात करने वाले सब मध्य पुरुषों के मन-कमल को विकसित करने में सूर्य का साहस्य रखने वाले, नाना गुण-रत्नों की खान, अत्यधिक गम्भीरता के समुद्र को परास्त करने वाले श्रीजिनचन्द्रसरि को सं० १३४१ की भीषुगादिदेव भगवान् के पारश्वे से पवित्र की हुई वैशाख सुदि अक्षय तृतीया को बड़े आरोह-समारोह पूर्वक अपने पाट पर स्थापित किया। उसी दिन रामशेखरगणि को बाधनाचार्य का पद दिया।

इसके बाद अष्टमी के विषय पूज्यश्री ने सारे सब को एकत्रित करके मिथ्या दुष्कृत दिया। दिनों-दिन बढ़ते हुए शुभमार्गों से जिन्होंने संसार क पदार्थों की अनित्यता जानकर चौतरफ बैठे हुए साधुओं द्वारा निरन्तर गेयमान समाराधनाओं को सुनते हुये, देवगुरुओं के चरखों की मल्लीमांति आराधना करके अपने मुख कमल से पञ्चपरमेष्ठी नमस्कार का उच्चारण करते हुए, अपनी कीर्ति से श्रेष्ठी को भवल करके श्रीजिनप्रबोधसरिजी महाराज वैशाख सुदि एकादशी के दिन सदा क लिये इस असार ससार को छोड़कर अमर पद को पहुँच गये।



## आचार्य जिनचन्द्रसूरि

८०. इसके बाद श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने सं० १३४२ वैशाख सुदि दशमी के दिन काशीपुर के महावीर चैत्य में बड़े उत्सव के साथ प्रीतिचन्द्र तथा सुखकीर्ति नामक दो छुद्रक और अयमंडरी, रत्नमंडरी तथा शास्त्रमंडरी नाम की तीन छुद्रिकयों की। उसी दिन बाचनाचार्यों में भेट श्रीविवेकसुंदर गच्छिजी को अभियेक (उपाध्याय) पद तथा सर्वराजगण्डि को बाचनाचार्य पद और बुद्धि सधुद्धि गच्छिनी को प्रवर्तिनी पद दिया। उसी दिन सम्यक्त्वपाठ, मासारोपण, सामायिक व्रत, साधु-साध्वियों की बड़ी दीक्षा और नन्दि महोत्सव किया गया।

वैसे ही जेट कुम्हा नरमी को धनिकों में भ्रष्ट सेठ चैमसिंह के बनाये हुए सचाईस अंगुल प्रमाण वाले रत्नघटित भी आशिलस्वामी विम्बक और इन्हीं सेठ के बनाये हुए भी युगादिदेव-श्रीनेमिनाथ आदि विम्बों का, महामंत्री देदाजी के निर्माण कराये हुए युगादिदेव-नेमिनाथ-परमरत्न आदि विम्बों का, मंडरी छाहड़ कारित श्रीशान्तिनाथ स्वामी के विम्बक और बीच देहड़क बनाय गये सुवर्णमय चन्द्रदंड का, वैसे ही और भी बहुत सी प्रतिमाओं का सकललोक मनश्चमत्कर्मकारी, सकलपापहारी प्रतिष्ठा महोत्सव श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने भी सामन्तसिंह महाराज के विषय राज्य में किया। इसी प्रतिष्ठा महोत्सव के अनुकूल समय में विशेष खुशी हुए भी सामन्तसिंह महाराज की संनिधि में स्वपद-परपद सभी क आह्लादकारी, सकल विचि मार्ग में नवीन जीवन-संचार कर देने वाला भी इन्द्र महोत्सव, विधि मार्ग का प्रभाव बढ़ाने वाले, आनन्द में सराबोर, सद्गुण को बढ़ाने वाले सेठ चैमसिंह आदि समस्त भावकों ने प्रचुर द्रव्य व्यय कर क संपादित किया। जेट कुम्हा एकादशी के दिन बा० देवमूर्ति गच्छि को अभियेक (उपाध्याय) पद इकर मासारोपण आदि नन्दि महोत्सव किया।

सं० १३४४ मार्गसिर सुदि दशमी को काशी में श्री महावीर विधिचैत्य के अहाठ में श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने प० स्थिरकीर्ति गण्डि को आचार्य पद दिया और उनका नया नाम भी दिवाकराचार्य किया गया।

सं० १३४५ आपात्र सुदि हवोया क दिन मतिचन्द्र, धर्मकीर्ति आदि मध्यवर्तों को दीक्षा दी गई। तर्षव बसाम्ब बदि १ को पुष्पविलक, सुवनविलक तथा चरित्रसुधमी साध्वी को प्रवर्ण्य प्रदण करवाकर राजदर्शन गच्छि को बाचनाचार्य पद से विधुवित किया।

सं० १३४६ में माह बदि प्रतिपदा के दिन सेठ चैमसिंह मा० (आ०) बाहड़ से बनाये गये स्वर्णगिरि में श्री चन्द्रप्रम स्वामी मन्दिर के पास में स्थित, श्रीयुगादिदेव और नेमिनाथ विम्बों का रत्नक

पर्वताक्षर बनाय गये मंडपों में सम्मत शिल्पर वाली बीस प्रतिमाओं का स्थापना महोत्सव किया गया।  
 धनगुन सुदि अष्टमी के दिन श्री श्यामपान नगर में सेठ बाहू, मां० भीम, मां० जगसिंह और मां०  
 खेतसिंह नामक भावकों के बनाये हुए भवन में बाह्यमानवर्षीय धीसोमेरवर महाराज क प्रवेशोत्सव  
 कराय हुए शान्तिनाथ देव का स्थापना महोत्सव बड़े विस्तार से करवाया तथा देवबल्लभ, चारित्रविलोक  
 और हनुमन्कीर्ति साधुओं एवं रत्नभी साध्वी की संयम धारण कराया गया। दीपा के साथ-साथ  
 में मालारोपणादि महोत्सव भी हुआ। उत्पन्नात् चैत्र शुदि १ को जिसमें घरों-घर पताक्षरों फहरा  
 रही हैं ऐसे पालनपुर में मं० माधव आदि मुख्य नागरिक लोगों के सम्मुख आने पर गाये-बाजे  
 के साथ सेठ अमयचन्द्र आदि की प्रमुखता में समस्त समुदाय ने महाराज का प्रवेश-महोत्सव करवाया।  
 पालनपुर की तरह भीमपल्ली में भी वैशाख वदि चतुर्दशी को प्रवेश महोत्सव हुआ। वैशाख सुदि  
 सप्तमी को सेठ अमयचन्द्र की बनाई हुई अद्भुत शान्तिमय तथा अत्यन्त सुहावनी श्रीगुणादिदेव की  
 प्रतिमा, चौबीस विनासियों, चौबीस विन प्रतिमायें, इन्द्रध्वज, भीमनन्तनाथ-दण्डध्वज, भीमिनप्रबोध  
 धरि स्तूप और मूर्ति-दंडध्वज, शान्त-दान्त भाष वाली विचलामय अनेक प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा के  
 निमित्त विस्तार से महोत्सव किया गया। अठ वदि सप्तमी को नरचन्द्र, राजचन्द्र, मुनिचन्द्र पुण्य  
 चन्द्र साधुओं और मुक्तिलक्ष्मी तथा मुक्तिलक्ष्मी साधियों का दीपा महोत्सव महाप्रभाषना के  
 साथ हुआ।

सं० १३४७ मार्गशिर सुदि ६ को पालनपुर में सुमतिकीर्ति की दीपा और नरचन्द्रादि  
 साधु-साधियों की बड़ी दीपा तथा मालारोपणादि महोत्सव किया गया। इसके पश्चात् मार्गशिर  
 सुदि १४ को खदि राहू का नगरी में खरीबर के शुभागमन के उपलक्ष्य में स्थान-स्थान पर ललित  
 वोरणादि सजाये गये थे। मं० चंडाजी के पुत्र मंत्री सहनपाल ने नगर के सभी महाजन-ब्राह्मण  
 आदि लोगों के समुदाय को साथ लेकर प्रवेश महोत्सव करवाया। मंत्री सहनपाल ने सारे सप को  
 एकदित करके पूज्यभी को भीतारण गइ तीर्थ के अलंकारभूत अश्वित्सामी तीर्थ की यात्रा करवाई।  
 पौष वदि पंचमी को श्रीबीजापुर क सेठ लखमसिंह तथा आसपास आदि प्रधान पुरुषों ने जाबासीपुर  
 में खदि राहू का की तरह प्रवेश महोत्सव करवाया और सेठ अमयचन्द्र ने माइ सुदि एकदशी के  
 दिन श्रीमिनप्रबोधधरि की स्तूप में मूर्ति स्थापना करके चन्द्र-दंडारोपण महोत्सव करवाया। इसके  
 बाद बीजापुर में चैत्र वदि ६ को अमररत्न, पद्मरत्न, विजयरत्न साधु और मुक्तिचन्द्र का साध्वी का  
 दीपा की गई। इस अवसर पर मालारोपण, परिभ्रम परिमाण्य एव नन्दि महोत्सव भी किया गया। इस  
 उत्सव में स्व मात, आशापल्ली, बागड़, वरपद्र आदि स्थानों का अनेक भावक सम्मिलित हुए थे।

सं० १३४८ वशाख सुदि तृतीया क दिन पालनपुर में बारशेखर साधु और अमृतभी माध्वी  
 को संयम धारण करवाया गया। त्रिदशकीर्तिगण्य की वाचनाचार्य पद दिया गया। उसी वप  
 सुभाहसरा, मुनिबल्लभ आदि साधुओं सहित पूज्यभी ने गण्य योग तप किया।

स० १३४६ माइया बदि अष्टमी के दिन सहस्रमियों को सदावर्त देने वाले संघपति अश्व-  
चन्द्र सेठ का अन्त समय बानिकर उसको संस्तारक दीक्षा दी गयी और उसका नाम अमनशेखर  
रक्खा गया। वहाँ पर मार्गसिर बदि त्रितीया को यशस्वीर्ति को दीक्षा दी गई।

स० १३५० बैशाख सुदि नवमी को करहटक, भायू आदि स्थानों की तीर्थ-यात्रा से अपना  
बन्म सफल करके, बरङ्गिया नगर के मुख्य भावक नोलखा बशभूषण मा० मन्मन्त्र को स्वप-  
परपच समी को आभय देने वाली संस्तारक दीक्षा दी गई तथा नरतिलक राजपि नाम दिया गया।

सं० १३५१ माघ बदि १ को पालनपुर के श्रवणदेव स्वामी के मन्दिर में मंत्री तिरुव सत्क  
युगादिद्वय मूर्ति और भे० बाबा सत्क महावीर मूर्ति आदि छः सौ शालीत प्रतिमाओं का प्रतिष्ठा  
महोत्सव समुदाय सहित मंत्री तिरुव और भे० बाबा भावक ने विस्तार से करवाया। माघ बदि  
पचमी क दिन अनेक साधु-साध्वी-भावक-धाविकाओं से परिकृत, पूज्यभी ने माताभारतय और  
नन्दि महोत्सव तथा विश्वकीर्ति साधु एव हेमलक्ष्मी साध्वी को दीक्षा दी।

८१ सं० १३५२ में श्रीगुरु जिनचन्द्रहरिजी महाराज की आज्ञा से बाचनाचार्य राजशेखर  
गणि सुषुद्रिराज गणि, हेमविलक गणि, पुष्यकीर्ति गणि और रत्नसुन्दर मुनि सहित बिहार करक भी  
बृहद्ग्राम (बड़गाम) गये। वहाँ से ठाकुर रत्नपत्त, सेठ चाहड़ नाम के मुख्य भावकों द्वारा मेले हुए  
स्वकीय भ्राता ठाकुर हमराज तथा माणेश बाबू भावक, बौद्धियुत्र सेठ मूलदेव भावक तथा उन लोगों के  
अन्य समस्त परिवार के साथ उन्होंने बनारस, कौशाभी, काकिली, रावगुह, पाबापुरी, नासिन्दा,  
चत्रियकुन्दग्राम, अयोध्या, रत्नपुर आदि नगरों की तीर्थयात्रा की। ये नगर जिनेश्वरों के बन्म  
आदि कल्प्याश्रमों से परित्र किये हुये हैं। परिवार सहित बा० राजशेखर गणि ने भावक समुदाय के साथ पहले  
पहल इस्तिनापुर की यात्रा की थी। बाद में अन्य तीर्थों में जाकर बन्दना की। बाचनाचार्य राजशेखर  
गणि ने राजगुरु के पास उद्दयद्विहार नाम के गाँव में चातुमास किया और मात्तारोवलादि नन्दि  
महोत्सव भी किया। उसी वर्ष में नाना प्रकार के पुण्यों की वृष्टि भी मीमपल्ली से सेठ धनपाल के  
पुत्र महामिह तथा सामल भावक के बनाये हुए संघ के साथ पालनपुर, मीमपल्ली, भीपचन,  
सत्यपुर आदि स्थानों से आन बाल स्वपचीय-परपचीय मेले के साथ अपनी वास्तुदत्ता से बृहत्सति  
का पराजय करने बाल उपाध्याय भीबिरेकृतसुत्र गणि आदि साधु महत्तो सहित भीपूज्य भीजिनचन्द्र  
हरिजी महाराज ने तीर्थयात्रा के लिये प्रस्थान करके शंखेयरपुर के अलकारचूशामणि, बाभिन बस्तु  
क पूरथ में चिन्तामणि रत्न क तुण्य, ससारदुःखदावापि को शोध करने में शीतल बस्तु के समान श्रीपार्ष-  
नाथ मगवान् की बंदना की। वहाँ पर भीसप ने तीन दिन तक पनात्र-पूजा, उपावन, पत्रारोपादि  
महोत्सव किया। इसके बाद सारे संघ को साथ लेकर भीपूज्य भीपचन आये। वहाँ पर भीजाति

नाथ मगवान् के मन्दिर में विस्तार के साथ पञ्चारोपाधि महोत्सव किया और बाजे-गाजे के साथ बाराहनाओं के नाचते हुए, सारे नगर के समी मन्दिरों में बढ़ विस्तार से चैत्य-परिपाटी करके श्रीपूज्यजी भी मपल्ली आ गये। इसके बाद बीजापुर के श्रीसंघ की प्रार्थना से उन्होंने बीजापुर में चतुर्मास किया। वहाँ पर स० १३५३ मार्गसिर वदी पचमी के दिन श्रीवासुपूज्य मगवान के मंदिर में मुनिसिंह, तपसिंह तथा अयसिंह नाम के साधुओं को दीक्षा और साथ ही मात्तारोपस्थादि नन्दि महोत्सव भी हुआ।

इसके बाद सघ की प्रार्थना से महाराज जा बालिपुर गये। वहाँ पर सेठ सलखण भावक के पुत्र सीहा भावक तथा मांङ्कप्यपुर से आये हुए सेठ झंझक के पुत्र सा० मोहय द्वारा तैयार किये गये संघ के साथ तथा जा बालिपुर, श्यामानयन, जेसलमेर, नागपुर, रूखपुर, श्रीमालपुर, सत्यपुर, पालनपुर और भीमपल्ली आदि स्थानों से आने वाले धनी-मानी भावक-वृन्द के साथ, जैसे ही श्रीमालजाति के मूषण दिव्या निवासी सठ बल्हा भावक के पुत्र साह लोहदेव आदि प्रमुख भावकों के बमघट में चैत्यपरिपाटी आदि अनेक महोत्सव मनाकर, जा बालिपुर से पैसासु कृष्ण पचमी के दिन विहार करके, प्रचुर मुनि मंडली से संतुष्टमान, चतुर्विध भी संघ से संतुष्टमान, अगतपूज्य, श्रीपूज्य भी त्रिनचन्द्रधरिजी महाराज आपू पहाड़ में विराजमान, समस्त दुर्गति को निवारण करने वाले त्रिनेश्वर श्रीभूपमदेवजी और नेमिनाथजी को बन्दना की। अनेक छम छपों से कलिकाल रूपी चोर को मगा देने वाले, पाषकों को मुँह मांगा दान देकर कल्पवृक्ष को प्रार्थित करने वाले तथा परम छम परिखामों की धारा से अनेक जन्म-जन्मान्तरों के पापपुल को धो देने वाले त्रिचिमार्ग संघ ने भीन्द्रपदादि ग्रहण्य और पञ्चारोपादि महोत्सवों से तीर्थ-कद में बारह हजार छपों का दान दिया। इसके बाद परम आनन्द से रोमांचित अपने पुण्यरूपी राजा से सम्मानित, निर्मल अन्तःकरण वाला त्रिचिमार्ग संघ वहाँ से चलकर वापिस जाबालिपुर आगया।

स० १३५४ जेठ वदि दशमी के रोज भीजाबालीपुर में महावीर त्रिचैत्य में शाह सलखणबी के पुत्र सेठ सीहा की लगन एवं भगीरथ प्रपन्न से दीक्षा और मात्तारोपण सम्बन्धी महोत्सव हुआ। दीक्षा लेने वाले साधु-साध्वियों के नाम वीरचन्द, उदयचन्द, अमृतचन्द्र और बपसुन्दरी थे। इसी वर्ष आपाड़ मुदि द्वितीया को सिरियाणक गांव में श्रीमहावीर मंदिर का बसुन्दरी करवाकर स० १३५५ में महावीर प्रतिमा की स्थापना करवाई। इस स्थापनोत्सव में सारा धन व्यय सेठ मांङ्क भावक के पुत्र बोधा भावक ने किया था।

स० १३५६ में महाराजाधिराज भी क्षेत्रसिंह की प्रार्थना से मार्गसिर वदि चतुर्थी के रोज श्रीपूज्यजी जेसलमेर पचारे। वहाँ पर श्रीपूज्यजी की अगवानी करने के लिये स्वयं राजा साहब पार



कोश सम्मुख आये थे। सेठ नेमिकुमार आदि समस्त समुदाय ने प्रभुर धन-धन्य करके मान पूरक नगर में प्रवेश करवाया था। प्रवेश क समय तरह-तरह के बाजे बज रहे थे। बन्दीजनों ने सुन्दर सुन्दर कबितायें बनाकर पढ़ी थीं। उस सुश्री में जगह-जगह नेत्र और मन को आनन्द देने वाले सुन्दर दृश्य सजाये गये थे। धाकक और भाविकार्ये रास, गीत और मंगल कर्पों में निमग्न थे। यह प्रवेश-महोत्सव स्वपचीय तथा परपचीय सभी लोगों के मन में चमत्कार पैदा करने वाला हुआ था। श्रीपूज्यजी सं० १३५६ में भी वहीं रहे।

सं० १३५७ मार्गसिर सुदि नवमी के दिन, श्री महाराज वैत्रसिंहजी के मेजे हुए गाजे-गाओं की ध्वनि क साथ मालारोपकादि महोत्सव तथा सेठ लखम और मांढारी गज के बयहस तथा चर्चव नाम के दो पुत्रों का दीक्षा महोत्सव महर्ष किया गया।

सं० १३५८ माघ शुक्ल दशमी को भीपारर्चनाय विधिचैत्य में बाजे-गाजे के साथ रहे विस्तार से सम्मोतशिशुरादि प्रतिमाओं का प्रतिपद्य महोत्सव श्रीपूज्यजी क द्वारा सेठ केशवजी क पुत्र तोला भावक न करवाया। वहीं पर फागुन सुदि पचमी के दिन सम्पत्त्वघरण तथा मालारोपक मन्धन्वी महोत्सव भी हुआ।

सं० १३५९ में फागुन सुदि एकदशी के दिन सेठ मोकलसिंह, सा० बीजड़ आदि समुदाय की प्रार्थना से बाह मर आकर श्रीपूज्यजी ने भीपुगादिदेव तीर्थ को नमस्कार किया।

वहां पर सं० १३६० में माघ वदि दसमी को सा बीजड़, सा स्थिरदेव आदि भक्तों ने प्रभुर मात्रा में धन खर्च कर भीविनशासन की प्रमातना के लिये मासाधारणादि नन्दिमहोत्सव बड़े ठठ-बाण स करवाया। इसके अनन्तर भीशोतसदेव महाराज की ओर स छचना पाकर और म० नाबन्ध, म० कुमारपात तथा सेठ पूर्णचन्द्र आदि की प्रार्थना स्वीकार करके श्रीपूज्यजी ने भीशाम्यानपन बाहर भीशान्तिनाय देवतीर्थ की बन्दना की।

सं० १३६१ द्वितीय वैशाख वदि ६ के दिन म० नाबन्ध, म० कुमारपात, मांढारी पय, मठ पूर्णचन्द्र माह रूपचन्द्र आदि स्थानीय पथों ने जाबालिपुर आदि स्थानों स आय हुए महा सार मनुष्यों क मन में धी पारर्चनाय आदि अनेक मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई। इसी प्रकार दशमा क दिन, अरन पराय सभी को आनन्द देने वाला मानारोपणादि नन्दि महोत्सव भीदर गुरुओं की कृपा स विस्तार पूरक करवाया गया। इस अवसर पर प० लक्ष्मीनारायणसि एवं प० हमभूषण गणि को वाचनाचार्य का पद दिया गया।

८२ इसके पश्चात् आवालि पुर के संघ की प्रार्थना से आवालिपुर में जाकर श्रीपूज्यजी ने वहाँ पर महावीर मगवान् को नमस्कार किया। स० १३६४ की वैशाख वदि प्रयोदशी के दिन, मंत्री खन्नि सिंह, सा० सुमट, म० नयनसिंह, म० दुस्साब, म० भोजराज तथा सेठ सीदा आदि सहित भीसंघ द्वारा किये जाने वाले नाना प्रकार क उत्सवों के साथ, श्रीपूज्यजी ने श्रीराजगृह आदि अनेक तीर्थों की यात्रा बन्दन आदि से पुष्कल पुण्य संचय करने वाले बाघनाथर्ष्य राजशेखर गखि को आचार्य पद प्रदान करके सम्मानित किया। इसके उपरान्त में समुदाय ने स्वपक्ष-परपक्ष सभी को भानन्द देने वाला मासारापशादि नन्दि महोत्सव भी किया। इसके बाद मार्ग में चौतर-डाकू आदि के उपद्रव के कारण भग्नाशली दुर्लमत्री की सहायता से श्रीपूज्यजी भीमपट्टी आये। पाटण के कोटडिका मोहनसे में श्रीशान्तिनाथ विधिवैतय और भावक-पौषशाला आदि धार्मिक स्थानों के बनवाने वाले सेठ जेसल प्रभृति समुदाय की अभ्यर्थना से श्रीपूज्यजी महाराज ने पाटण में आकर श्री शान्तिनाथ देव की बन्दना की। इसके बाद खमात तीर्थ के कोटडिका नामक पाड़े में, श्रीअजितनाथ देव के विधि चैत्यासय, भावक-पौषशाला आदि धर्म-प्रधान स्थानों के बनवाने में कुशल सेठ जेसल के साथ मंत्रणा करते हुए श्रीपूज्यजी शेरिपक नामक गाँव में आकर श्रीपार्वनाथ देव की बन्दना करके स्वपक्ष-परपक्ष को चमत्कार उत्पन्न करने वाले श्री जेसल भावक द्वारा कराये गये प्रवेश महोत्सव के साथ खम्मात तीर्थ में प्रवेश करके, श्री अजितनाथ देव की बन्दना की। यह प्रवेश महोत्सव वैसा ही हुआ वैसा श्रीजिनेश्वरधरिजी महाराज के पधारने पर मंत्री श्री वस्तुपालजी ने कराया था।

८३ सं० १३६६ जेठ वदि द्वादशी के दिन, अनेक प्रकार क उन्जल कर्त्तव्यों से जिसन अपने पूर्वजों के कृष्ण का उद्धार कर दिया है और धार्मिक लोगों के हितकारी सेठ जसल ने भी पचन, भीमपट्टी, बाहब मेर, सम्यानयन आदि नगरों से आये हुये सभ को साथ लेकर, अपने न्येष्ट भ्राता घोला भावक को सभ का धुर्यपद देकर तथा छोटे माई साख को मार्गबन्धक का पद देकर इस विषय पंचमकाल में देश में स्नेहकों का मयंकर उपद्रव होते हुए भी द्वालय-प्रबलन-महोत्सव मना कर, खम्मास से आगे तीर्थयात्रा के लिये प्रस्थान किया। उस सभ के साथ जयवद्वमगाणि हेमविलक गखि आदि ग्यारह साधु तथा प्रवर्तिनी रत्नवृष्टि गणिनी आदि पांच साधिवों स शुभपित श्रीपूज्य जिनचन्द्रधरिजी वहाँ से चल पड़े। मार्ग में जगह-जगह चैत्यों में चैत्यपरिपाटी आदि महोत्सव किये गये। अनेक प्रकार के बाज बजाये गये। भावक लोगों ने मार्ग में जहाँ-तहाँ भी देवगुठकों के गुण गाये। मान लोगों ने अपनी नई-नई कवितायें खूब पढ़ीं। चलते-चलते क्रम से सारा सभ भी पीपलाठली ग्राम में पहुँचा। वहाँ पर श्रीशत्रुघ्नय महातीर्थ पर्वत क दीख जान स भीसंघ ने बड़ा उत्सव मनाया। अपार संसार समुद्र में डूबत हुये लोगों के लिये प्रबल समान श्रीशत्रुघ्नय महातीर्थ के असकार, देवाधिदेव श्रीशुभमदेवजी को नमस्कार करने क लिये हर्ष की अधिकता से



उत्पन्न हुई रोमांचराजि से परिपूत तथा चतुर्विंश सष परिश्रुत भीपूज्यजी ने तीर्थ की सीमा में प्रवेश किया। वहाँ पर सेठ सलखण क पुत्र रत्न सठ मोकलसिंह आदि श्रावकों ने बड़े विस्तार स इन्द्रपदादि महोत्सव किये और जेठ सुदि द्वादशी के दिन मालारोपण आदि नन्दि महोत्सव भी विस्तार से किया।

इसके बाद सौराष्ट्र (काठियावाड़) देश के भूपथ, गिरनार पर्वत में स्थित भीनेमिनाथ महातीर्थ को नमस्कार करने क लिये चतुर्विंश सष सहित भीपूज्यजी ने वहाँ से विहार किया। पद्ययि उस समय काठियावाड़ देश बड़े-बड़े सुसज्जमानों की सेनाओं से घिरा हुआ था और जगद-जगद मारकाट मधी हुई थी; परन्तु अगत् के नाथ भी नेमिनाथजी की कृपा से, भीष्मिकों की सभिधि स और पूज्यभी के ध्यान बल से सारा सष निर्बिभ्रता के साथ सुखपूर्वक उज्जयन्त पहाड़ की तलहटी में पहुच गया। वहाँ आकर शुभ अवसर में सकल संघ को साथ लेकर भीपूज्यजी ने उज्जयन्त पर्वतराज क अलक्षर, मन्व्यपुरुषों के मनोरथों को पूर्ण करने वाले, सुहावने, सुन्दर भीनेमिनाथ मगवान क चरण-कमल रूपी महातीर्थ की वन्दना की। यह पर्वत भीनेमिनाथजी महाराज के तीन कन्याओं से पवित्र किया हुआ है। वहाँ पर सेठ कुलचन्द्र-कुलप्रदीप, सा० बीमड़ आदि सब भावकों ने मिलकर इन्द्रपद आदि महोत्सव किये। इस प्रकार भीनेमिनाथ मगवान की वन्दना करके ठौर-ठौर पर घर्भ की अनेक प्रकार स प्रभावना करके भीसष सहित भीपूज्यजी सौंठकर खम्मात ही आगये। वहाँ पर पहले की तरह जेसल भावक ने सष के साथ बाले वेवालय क और भीपूज्यजी क बड़ विस्तार स प्रवेश महोत्सव किया। महाराज ने खम्मात में ही चातुर्मास किया। चातुर्मास के बाद भीपार्वनाथ की वन्दना करके मंदिदक्षीय ठ० मरहपास की सहायता लेकर भीपूज्यजी ने वहाँ स विहार किया।

८४ परबाद-भीमपुर आकर भीवासपूज्यदेव को नमस्कार किया। वहाँ कुछ दिन रहकर सं० १६६७ में माघ वदि नवमी को भी महावीर प्रभु आदि विनेश्वरों की शैलमयादि प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा के साथ मालारोपणादि नन्दि महोत्सव किया। इसके बाद भीमपन्थी वाले भावकों की शर्यना से वहाँ आकर भी महावीर देव को नमस्कार किया और वहाँ पर सं० १३६७ में कागुन सुदि प्रतिपदा के दिन भीमपन्थी, भीपचन तथा पासनपुर आदि से आने वाले समूहों क मल में अनेक प्रकार के दानों से भीविमशासन की प्रभावना बढ़ात हुए भीपूज्यजी ने तीन सुप्रक और दो सुम्लिच्छर्भों को दीया दी। उनके नाम परमकीर्ति, वरकीर्ति, रामकीर्ति तथा पद्मभी, प्रथमी थे। उस अवसर पर मालारोपणादि नन्दिमहोत्सव भी किया गया और ५० सोमसुन्दर गति को वाचनाभार्य का पद दिया गया।

उसी वर्ष—सठ घेमघर, सा पद्मा, सा साइल कुलोत्पन्न अपनी भुजाओं से पैदा की हुई लक्ष्मी को मोगने वाला, प्रशमनीय पुण्यशाली, स्थिरता गम्भीरता आदि गुणों को धारण करने वाले, तीर्थ यात्रा ग पवित्र गात्र वाले, स्वर्गीय सेठ घनपाल के पुत्र, सब मनुष्यों को आनन्द देने वाले, भीमपत्नी पुरी निवामी राजमान्य, श्रेष्ठधर्मकार्य में कुशल भी सेठ सामल ने पोल न पुर, पाटण, बाबाली पुर, साम्यानयन, जेसलमर, राणुकोट, नागपुर, भीरूणा, भीजापुर, सत्यपुर, भीभीमाल और रत्नपुर आदि स्थानों में हनुमन्ती मेजकर तीर्थयात्रा के लिये बड़े आदर सम्मान के साथ भीसघ को बुलाकर एकत्र किया। तीर्थयात्रा के लिये तैयार हुए सघ की गाइ अभ्यर्थना से भीपूज्यजी भी चलने को राजी हो गये। यद्यपि दश में सब अगह म्लेच्छ—यवनों द्वारा उपद्रव मचा हुआ था; तो भी शुभ—सुहृत् देखकर सचवा भाविकाओं से मंगल गान गाए जाते हुए, तरह-तरह के सुंदर बाजे बजते हुए, बड़े उत्साह के साथ अन्तिम तीर्थद्वार भी महावीर स्वामी की धम्म विधि चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन, महामहिमशाली चतुर्विध सघ सहित, अणुपूज्य पूज्यभी ने देवालय के साथ भीमपत्नी से प्रस्थान किया। रास्ते में अगह-अगह शुभ शकुनों से प्रोत्साहित किये जाते हुए, तीर्थ भीशंखेश्वर में पहुँच कर बड़े मध्य विशाल-भवन में विराजमान भीमिनेश्वर पारवनाथ को विधि-विधान से नमस्कार किया। वहाँ पर आठ दिन ठहर कर सघ ने बड़ा भारी महोत्सव किया। इसके बाद पाटला गाँव में प्राचीन नेमिनाथ तीर्थ को नमस्कार करके भीराजशंकराचार्य, जयवल्लभगणि आदि सोलह साधु और प्रवर्तिनी बुद्धिमृद्धि गणिनी आदि पन्द्रह साध्वियों सहित सार संघ कर मार उठाने में अगुआ भी सठ सामल, मणशाली नरसिंह के पुत्र आसा सघ की रक्षा के लिये जिम्मेदार, साधु सामल के कुटुम्बी दुर्लमादि, मणशाली पूर्यजी के पुत्र रतनचन्द तथा सघ में पारचात्य पद को निमाने वाले, आँदार्पशाली, मणशाली शूक आदि सहित समस्त सघ को साथ लिये हुए भीपूज्यजी प्रति ग्राम, प्रति नगर, मृत्यु-नाग, उपदेश आदि से जिनशामन कर प्रभाव बढ़ाते हुए शत्रुभय तीर्थ में जाकर, त्रिलोकी में सारभूत, समस्त तीर्थपरम्परा से परिपूत, सुर-असुर-नरन्त्रीं से वैशित, भीष्मपमदेव मगवान की पन्दना की और उज्जयन्त तीर्थ में पहुँचकर मकन पाप को खंडन करने वाले, सुन्दरता के ज्ञान, यदुंरश भूषण, कल्याणशय आदि नाना तीर्थों से विराजमान भीमिनाथ स्वामी की नय-नय मृत्ति-मोयों की शपना करके परम मावमक्ति से बन्दना की। इन दोनों तीर्थों में आबानि पुर कर रदन वाले, सब महाशनों में प्रधान, गुणनिधान, सठ देवसिंह और सठ पाण्डव के पुत्र अवन बंग के मंटन सठ कुलवन्द और देदा नाम के दो भाइयों ने अपने प्रचुर धन का मकन धरन के लिये इष्ट पद प्रदण किया। इसी प्रकार मोठी योषर के पुत्र स्थिरपाल ने उज्जयन्त तीर्थ में शूर शूष्य गर्भ करके अग्निद्वय देवी की माना प्रदण की। इनके अनिरिक्त सठ भीमत्र के पुत्र डाडग, सा० पादक के पुत्र भ्रांमण्य, गा० उदारण, नीलगा नमिचन्द्र, मठ पूता, मठ तिहुग, मा० पदम के पुत्र

मऊवा, भा० महससिंह और सेठ मीमाजी के पुत्र लूखसिंह आदि अन्य भावक महानुमाओं ने श्री तीर्थपूजा, सप्तपूजा, स्वधाभिकवात्सल्य के करण किये गये सदाबत आदि पुण्य कार्यों में अगणित धन-व्यय करके पुण्यपानुबन्धी पुण्य की उपार्जना की ।

इस प्रकार इस गये गुहरे कसिकाल में श्री, लोकोचर धर्म क निधान, सृष्टिहीय, पुण्यपान भी विधिसंघ ने सब जनों के बिच को हरने वाली तथा चमत्कर करने वाली तीर्थ-यात्रा की । निर्भिन्ना पूर्वक बड़ी प्रमाणा के साथ समस्त तीर्थों की वन्दना करके सेठ सामल आदि संप एवं मुनिमंडली सहित भीमिनचन्द्रहरिजी महाराज चतुर्मास लगने के पहले ही आषाढ़ के महीने में भीवापड़ ग्राम में आकर भीमहावीर स्वामी के जीवन-काल में बनाई हुई उनकी प्रतिमा का विस्तार से वन्दन किया । इसके बाद भाव्य मास क पहले पखवाड़े में प्रतिपदा के दिन धर्म प्रमा-व-शालिनी आविष्कारों के गाते हुए, अन्य नागरिक स्त्रियों के नाचते हुए, ठौर-ठौर में देखने योग्य तमाशों के होते हुए, चन्दि-सौगों क स्तुति-पाठ सुनते हुए, भावक लोगों द्वारा अनेक प्रकार के महादानों को दिये जाते हुए, लोकाधिक प्रभाव वाले भीमिनचन्द्रहरिजी महाराज का भीमपट्टी नगरी में प्रवेश महोत्सव भीसंध ने विस्तार एवं प्रमाणा के साथ करवाया ।

सप्त में आने वाले, गुठ-भाड़ा-पासन में सदा तत्पर, सहचर्मियों के प्रेमी, यात्रा में भीसंध के घुड़पोषकपद को निमाने वाले और महा प्रमाणा को करने वाले भी मन्थशाली लूवा भावक ने अपने समुपाहित समस्त पुण्य राशि को, दान-शील-तप और मात्र में उत्कृष्ट, अपनी मातृभी पत्नी सुभाविक को अर्पित किया ।

वहाँ पर भीमपट्टी नगरी में को स्थानीय पंचायत द्वारा प्रत्यक्षीति आदि सुप्रको को बड़ी दीक्षा तथा तद्व्यवेति, तेजस्वीति, व्रतधर्मा तथा चक्रधर्मा इन सुप्रक-सुप्रिकारों की दीक्षा का महोत्सव करवाया । उसी दिन ठाकुर हासिच के पुत्र रत्न, बेहड़ के छोटे माई स्थिरदेव की पुत्री रत्नमंजरी गणिनी को (जिसे पूर्व में पूज्यभी ने अपने हाथ से ही दीक्षा दी थी) पूज्यभी ने महारा पद प्रदान कर अपर्दि महाररा नाम रक्खा तथा प्रियदर्शक गणिनी को प्रवर्धिनी पद दिया ।

इसके बाद भीसंध की प्रार्थना से, भीपूज्यभी नगरों में भेष्ट नगर पाटल पवार । वहाँ पर सं० १३६६ मार्गसिर यदि पट्टी के दिन, स्वयं एवं परपथ में आरधर्म पैदा करने वाले भीसंध द्वारा किये गये महा महोत्सव के साथ 'अपति धिनशासनम्' क ध्य धोष के साथ उत्तम पूर्वक जगत के पूजने योग्य भीपूज्यभी न चन्दनमूर्ति, सुकनमूर्ति, सारमूर्ति और हरिमूर्ति नाम के चार छोटे साधु बनाये । कैवल्यमा गणिनी को प्रवर्धिनी पद दिया और मात्सर्योपवासि महानन्दि महोत्सव भी किया ।

स० १३७० माघ शुक्ला एकादशी के दिन, सारे ससार के लिये कल्पद्रुम के अनन्तर श्रीपूज्यश्री ने स्वपक्ष-परपक्ष को आनन्दित करने वाले, सकल संघ की ओर से दीक्षा-मात्सरारोपणादि नन्दिमहोत्सव करवाया। इस महोत्सव में ज्ञाननिधान मुनि और यशोनिधि, महानिधि नाम की दो साध्वियों को दीक्षा दी।

इसके बाद भीमपट्टी समुदाय की अभ्यर्थना से श्रीपूज्यश्री भीमपट्टी आये। वहाँ पर स० १३७१ फागुन शुद्ध एकादशी के दिन, श्रीपूज्यश्री ने साधुराम श्यामल आदि संघ के द्वारा हमारी घोषणा, अन्नचेत्र, सधपूजा, सहधार्मिकवात्सल्य आदि नाना प्रकार के उत्सव के साथ सब मनुष्यों के मन को हरने वाले व्रतप्रद्वय, मात्सरारोपण आदि नन्दि महोत्सव करवाये। उस महोत्सव में, विद्युवनकीर्ति मुनि को तथा प्रियधर्मा, यशोसूचमी, धर्मसूचमी नामक साध्वियों को दीक्षा दी।

८५ भीसध की गाढ़ अभ्यर्थना से श्रीपूज्यश्री वहाँ से जावालिपुर को विहार कर गये। वहाँ पर स० १३७१ जेठ वदि दशमी के दिन मंत्री मोजराज तथा देवसिंह आदि संघ के प्रमुख लोगों द्वारा करवाया हुआ तथा अपन-पराये सभी को आनन्द देने वाला मात्सरारोपणादि नन्दि महोत्सव बड़ी शान से हुआ। उस मौके पर, देवेन्द्रदत्तमुनि, पुण्यदत्तमुनि, ज्ञानदत्त, चाहदत्तमुनि और पुण्यलक्ष्मी, ज्ञानलक्ष्मी कमललक्ष्मी तथा मतिभूषणी आदि साधु-साध्वियों को दीक्षा दी। इसके बाद वासोदर को मन्त्रेच्छों ने मंग कर दिया। इसलिये महाराज न श्री शम्भानयन भीरुणापुर, श्री बन्धेरक आदि नाना स्थानों में रहने वाले लोगों को सन्तोष देकर, भीमाल वंशभूषण, जिनशासन प्रभावक सहस्र स्वधार्मिकवत्सल सेठ मानल क पुत्र मा० मान्हा, सा० धांधू आदि माद्यों के साथ तथा मरुदेशीय सपादलक्ष परगने के नगर गाँवों के रहने वाले सकल भावकों क तीन गौ गाड़ों क कुंठ क साथ फलबद्धि ( फलोद्दी ) बाकर सपूया अतिशयो क निधान, मन्त्रेच्छों स प्याङ्गल चार समुद्र समान सपूर्णा सपादलक्षदेश क लिय अमृत भर हुए क तुन्य श्रीपार्ष्वनाय भगवान क प्रथम यात्रा महोत्सव किया। इस यात्रा महोत्सव में त्रिधिसध क भावकों न भीन्द्र पद आदि अनेक पदों को प्रदत्त करके, उचममोक्षण दान, भी स्वधार्मिक वात्सल्य, भीसध-पूजा आदि अनेक प्रकार स जिन श्रमण की प्रभावना पढ़ात हुए अपने अपरिमित धन को सकल किया। इसके बाद नागपुर क भावकों की प्रार्थना स्वीकार करके श्रीपूज्यश्री नागपुर ( नागौर ) गये।

सठ सोहदेव, मा० सखण, मा० हरिपाल आदि उन्पापुरीय त्रिधिसंघ की प्रसन्न प्रार्थना से, ज्ञान, ध्यान तथा पञ्चशास्त्री, भीमपट्टमार दूर से मार्ग में गुरावित, अनेक माधुओं स परिश्रुत, भीजिन चन्द्रश्री महााराज न गर्मी क भीमम होठ हुए भी, अनेक मन्त्रेच्छों स सहस्र महामिष्यात्व स परिपूर्ण, सिध प्रान्त की निर्जल-नीरस भूमि में धर्मकल्पद्रुम का पौधा लगाने के लिये विहार

मऊया, मां० महामिंद और सेठ मीमाजी के पुत्र लूखमिंद आदि अन्य भावक महानुमात्रों ने भी तीर्थपूजा, सप्तपूजा, स्वभाविकवास्तव्य क करवा किये गये सदाबत आदि पुण्य कर्मों में अगणित धन-धन्य करके पुण्यानुबन्धी पुण्य की उपार्जना की ।

इस प्रकार इस गये गुजरे कलिकाल में भी, लोकोपर धर्म के निधान, स्पृहशीय, पुण्यप्रधान भी विविध संघ ने सब वर्णों के धिष को इरने वाली तथा धमत्कार करने वाली तीर्थ-यात्रा की । निर्भिन्नता पूर्वक बड़ी प्रभावना क साथ समस्त तीर्थों की बन्दना करके सेठ सामल आदि संघ एवं सुनिर्मंडली सहित भीजिनचन्द्रहरिजी महाराज चातुर्मास लगने के पहले ही अत्याद के महीने में भीरायड ग्राम में आकर भीमहावीर स्वामी के श्रीवन-काल में बनाई हुई उनकी प्रतिमा क विस्तार से बन्दन किया । इसके बाद भाव्य मास के पहले पखवाड़े में प्रतिपदा के दिन धर्म प्रभाव-शालिनी भाविकार्यों के गाते हुए, अन्य नागरिक स्त्रियों के नाचते हुए, ठौर-ठौर में देखते योग्य तमाशों के होठ हुए, बन्दि-सोगों के स्तुति-पाठ सुनते हुए, भाकक सोगों द्वारा अनेक प्रकार के महोत्सवों को दिये जाते हुए, लोकाधिक प्रभाव वाले भीजिनचन्द्रहरिजी महाराज का भीमपट्टी नगरी में प्रवेश महोत्सव भीसप्त न विस्तार एवं प्रभावना के साथ करवाया ।

सय में आने वाले, गुठ-आद्या-पस्तन में सदा उत्पर, सहधर्मियों के प्रेमी, यात्रा में भीसंघ के पृष्ठपोषकपद को निभाने वाले और महा प्रभावना को करने वाले भी मख्यशाली लूखा भाकक ने अपने समुपाधिक समस्त पुण्य राशि को, दान-शील-तप और मात्र में उत्पन्न, अपनी मातृभी पत्नी सुभाविक को अर्पित किया ।

बहों पर मांमपट्टी नगरी में को स्थानीय पंचायत द्वारा प्रतापकीर्ति आदि छुल्लकों को पड़ी दीक्षा तथा तरुणकीर्ति, तेजकीर्ति, ब्रतधमा तथा दक्षधर्मा इन छुल्लक-छुल्लिकार्यों की दीक्षा का महोत्सव करवाया । उसी दिन ठाडूर हांसिल के पुत्र रत्न, देहक के छोटे माई त्रिभरदेव की पुत्री रत्नमयरी गशिनी को (जिसे पूर्व में पूज्यभी ने अपने हास्य से ही दीक्षा दी थी) पूज्यभी ने महत्तरा पद प्रदान कर अपदि महत्तरा नाम रक्खा तथा प्रियदर्शण गशिनी को प्रवर्तिनी पद दिया ।

इसके बाद भीसंघ की प्रार्थना से, भीपूज्यजी नगरों में भेष्ट नगर पाटख पचार । बहों पर सं० १३६६ मार्गसिर बदि पट्टी के दिन, स्वपय एवं परपय में आरधय वैदा करने वाले भीसंघ द्वारा किये गये महा महोत्सव के साथ 'अपति जिनशासनम्' क रूप घोष के साथ उत्साह पूर्वक अगत के पूजने योग्य भीपूज्यभी ने चन्दनमूर्ति, सुबनमूर्ति, सारमूर्ति और हरिमूर्ति नाम के चार छोटे सापु बनाये । केवलधमा गशिनी को प्रवर्तिनी पद दिया और मासारेवखादि महानन्दि महोत्सव भी किया ।

वपसिंह सुभावक ने स्वधार्मिक वात्सल्य, सर्वसुखमोजन, अमारी पोषण तथा भीसघ पूजा आदि कर्मों में लगाकर अपना मन सफल किया ।

८६ इसक बाद सं० १३७४ में फान्गुन वदि पन्ठी के दिन उवापुरी आदि अनेक नगरों क रहने वालों एवं सकल सिंधदेश वासी सघ की प्रार्थना से भीपूज्यजी ने व्रतप्रवण, मात्तारोपण और नन्दि महोत्सव करवाया । सब को आश्चर्य देने वाले इस महोत्सव में दर्शनदित तथा हवनदित नामक मुनिओं को प्रव्रज्या चारख कारवाई । सैंकड़ों आदिकर्मों ने माला प्रहस्य की । एत प्रकार देवराजपुर में लगातार दो चौमासे करक भीपूज्यजी ने महामिथ्यात्व अघकार का उन्मूलन किया । सेठ पृथ्विचन्द्र और उनके पुत्र उदारचारित्र, जिनशासन प्रभावक, सार्यवाह श्रीहरियाल को साथ लेकर मरुस्थल के बालू का समुद्र अर्थात् रेतीले मैदान को पार करके नागौर को आये । नागौर के भावकों ने बड़ी धूम-धाम से नगर प्रवेश करवाया ।

वहां पर कन्यानयन-निवामी श्रीमालकुलभूषण निजशासनोन्नतिकारक श्रीकाला भावक ने कन्यानयन बागड़देश, सपादलख आदि समग्र और पांस क गांवों तथा नगरों के रहने वाले भावकों को इकट्ठा किया । उनके समिलित संघ के साथ भीपूज्यजी ने फरौदी में दूसरी बार श्रीपार्वनाथ देवकी यात्रा की । वहां जाकर घनाढ्य भावकों ने अन्नसत्र, साधर्मिक-वात्सल्य तथा भीसघ की पूजा आदि शुभ कर्मों से जिनशासन की बड़ी प्रभावना की ।

उदनन्तर सं० १३७५ में माघ शुक्ल द्वादशी के दिन नागौर में मन्त्रीदलीय कुलोत्सव ठाकुर निजपसिंह, ठा० सेहू सा० रुदा और दिव्री वाले संघ के प्रमुख मन्त्रीदलीय ठा० अचलसिंह आदि घोरि भावकों के महाप्रयत्न से समग्र जालामठ समुदाय, कन्यानयन, आशिमठ, भीनरमठ, बागड़देशीय समस्त समुदाय तथा मं० मूधराज प्रमुख कोशबाषा समुदाय, सोलख ( नागौर ), आबालिपुर, शम्पा-नयन, मारुयवा आदि नगरों से, गांवों से प्रांतों से, अनक सघ समुदायों का मेला हुआ । उम समय बपद-अगह अन्न क्षेत्र खोले गये । नाना प्रकार क खेल-समाये दिखलाये गय । स्त्रियों के नृत्य हुए । साधर्मिक भाव्यों की सेवा-सुभूषा की गई । घनबान भावक लोगों ने सोने चाँदी के कढ़-अस-वस्त्र बाँटे । नागौर के भावकों की प्रार्थना से श्रीवर्धमान स्वामी की शासन-वृद्धि क लिये उत्तर भीपूज्यजी न अस्वस्थत्वों के मनको हरने वाला, मिथ्याधरि लोगों को आभयदायक, व्रतप्रवण, मात्तारोपसादि नन्दि महोत्सव किया । उस महोत्सव में सोमचन्द्र माधु की शोलमवृद्धि, दुर्लभमवृद्धि, सुवनमवृद्धि माधियों को दीषादी । प० जगबन्धराणि की तथा सब विद्यारूपी बाराणनाओं क अभिनवोपाध्याय कन, अनक शिष्यरत्न बड़ाने में सिद्धहस्त, गुरुस्थ में रहते हुए पुत्रादि और सपमचार पाद शिष्यादि-इस तरह दानों अगह सन्तान वाले; जिसमें भीपूज्यजी के पाठ पर बैठन की यागयता है; एस पवित्रराज इशतकीति

को वाचनाचार्य का पद प्रदान करके सम्मानित किया। धर्ममाला गबिनी और पुण्यसुन्दरी गबिनी को प्रवर्तिनी पद से अलक्षित किया।

इसके बाद ठाकुर विजयसिंह, ठा० सेहू, ठा० अचलसिंह और बाहर से आने वाले सभी संघ के गाँवों के साथ बड़ा मेला बनाकर, श्रीपूज्यजी ने कलौदी पारखनाथ दर्शन के लिये तीसरी यात्रा की। वहाँ पर जिनशासन की प्रभावना करने में प्रवीण, सब सहचर्मियों के वास्तव्य मंत्रोदलीय—कुलमंडन सेहू भावक ने बारह हजार रुपये देकर इन्द्रपद ग्रहण किया। अन्य भावकों ने अमात्य आदि पदग्रहण करके तथा अन्न सत्र, संघ पूजा, स्वधर्मी माण्यों की सेवा, सोने चाँदी के के कढ़ौं एवं अन्न-वस्त्र का दान आदि पुण्य कार्यों से ब्रह्म धर्म की बड़ी प्रभावना की। श्रीपारखनाथ भगवान् के मण्डार में हजारों रुपयों की आय हुई।

८७ इसके बाद श्रीपूज्यजी संघ के साथ सं० १३७५ वैशाख वदि अष्टमी के दिन नागौर आये। वहाँ पर अनेक उज्ज्वल कर्मों से अपने पूर्वज एवं समस्त कुल का उद्धार करने वाले, अपनी सुजाओं से उपार्जन की हुई लक्ष्मी को भोगने वाले, मंत्रीदलीय—कुलभूषण ठाकुर प्रतापसिंह क पुत्ररत्न जिनशासन का प्रभाव बढ़ाने में दक्ष, सब सहचर्मियों का प्रेमी, बेजोड़ पुण्य संघ से शामायमान, स्थिरता, गम्भीरता तथा उदारता आदि गुणगणों को पारण करने वाले, सब राजाओं का आदरणीय, ठाकुर अचलसिंह भावक ने महाप्रतापी बादशाह कुतुबुद्दीन मुल्तान का सर्वत्र निर्दिष्ट यात्रा के लिये फर्मान निकलवाकर तीर्थयात्रा के लिये गाँवों—गाँव सम्मान के साथ कृष्ण पत्रिकायें मेवफर भीनागपुर, भीरुखा, भीकोशवाखा, भीमेडवा, कडुपारी, भीनबहा, कुंभारण, नरमट, भीकन्यानयन, भीआशिवापुर, रोहवक, भीयोगिनीपुर, भामहना, यमुनापार आदि स्थानों में स्थित तीर्थों के लिये यात्रोत्सव प्रारम्भ किया। श्रीब्रह्मस्वामी और भाई मुहागिणरि के समान, सर्वातिशयशाली, अग्रे पूज्य श्रीपूज्यजी अयद्वगणि, पञ्चकीर्तिगणि, पंडित अमृतचन्द्रगणि आदि अष्ट साधु और श्रीवर्षि महेश्वरा आदि साष्ठी एवं चतुर्विध संघ सहित, दश में श्लोको का प्रबल उपद्रव होते हुए भी, मुहागिनी आधिकाओं के मंगल-गीत, पन्दिबनों के स्तुति-पाठ और बारह प्रहर की बाजों की मधुरध्वनि के बीच श्रीदेवालय के साथ नागौर से सप को सहर गले।

सार मय के मात को रहने में समर्थ, अपूर्वदान से कल्पद्रुम को मात करने वाले, ठाकुर अचलसिंह भावक तथा भीमाल कुलोत्तम दशगुरुभाषा—रूप मणि को मस्तरु पर बढ़ाने वाले, संघ के पृष्ठ रक्षक भक्त को स्वीकार करने वाले सठ घुराव के पुत्ररत्न धनियों में माननीय साधुगण उदास भावक और मरुन संघ सहित श्रीपूज्यजी मार्ग के गाँवों और नगरों में नृत्य—गात्र से ब्रह्म परिपाटी करत हुए, जिनशासन की प्रभावना बढ़ाते हुए, भीनरमट पहुंचे। वहाँ पर समारोह के

सब नगर प्रवेश होने क बाद, भीजिनदचरिजी स प्रतिष्ठापित समस्त आचार्यों क निधान नक्शा पार्श्वनाथ को बन्दना की ।

भीनरमटपुर के आचकों ने चतुर्विध संघ सहित तथा देवालय सहित भीपूज्यजी की एष संघ की पूजा कर बड़ी प्रभावना की ।

इसके पश्चात् सफल बगड़देश के ग्राम-नगरों के निवासी लोगों के मनोरथों को पूर्ण करते हुए, भीपूज्यजी ने बड़े उत्साह से भी कन्यानयन में जाकर स्वर्गीय भीजिनदचरिजी महाराज द्वारा स्थापित, वर्तमान कल्प के अतिशुभ्य चारी श्रीवर्द्धमान स्वामी को नमन किया । मेहर, पद्म, सेठ काला आदि श्रीकन्यानयन के प्रधान आचकों ने देश में श्लोच्छों की प्रधानता होते हुए भी, हिन्दुओं के समय के तरह पूज्यभी के द्युमागमन के उपलक्ष्य में जगह-जगह खेल उमाशो करवाये; इसके अतिरिक्त वहाँ पर महाबीर तीर्थ में जन्म-जन्मांतर से उपाधित पाप एष कष्टों को हरने वाली बड़ी प्रभावना की और वहाँ सारे भीसंघ ने श्रीवर्द्धमान स्वामी के आगे बड़े उत्साह से आठ दिन तक 'अष्टान्दिक महामहोत्सव' किया ।

इसके बाद यमुनापार तथा बगड़ देश के आचकों के चारसी घोड़े, पाँचसी गाड़े तथा सप्तश्री बैल आदि का बड़ा खुद होने पर, ढोलों के ढमाक से मार्ग में जगह-जगह मंगल पाठ तथा वादित्त-ध्वनि के होत हुए, चक्रवर्ती राजा की सेना के समान चतुर्विध भीसंघ इस्तिनापुर पहुँचा । इस संघ में असंख्य श्लोच्छों पर प्रभाव रखने वाले ठाकुर जवनपाल, ठा० विजयसिंह, ठा० सेठ, ठा० कुमरपाल तथा देवसिंह आदि मन्त्रिदलीय भावक ठाकुर मोझा, श्रेष्ठी पद्म; सा० बाला, ठा० देपाल, ठा० पूर्य सेठ महारा, ठा० राव, सा० लूया तथा ठा० फेरू आदि भनक श्रीमालेश के भावक तथा सठ पूनब सा० कुमरपाल, मं० मेहा, मंत्री भीन्हा, सा० तन्दर, सा० महाराज आदि श्लोच्छश क असंख्य भावक प्रधान थे । इस संघ में भी पूज्यजी ही चक्रवर्ती सभ्य सेनापति क स्थानापक थे । इस संघ ने मंद २ यात्रा करते हुए इस्तिनापुर तक कई पड़ाव किये थे । इसक पीठ सरसक सेठ रुद्रपाल थे । संघ ने मार्ग में आने वाली यमुना नदी को श्रेष्ठी-श्रेष्ठी नावों में बैठकर पार की थी । संघ इस्तिनापुर इसलिये गया कि वहाँ पर श्रीप्रान्तिनाथ, भी कुन्यानाथ, भीभरनाथ नामक चक्रवर्ती तीर्थहूरो के गर्मानवार, जन्म, दीपा, शान आदि चार कल्पाणक यथासमय होने से वहाँ की भूमि पवित्र समझी गई है ।

८६ वहाँ पर साधुओं के शिरोमणि, चतुर्विध संघ समन्वित, भीपूज्यजी ने नय बनाये हुए सृष्टि-स्वात्र, नमस्कारोच्चरय पूरक श्रीशान्तिनाथ, कुन्पुनाथ और भरनाथ देवों की जन्मान्तरित पावों को हरने वाली यात्रा की । भीसंघ ने इन्द्रपद आदि ग्रहण बेरोक-टोक किया । मोदन, सत्सर्मी सेवा,



को वाचनाचार्य का पद प्रदान करके सम्मानित किया। चर्ममाला गखिनी और पुण्यसुन्दरी गखिनी को प्रवर्तिनी पद से अलकृत किया।

इसके बाद ठाकुर विजयसिंह, ठा० सेहू, ठा० अचलसिंह और बाहर से आने वाले समस्त संघ के गावों के साथ बड़ा मेला बनाकर, श्रीपूज्यजी ने फत्तोदी पार्षनाथ दर्शन के लिये तीसरी बार यात्रा की। वहाँ पर जिनशासन की प्रभावना करने में प्रवीण, सब महचर्मियों के वास्तव्य मशौ-दलीय-कुलमंडन सेहू भावक ने बारह हजार रुपये देकर इन्द्रपद प्रदत्त किया। अन्य भावकों ने अमात्य आदि पदग्रहण करके तथा अन्न सत्र, सघ पूजा, स्वधर्मी माद्यों की सेवा, सोने चाँदी के कढ़ी एवं अन्न-बस्त्र का दान आदि पुण्य कर्मों से जैन धर्म की बड़ी प्रभावना की। भीमार्थनाथ भगवान् क मण्डर में हजारों रुपयों की आय हुई।

८७ इसके बाद श्रीपूज्यजी सघ के साथ सं० १३७५ वैशाख वदि अष्टमी के दिन नागौर आये। वहाँ पर अनेक उज्ज्वल कर्मों से अपने पूर्वज एवं समस्त कुल का उद्धार करने वाले, अपनी भुजाओं से उपार्जन की हुई लक्ष्मी को भोगने वाले, मंत्रीदलीय-कुलभूषण ठाकुर प्रतापसिंह क पुत्ररत्न जिनशासन का प्रभाव बढ़ाने में दक्ष, सब महचर्मियों का प्रेमी, बेजोड़ पुण्य संपन्न से शोभायमान, स्थिरता, गम्भीरता तथा उदारता आदि गुणगणों को धारण करने वाले, सब राजाओं क आदरस्वीय, ठाकुर अचलसिंह भावक ने महाप्रतापी बादशाह कृतपुरीन सुल्तान का सर्वत्र निर्विरोध यात्रा क लिये फर्मान निकलवाकर तीर्थयात्रा के लिये गाँवों-गाँव सम्मान के साथ कुड़म पत्रिकायें भेजकर भीनागपुर, भीरुया, भीकोशवाया, भीमेठवा, कडुयारी, भीनबहा, खुं कण, नरमठ, श्रीकन्यानयन, भीआशिफापुर, रोहठक, भीयोगिनीपुर, घामइना, यमुनापार आदि स्थानों में स्थित तीर्थों के लिये यात्रोत्सव प्रारम्भ किया। भीमजस्वामी और धर्म मुहनिधर क समान, सर्वाविशयशाली, जगत् पूज्य श्रीपूज्यजी जयदेवगण, पद्मकीर्तिगण, पंडित अमृतचन्द्रगण आदि आठ साधु और भीमपति महेश्वर आदि साष्ठी एवं चतुर्विध सघ समिद्ध, दर में श्लोको का प्रबल उपद्रव होते हुए भी, सुहागिनी आविष्कारों क संग्रह-गीत, बन्दित्रों के स्तुति-पाठ और धार प्रकर की धार्जों की मधुरध्वनि क बीच भौदेवालय क साथ नागौर से संघ को सकर गले।

सार संघ के मार को बहने में समर्थ, अपूर्वदान से कल्पद्रुम को मात करने वाले, ठाकुर अचलसिंह भावक तथा भीमाल कुलोत्पन्न, दशगुणभाषा-रूप मखि को मस्तक पर बढ़ाने वाले, संघ क शृष्ट रचक मार को स्वीकार करने वाले सठ सुरराज के पुत्ररत्न धनियों में माननीय सापुराब रुद्रपाल भावक और सकल सघ सहित श्रीपूज्यजी मार्ग के गाँवों और नगरों में नृत्य-गात्र से जैन परिपाटी करत हुए, जिनशासन की प्रभावना बढ़ाते हुए, भीनरमठ पहुंचे। वहाँ पर समारोह के

जो चंद्रयोग वाहुँ आलिप्पइ वासिणाइ तच्छेइ ।  
संशुणइ जोवि निदइ महरिसिणो तत्थ समभावा ॥

[ चन्दन, सींचन वाले पुरुष की भुजा को सुगन्धित करता है, वैसे ही काटने वाले (कुन्दाद) को भी सुगन्धित करता है। इसी तरह महर्षि लोगों को स्तुति और निन्दा करने वाले पुरुषों में समभाव रखत है। ]

अन्य शास्त्रों में भी लिखा है—

शत्रो मित्रे तृणे स्त्रेणे स्वर्णेऽग्नि मणौ मृदि ।  
मोक्षे भवे च सर्वत्र निस्पृहो मुनिपुङ्गव ॥

[ मुनि लोग शत्रु-मित्र, घात, स्त्रीवृन्द, सुवर्ण, परयर, मणि, मिट्टी का ढला, मोष और सत्तार इन सब में निस्पृह रहत हुय समान भाव रखत हैं। ]

इस प्रकार शत्रु-मित्र में समभाव वाले, वृक्ष, मणि, मिट्टी क ढले और कचन को एकमा समझन बाल, दया क समुद्र भीपूज्यजी का दुःखन को फेंद से छुड़ाने का उद्द अभिप्राय जानकर सरकारी और गैर सरकारी सभी लोगों ने आश्चर्य स अपना माया पुनत हुए पूज्यभी की अपिच्छ पिक प्रशंसा की। इसके बाद भीपूज्यजी न तजपाल आदि भावकों क द्वारा दयालु अपिच्छरिओं को समझ-सुझाकर दमकपुरीयाचार्य को जल से छुड़वाकर उनको अपनी पौषयाना में भजा। तत्पश्चात् अपशाला क अप्यप द्वारा अतीव सम्मानित हुए भीपूज्यजी हिन्दू-मुसलमान तथा सट तजपाल, सतसिंह, सा० ईश्वर, टा० अचलसिंह भावक आदि लोगों से अनुगमन किये हुए, गुह्यतर प्रभावना पूर्णक संद कराय नाम के स्थान में आय। इस यात्रा में जिनशामन प्रमारक, मरुम राममान्य, मष कर्मों को निमान में समर्थ, आमालबश दापक, मार संप क मार का उगल बाल सत तजपाल, सा० सतसिंह, सा० ईश्वर आदि भावकों न तथा मरुमसंप क अग्रगण्य, उदार चरित्रधारी, मष दिशाओं में विख्यात, मत्रीदसीय बशभूषण अपन पुत्ररत्न भीरम मरित ठ० अचलसिंह भावक न भीपूज्यभी का और मार मष की बड़ी मारी महापता की। इस प्रयत्न यात्रा में कई माम पावन क बाद चौमागा लग गया। लोगों का विदा करके भी अचलसिंहदि भावक मरुमराय में ही रह और भीपूज्यभी न भी वहीं पातुमान किया।

सुनान क चन्दन स तथा संप के अनुगत स 'रायामिवागमं, गणामिपोगेत्' इत्यादि विद्वान्-शास्त्रों का स्मरण करके भावक क महान में चौमान क बीच में हा संप के मरुमक टाक

भीसंघ पूजा, सोने-चांदी के कढ़ों एवं अन्न-वस्त्र का दान देकर, कलिकास में भी सतपुत्रा की तरह सबको सुखी बनाने वाली वीर-शासन की बड़ी प्रमादना की। यहां पर डा० हरिराम के पुत्रात्न, उदारचरित्र, देवगुरु आझा पालक, ठाकुर मदनसिंह के छोटे भाई डा० देवसिंह आबक ने भीस इबार बैयस (उस समाने का प्रचलित सिक्का) देकर इद्रपद ग्रहण किया। इसी प्रकार डा० हरिराम आदि फनादप आतकों ने मंत्री आदि पद ग्रहण किये। दशमंवार के सार मिलाकर डेढ़ लाख बैयस इकट्ठे हुए। इस्तिनापुर में पांच दिन दिनशासन की प्रमादना करके समस्त सभ भीमपुरासीर के लिये बल पड़ा। मार्ग में अगाह-अगाह उत्सवादि करता हुआ भीसंघ दिल्ली के पास वाले तिसपब नामक स्थान में पहुँचा। इस समय भीपूज्यजी की प्रतिष्ठा से झुंझने वाले, दुर्जन स्वभाव वाले ब्रमकपुरीयाचार्य ने बादशाह कुतुबुद्दीन के आगे खुराली की कि "बिनचन्द्रकारि नाम का साधु आपकी आज्ञा बिना ही सोने का छत्र पारब करतें हैं और तिहासन पर बैठते हैं।" यह संवद सुनकर म्लच्छ स्वभाव वाले बादशाह ने सारे सभ को रोक दिया और मुनि परिवार तथा सवपति ठाकुर अचलसिंह के साथ भीपूज्यजी को अपने पास बुलाया। भीपूज्यजी के तेजस्वी मुख-मंडल को देखते ही न्याय के समुद्र और अपने प्रताप से समग्र पृथ्वी को जोतने वाले भीमलाठरीन सुसतन के पुत्रात्न भीडुतुपुरीन सुसतान न कहा कि "इन स्वैताम्बर साधुओं में दुर्जनों की कहीं हुई एक भी बात नहीं घटती।" भीपूज्यजी को दीवानखाने में भेजते हुए, सुसतान ने दीवान साहब को फइसबा भेजा कि "इन स्वैताम्बर साधुओं की इतिकर्तव्यता, आचार-व्यवहार आदि को अच्छी तरह जांच कर जो सूझी शिक्कपत करने वाले अन्यायी हों, उन्हें दण्ड दिया जाय।"

प्रधान अफिक्कारी पुरुषों ने मल्लीमांति न्याय-अन्याय की जांच कर, बरके मारे गुप्त स्थान में छिपे हुये ब्रमकपुरीयाचार्य सैत्यवासी को पकड़ मँगवाया और राजद्वार पर लूटा किया। सरकारी अफिक्कारियों ने पूछा कि 'आप अपनी शिक्कपत को प्रमातों से सत्यकर सकते हैं?' 'उत्तर में कोई सन्तोषजनक बात न कहने के कारण, भीपूज्यजी के सामने ही राजद्वार पर लड़े हुए आतों हिन्दु सुसतमानों के समक्ष, राजकीय पुरुषों ने उसको छाठी, पूसा, मुक्क आदि से अर्बर देह बनाकर सेलखाने में बास दिया और उसकी बड़ी सुराई की। सरकारी आदमियों ने भीपूज्यजी से कहा कि "आप सत्यमापी हैं, न्यायी हैं और सच्चे स्वैताम्बर साधु हैं। आप बादशाह की भूमि पर स्वेच्छा से बिचरें, इस विषय में आप किसी प्रकार की शक्का न करें।"

यद्यपि बादशाह की ओर स भीपूज्यजी को जाने की इजाजत मिल गई थी, परन्तु दयाल स्वभाव वाले भीपूज्यजी ने सेठ तेजपास, सा० खेतसिंह, डा० अचलसिंह और डा० फेरू आदि को पुलाकर कहा कि दुर्जन स्वभाव वाले ब्रमकपुरीयाचार्य को कैद से छुड़ाये बिना हम इस स्थान से आग नहीं बनेंगे। क्योंकि भीमर्षमान स्वामी के शिष्य भीमर्षदास गखि ने उपदेशमाता में कहा है—

जो चंदयेण घाहुँ आलिप्पइ वासिणाइ तच्छेइ ।  
संधुणइ जोवि निंदइ महरिसिणो तत्थ समभावा ॥

[ चन्दन, सींचने वाले पुरुष की मुद्रा को सुगन्धित करता है, धंस ही कान्ठने वाले (कुन्दाइ) को भी सुवासित करता है। इसी तरह महर्षि लोगों का स्तुति और निन्दा करने वाले पुरुषों में समभाव रहत है। ]

अन्य शास्त्रों में भी लिखा है—

शत्रो मित्रे तृणे स्त्रैये स्वर्णेऽश्मनि मणौ मृदि ।  
मोचे भवे च सर्वत्र निस्पृहो मुनिपुङ्गवः ॥

[ मुनि लोग शत्रु-मित्र, घास, स्त्रीचन्द, सुवर्ण, पत्थर, मणि, मिट्टी का ढला, मोघ और सत्तार इन सब में निस्पृह रहत हुये समान भाव रखते हैं। ]

इस प्रकार शत्रु-मित्र में समभाव वाले, तृण, मणि, मिट्टी क ढेल और कचन को णफमा समझने वाले, दया क समुद्र भीषज्यजी का दुश्मन को कंद से छुड़ाने का हृद अमिषाय जानकर सरकारी और गैर सरकारी ममा लोगों ने आश्चर्य स अपना माथा पुनत हुए पूज्यभी की अधिकाधिक प्रशंसा की। इसके बाद भीषज्यजी ने तत्रपाल आदि भावकों क द्वारा दयालु अधिकाधिकों को समझ-मुझकर द्रमकपुरीयाचार्य को बेल स छुड़वाकर उमको अपनी पौषशाला में भेवा। तत्पश्चात् अशालाके अध्याय द्वारा अतीव सम्मानित हुए भीषज्यजी हिन्दू-मुसलमान तथा सट तत्रपाल, सेतविह, सा० इरवर, डा० अचलविह आरक आदि लोगों स अनुगमन किय हुए, गुरतर प्रमावना पूर्वक लंड कराय नाम के स्थान में आय। इस यात्रा में जिनशामन प्रमावक, मकल राजमान्य, मय कामों को निभाने में समर्थ, मामालबंश दीपक, सार सप क मार की उगान बान सत तत्रपाल, सा० एतविह, सा० ईशर आदि भावकों न तथा सकमर्ष क अग्रगण्य, उदार चरित्रधारी, मय दिशाओं में विख्यात, मत्रीदलीय बशभूषण अपने पुत्ररत्न भीरुम मरित डा० अचलविह भापक न भीषज्यजी का और सारे सप की बड़ी मारी सहायता की। इस प्रकार यात्रा में कई माम पीतने क बाद चौमाया लग गया। लोगों को विदा करक भी अचलविहदि आरक महमराय में ही रह और भीषज्यजी ने भी वहीं चातुमाय किया।

गुप्तान के कइने से तथा संप के अनुरास स "रायामिषागर्ग, गणामिषागर्ग" इत्यादि विद्वान्-शाक्यों का स्मरण करके आर्य क मनीस में चौमाय क कीच से का संक -

अबलसिंह, सा० सुप्रपाल आदि समग्र बागवदेश के सभ को साथ लेकर भीमपुरी, भीमपुरी, भीमहावीर आदि तीर्थंकरों की यात्रा के लिये मथुरा को प्रस्थान किया। मथुरा में भीसंभ ने अमरसत्र, स्वधर्मिक-वात्सल्य आदि कर्षों से शासन की बड़ी प्रमादना की। वहाँ से सौंदर्य संघ सहित भीपूज्यजी ने योगिनीपुर आकर शेष चातुर्मास को खडासराय में पूरा किया। वहाँ पर रहते-रहते चातुर्मास में स्वर्गीय भीमिनचन्द्रहरित्री महाराज के स्वरूप की बड़े विस्तार से दो बार यात्रा की।

६० चातुर्मास समाप्त होने पर भीपूज्यजी ने स्व-शरीर में कम्प रोग जनित पाषाण को देखकर, अपने ज्ञान-प्यान के बल से अपना अन्तिम समय निकट आया जानकर, अपने हाथ से हींचित, द्विषा सतान वाले, अपनी पाटलक्ष्मी के भस्म करने योग्य, व्याकरब-न्याय-साहित्य-अलङ्कार-ज्योतिष आदि शास्त्रों के विचार में चतुर, स्वकीय-परकीय सिद्धान्त समुद्र को तैरने में नाव के समान अपने शिष्यरत्न बोधनाचार्य कुशलकीर्ति गण्डि को पाट पर स्थापित करना तथा उसका नामकरण आदि सर्व शिष्या-समन्वित एक पत्र लिखकर भी रामेन्द्रचन्द्राचार्य मुनि के पास भेजने के लिये विश्वासपात्र-भीदेवगुरुमाझापालक-ठाकुर-भीविजयसिंह के हाथ में सौंपा। चौहान कुरुभूषण, शरबागतवरसप्त भी राजा मालदेवजी का अनुरोध पूर्ण आमंत्रण पाकर भीपूज्यजी ने मेहतानगर आने के लिये विहार किया। मार्ग में आने वाले घामना, रोहतक आदि दुःख-दुःख स्थानों के आरकों की बन्दना स्वीकार करते हुए भीकन्यानयन नगर में आकर भी महावीर देव को नमस्कार किया। वहाँ पर भीपूज्यजी के शरीर में आस और कम्प की व्याधि बढ़ गई। इसी से स्वामीय चतुर्विंश सभ के समक्ष मिथ्यापुण्य दान देकर, सब प्रकार की शिष्या से पूर्ण लेख लिखवाकर भी रामेन्द्रचन्द्राचार्य के पास भेजने के लिये विश्वासपात्र प्रवर्तक भी अपेक्षमगण्डि के हाथ में दिया। एक महीन तक कन्यानयनीय समुदाय को संतोष देकर भीनरमट आदि नाना स्थानों के लोगों की बन्दना स्वीकार करते हुए मारवाड़ के प्रसिद्ध नगर मेहता पहुँचे। मेहता में राधा भीमासदेव और समुदाय की प्रार्थना से उन लोगों के संतोष के लिये चौबीस दिन ठहर कर भीपूज्यजी अपने निवास योग्य स्थान समस्त कर भीकोशवासा पहुँचे। वहाँ पर चतुर्विंश संघ से समत-सामय करके स० १३७६ आषाढ़ सुदि नवमी को बैठ पहर रात गये बाद पैसठ वर्ष की उम्र में भीमिनचन्द्रहरित्री महाराज ने इस विनम्रशील पंचमौलिक शरीर को त्याग कर स्वर्ग में इच्छाओं का आतिथ्य स्वीकार किया।

प्रातःकाल होत ही भीसंभ ने भी बद्धमान स्वामी के निवास समय की विधि के समान अनेक मंडपिच्छमों से सुशोभित विमान बनाकर उसमें भीमरीश्वरजी के शव को रखकर नागरिक और राजकीय लोगों के समुदाय के साथ शमशान यात्रा महोत्सव किया। उसे अक्षर पर बारह

मन्त्र के शायों का निनाद, नाचों की उल्लास तथा सभया महिलाओं द्वारा पूर्वाचार्यों का गुणगान आदि कार्य किये गये । उस समय कतिपय विद्वानों ने महाराज के गुणगानों का इतना मति बर्णन किया—

यस्मिन्नस्तमितेऽखिलं चित्तितर्षं शोकाकुलव्याकुलं,  
जज्ञे दुर्मदवादि कौशिककुलं सर्वत्र येनोत्थयाम् ।  
ज्योतिर्लक्षणतर्कमन्त्रसमयालंकारविद्यासमा,  
दुःश्रीका वनिता इवाप्रमुषने वाञ्छन्ति हा तुच्छताम् ॥  
पद्मापहारनिखिले महोत्सवे गार्मिनिर्जरतरङ्गिते ? ।  
विधाय येऽस्तगता श्रीस्वर्गं ये ॥  
ये तु रीनेपुत्रनिघतवयं मुक्तं मा हस्याकुलं (१),  
सद्यस्तस्पथगामिभि सहचरे सौराज्यसौमिन्द्यके ।  
स्यास्यामोऽपनय (१) कथं वयमिति ज्ञात्वेव चिन्तातुरैः,  
प्रातः श्रीजिनचन्द्रसूरियुगल स्वर्गस्थिता मङ्गलम् ॥  
माढ्यं भूषणये चयं कल्पितेर्दुर्मिच्छसेनापते—  
ज्ञात्वा तन्मथनोयताः सुरयुरु प्रष्टु सखायं निजम् ।  
मन्ये नाशिकमन्त्रधारणयुताभावात् पत्रावुद्यता (१),  
राजानो जिनचन्द्रसूरय इति स्वर्गं गता दैवत ॥

महाराजश्री की पारलौकिक क्रियाओं के विभिन्न पूर्वक सम्पन्न किये बाद मन्त्रीमन्त्र देवराज के पौत्र मंत्री मासकचन्द्र के पुत्ररत्न मंत्री श्री भूषण भावक ने विधा स्थान की जगह भीष्मपुत्री की परबपादुका सहित एक सुन्दर स्तूप बनवाया ।

## आचार्य जिनकुशक्षसूरि

६१ चातुर्मास समाप्त होने पर सब तरह की शिक्षा प्राप्त भीषण्य के दिये हुए पत्र लेख को लेकर शयवद्वमगण्डि ५० भीराखेन्द्रचन्द्राचार्य के पास भीमपट्टी आये। पत्र के आशय को समझ कर भीराखेन्द्रचन्द्राचार्यजी, भीषण्यवद्वमगण्डि आदि-आदि साधुओं को साथ लेकर पाटण आये। पाटण में उस समय मुसलमानों के उपद्रव एवं दुर्मिष के कारण स्थिति बड़ी मयानक थी, परन्तु अपने ज्ञान-ध्यान के बल से महोत्सव में आने वाले षट्त्रिंश सप्त के कुशल-मंगल का निरूपण करके, अपने दिवंगत गुरुभी के आदेश पालन को सत्य विन्दु मानकर भीराखेन्द्रचन्द्राचार्यजी ने सं० १३७७ सेठ बदि एकदश्या के दिन छुट्ट मस्य में मूलपद स्थापना महोत्सव का निरूपण किया। चन्द्रकुलावतस, भीमिनशासन की प्रमापना करने में उत्पत्, उदारता में कर्ण को भी तिरस्कृत करने वाले सेठ जाल्दख के पुत्र तमपाल भावक ने अपने भाई कृष्णपाल की सम्मति से, भीषण्यों के अनुग्रहों से, आचार्य पाट-स्थापना महोत्सव का भार अपने ऊपर लेकर चारों दिशाओं में योगिनीपुर, उष्णपुर, देवगिरि, विचौड़, खम्मात आदि स्थानों तक के नाना देशों, नगरों व ग्रामों में रहने वाले आरक्षों को पाट-महोत्सव पर पुजाने के लिए अपने आदिमियों के हाथ कुकुम पश्चिम्ये मेरी। पत्र द्वारा समाचार पाकर दुर्मिष आदि की मयानकता की परवाह न करके सप्त स्थानों के भावक होड़ाहोड़ महोत्सव के दिन पाटण पहुँचे। ठाकुर भीविजयसिंह भी भीषण्यजी के दिये पाट-स्थापना सम्बन्धि कर्णों की शिक्षा देने वाले बंद सिफाके को लेकर योगिनीपुर से पाटण पहुँचा। सब स्थानों से सप्त समुदायों के आ जाने के बाद अपन प्रतिष्ठा कर्ण को सफल करने में उत्पन्न भीराखेन्द्रचन्द्राचार्य ने भीजिनचन्द्रहरिजी के गण्ड के आचारसम्भ, सकल-विद्याओं के पढ़ाने में अद्वितीय भीषिवेकसमुद्र महोपाध्याय, प्रवर्णक शयवद्वमगण्डि, हेमसेनगण्डि, वाचनाचार्य हेमभूषणगण्डि आदि तैतोस साधुओं की उपस्थिति में तथा भीषण्यजी महेश्वरा, प्रवर्तिनी बुद्धिसमृद्धि गखिनी, प्रवर्तिनी प्रियदर्शना गखिनी आदि २३ साध्वियों और सारे स्थानों से आने वाले समुदायों के समक्ष भीषण्यवद्वमगण्डि और टा० विजयसिंहजी के द्वारा प्राप्त स्वर्गीय भीषण्यजी के दोनों पत्र पढ़कर सुनाये। दिवंगत आत्मा क सन्देशों को पत्रों द्वारा सुनकर षट्त्रिंश सप्त नवीन कर्ण की तरंगों में दिसोरें लेने लगा। जैसे कोई नवीन निधि प्राप्त हो गई हो। गुठ की आज्ञा परिपालन में दद, सब प्रकार के अतिशयों से शोभित, चार प्रकार के संप से आहत भीराखेन्द्रचन्द्राचार्य ने कर्ण्य की शिक्षा से समन्वित भीषण्यजी के पत्र लेख के अनुसार मंत्रीरत्न रावद्वस क प्रदीप, मत्री जेमस की धर्मपत्नि जयन्तभी क पुत्र, चालीस वर्ष की उम्र वाले, सर्व युगप्रदों के निर्मित शास्त्रों क ज्ञाता, वाचनाचार्य भीडुगलधिति गण्डि को भीशान्विनाय देव तथा सक्षस समुदायों क समक्ष गुजरात क मुद्रा के समान थी पाटण नगर में युगप्रधान पदवी देकर

उत्सव के साथ पाट पर स्थापित किया और "पूज्य भी जिनकुशलसरि" नाम रखा तथा समवसरण प्रदान भी किया गया। कुशलकीर्तिगणित्री गणधरों के समान लम्बिचारी थे। स्वैर्य, चैर्य, गाम्भीर्य आदि गुणगणों से उपाहित उनके यश रूपी कपूर प्रवास से सारा विश्व सुगन्धित था। उनका यश महादेव का हास्य, पृथिमा की राव, चांद की किरणों, गाय का दूध, मातियों का हार, पर्क, सफ़द हाथी दाँत का पूर्ण की तरह स्वच्छ था। ये राजेन्द्रचन्द्रसरि का सहायी थे। नवीन नाट्य रस के अवतार थे। नवीन सरस काव्य रचना के द्वारा परिइतों के यश को लूटने वाले थे। ज्ञान-ध्यान की अधिष्ठा में पूर्वाचार्यों से किसी भी तरह कम नहीं थे। सब विद्याओं के पारङ्गत थे। वाक्पाठुर्त्य में पूर सति से भी विशिष्ट थे। देश में म्लेच्छों की प्रधानता होने पर भी हिन्दू राजा भेषिक, सम्प्रति कुमापाल, आदि के समय की तरह उत्सव बढ़ा चमत्कारी हुआ। उसव के दिनों में सोने चांदी के फटे बाँटे गये। आम-बस्तादि देकर याचकों के मनोरथ पूरे किये गये। गाना-बजाना, खल-समाग, ताम-रग खूब किये। धारण-भाट-बन्दिजनों ने नई-नई कवितायें सुनाकर अपने माहित्य-ज्ञान का परिषय दिया। बाहर से आने वाले सावर्भी माइयों का अतिथि सत्कार अच्छी तरह स किया गया। इसके साथ सय-पूजा भी की गई थी। इस उत्सव के क्षर्य को सानन्द समाप्त करके युगप्रवरागम भीजिनचन्द्रसरि की महाराज का आदेश रूपी महल पर एक प्रकर से सुवर्ष कलरा चड़ाया गया।

इस उत्सव में अपन सय मनोरथों को पूर्ण करने वाले, उदार धरित्र सेठ वजपाल ने पतुविम सय के आगन्तुक सभी थायकों को सिरोपाव दकर सम्मानित किया था। अनेक गच्छों क सौ आचार्य और हजारों साधुर्मा की भी बस्य दका प्रसन्न किया था। सब बायनाचायों क मा मनोरथ पूर किये थ। इस महोत्सव में प्रधान सठ सामल के पुत्र, सावर्भिक-वत्सल, भीमपल्ली समुदाय क मुकुट पुत्र पुष्पासिंह सेठ धीरदेव भावक, भीमालकुलभूपथ बांजल पुत्र सेठ राजसिंह, मन्त्रीदलीय राज मान्य-गुरु बाला प्रतिनालक ठाकुर विशयसिंह, ठाकुर नैयसिंह, ठाकुर कुमरसिंह, ठाकुर नवनपाल, ठाकुर पान्दा आदि मन्त्रीदलीय भावकों ने साह सुमट के पुत्र मोहन पन्-ऊँध प्रमुख, बाबालिपुर के साह गुसधर आदि, पान्य के साह विहण आदि, बीजापुर के ठाकुर पदमसिंह आदि, आन्नावली के गोठी नैयसिंह आदि ने और सम्माव के समुदाय ने भीसप-पूजा साधर्भिक बात्मन्य, भोजनदान आदि शुभ क्षर्य सम्पादन करक अपने द्रुप्य का सदुपयोग किया। उम दिन मानारोप्यादि नन्दि योरोसव भी किया। इसक अतिरिक्त सार भासप न भीजिनकुशलसरि की महाराज क पाठमहोरसव क उत्सव में भी शक्तिनाय देव के आगे अषिक उत्साह पूर्वक आठ अठई महोसव किये।

६२ इस प्रसार युगप्रधान राज्य को पारक भीजिनकुशलसरि की महाराज न महामिष्यान्व रूप गुरु क दक्षतन के तिय दिग्गजप की क्षमना से भीमपल्ली आने के तिय रिहार किया। धीरद्व प्रारक ने अगुमा होकर धीर्यों का प्रवेश महोरसव करवाया। महाराज न प्रथम पातुर्माय भीमपल्ली से



## आचार्य जिनकुशसूरि

६१ चातुर्मास समाप्त होने पर सब तरह की शिक्षा प्राप्त भीष्य के दिये हुए पत्र लेख को लेकर ब्रह्ममगधि ५० भीराजेन्द्रचन्द्राचार्य के पास भीष्य पड़ी आये। पत्र के आशय को समझ कर भीराजेन्द्रचन्द्राचार्यजी, भीष्यब्रह्ममगधि आदि-आदि साधुओं को साथ लेकर पाटश आये। पाटश में उस समय मूसलमानों के उपद्रव एवं दुर्मिष के कारण स्थिति बड़ी मयानक थी, परन्तु अपने ज्ञान-ध्यान के बल से महोत्सव में आने वाले चतुर्विंश सष के कुशल-मगल का निरूपण करके, अपने दिवंगत गुरुभी के आदेश पालन को सच्य पिन्दु मानकर भीराजेन्द्रचन्द्राचार्यजी ने सं० १३७७ बेटे बदि एकदशी के दिन कुम्भ स्नान में मूलपद स्थापना महोत्सव का निरूपण किया। चन्द्रकुसावतस, भीषिनशासन की प्रभावना करने में उद्यत, उदारता में कर्ण को भी तिरस्कृत करने वाले सेठ ब्राह्मण के पुत्र तेजपाल भावक ने अपने माई रुद्रपाल की सम्मति से, भीष्यों के अनुग्रहों से, आचार्य पाट-स्थापना महोत्सव का मार अपने ऊपर लेकर चारों दिशाओं में योगिनीपुर, उभापुर, देवगिरि, विचौर, खम्मात आदि स्थानों तक के नाना देशों, नगरों व ग्रामों में रहने वाले आत्कों को पाट-महोत्सव पर बुलाने के लिए अपने आदमियों के हाथ कुकुम पत्रिकाये मेडी। पत्र द्वारा समाचार पाकर दुर्मिष आदि की मयानकता की परबाह न करके सब स्थानों के भाषक होड़ाहोड़ महोत्सव के दिन पाटश पहुंचे। ठाकुर भीविजयसिंह भी भीष्यजी के दिये पाट-स्थापना सम्बन्धि कापों की शिक्षा देने वाले बंद लिफाफे को लेकर योगिनीपुर से पाटश पहुंचा। सब स्थानों से सब समुदायों के आ जाने के बाद अपन प्रतिष्ठा कर्ण को सफल करने में उत्तर भीराजेन्द्रचन्द्राचार्य ने भीषिनचन्द्रसूरिजी के गण्ड का आचारसम्भ, सकल विद्याओं के पढ़ाने में अद्वितीय भीविकेससुत्र महोपाध्याय, प्रवर्षक ब्रह्ममगधि, हेमसेनगधि, वाचनाचार्य हेममूषणगधि आदि सेतोस साधुओं की उपस्थिति में तथा भीष्यसिंह महारा, प्रवर्षिनी बुद्धिसमृद्धि गम्बिनी, प्रवर्षिनी प्रियदर्शना गम्बिनी आदि २३ साधियों और सार स्थानों से आने वाले समुदायों के समक्ष भीष्यब्रह्ममगधि और ४० विषयसिंहजी के द्वारा प्राप्त स्वर्गीय भीष्यजी के दोनों पत्र पढ़कर सुनाये। दिवंगत आत्मा क सन्देशों को पत्रों द्वारा सुनकर चतुर्विंश संघ नवीन हर्ष की तरंगों में हिलोरे लेने लगा। उसे कोई नवीन निधि प्राप्त हो गई हो। गुरु की आज्ञा परिपालन में उद, सब प्रकार के अतिशयों से शोमित, पार प्रकार के सष से आहत भीराजेन्द्रचन्द्राचार्य ने कर्ण्य की शिक्षा से समन्वित भीष्यजी के पत्र लेख के अनुसार मंत्रीवर रामकुल के प्रदीप, मथी जेवस की धर्मपति ब्रह्मन्तभी क पुत्र, पालीस बर्ष की उम्र वाले, सर्व युगप्रवरों के निर्मित शास्त्रों के ज्ञाता, वाचनाचार्य भीकुशलकीर्ति गधि को भीशान्तिनाथ देव तथा सकल समुदायों क समक्ष गुजरात क सुदूत के समान भी पाटश नगर में युगप्रधान पदवी देकर

भीमपत्नी महाराज के मंदिर की नींव डाली गई थी। उसी समय देव और गुरुओं की मूर्तियाँ पालन में उत्तर साह नरसिंह क पुत्र खीरद्व भावक ने उद्यापन महोत्सव किया था। उस महोत्सव के समय श्रीशान्तिनाथ आदि तीर्थहरो की शिखा, रत्न और पीतल आदि वास्तुओं की बनी हुई देव सौ प्रतिमाएँ, दो मूल समबसरवा और भीञ्जिनचन्द्रधरि, जिनरत्नधरि आदि नाना अधिष्ठाओं की प्रतिमाएँ भीपूज्यजी द्वारा स्थापित की गईं। उस महोत्सव में भीमपत्नी के भावकों में प्रधान उदार-धरित्र सांवल नामक सेठ के पुत्र धीरदेव ने, भीपचन, भीमपत्नी, आशापत्नी आदि नगरों के भावकों ने तथा सेठ सहजपाल के पुत्र स्मिन्धर ने और सेठ धीरराज के सुपुत्र खेतसिंह आदि वहाँ आये हुए भावकों ने भीसंघपूजा, साधर्मिक वास्तव्य और इन्द्रपद आदि महोत्सवों की रचना करके भीञ्जिन-शासन को प्रमाणित किया। इसके बाद भी बीजापुर के भावकों के अतुरोच से भीपूज्यजी भावक समुदाय के साथ बीजापुर आये। वही धूमधाम से महाराज का नगर में प्रवेश कराया गया। वहाँ पर भीपूज्यजी ने भीवासु रूप मगधान के महातीर्थ को नमस्कार किया। इसके बाद बीजापुर के भावकों को साथ लेकर भीपूज्यजी ने त्रिशु गमक नामक नगर की तरफ बिहार किया। वहाँ पहुँचने पर शासन क प्रभाव को दाने वाले सेठ जेसलजी के सुपुत्र जगधर और लक्ष्मण नाम के दो भावकों ने इनको मनुष्यों के साथ गाँव-गाँव से महाराज श्री का नगर प्रवेश करवाया। इसके पश्चात् धीपूज्यजी महाराज मत्रि रक्षीय कुल में उत्पन्न, देवगुरु की आज्ञा को मानने वाले, ठाकुर आसपाल के पुत्र, ठाकुर जगतसिंह आदि बीजापुरीय और त्रिशु गमपुरीय भावक-बुन्द क साथ भी आराधना और तारा नामक महोत्सवों में गये। वहाँ पर महाराज के सदुपदेश से साधर्मिक वास्तव्य भीसंघ पूजा, दानशाळा और महाधर्मरोपण आदि अनेक कार्य किये। वहाँ से आकर महाराज ने तीसरा चौमासा पाठक में किया।

सं० १३०० कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी के दिन पूज्यजी महाराज न सेठ तेजपाल तथा रुद्रपाल की ओर से शत्रुघ्नप पहाड़ पर बनाये गये मध्य विशाल मन्दिर में स्फटिक मथि की बनी हुई, कर्पूर व्रिंसी चरस, सचास्र अंगुल प्रमाण वाली आदिनाथ भगवान् की प्रतिमा की स्थापना की। धार्मिक कार्य में सेठ तेजपाल ने बहुत नाम कमाया था। इनके दादा सेठ यशोधरस भा मारवाड़ के कल्पवृक्ष कह जाते थे। पहले ही कहा जा चुका है कि सेठजी चन्द्रकुल प्रदीप भीञ्जिन प्रबोधधरिजी महाराज क छोटे भई जगन्धरा नामक भावक के पुत्र थे। भीञ्जिनकुलधरिजी क पाठ महोत्सव के समय इन्द्रोत्त प्रभुर मात्रा में धन खर्च करके बड़ी कीर्ति पैदा की थी। इस प्रतिष्ठा महोत्सव में चारों तरफ निमन्त्रण-पत्र दे देकर स्वधर्मियों को बुलाया गया था। ममो आगान्तुक लोगों को मधुर मिष्टान-दान से सन्तुष्ट किया था। पर्याप्त मात्रा में धन बाँटा गया था। अनेक प्रकार के नृत्य-नाटकों का आयोजन करके लोगों का मनोरंजन किया गया था। इस उत्सव में स्वासती-प्यबहारी, राजा-रंक सभी सम्मिलित हुए थे। इस अवसर पर भीञ्जिनप्रबोधधरिजी, भीञ्जिन

ही किया। इसके बाद सं० १३७८ माघ सुदि तृतीया के दिन भीमपट्टी के सेठ बीरदेव झाड़ि सहाय ने बुलाये हुए भीपाटख के भावक बृन्द के साथ सकलजन-मन-को चमत्कारी, दोषा-बहरीषा, मासाग्रहण आदि नदिमहोत्सव किया। इस रू साथ ही साथ स्वर्गमिक्कात्सन्य, भीसपपूजा आदि अनेक प्रमाणार्थों भी कीं। उस महोत्सव में भीराबेन्द्रचन्द्राचार्य ने मालाग्रहण की। दशममण्डनि को हीसा दी। बाचनाचार्य हेमभूषणगणि को अभिषेक (उपाध्याय) पद दिया। पं० मुनिचन्द्रमणि को बाचनाचार्य पद प्रदान किया। उसी वर्ष अपने प्रतिष्ठित कार्य को पूर्ण करने में प्रवीण भीपूज्यजी ने अपने ज्ञान-ध्यान के बल से सकलगन्ध के हित साधन में सदैव उद्यत भीविवेकसमुद्रोपाध्यायजी को आयु समाप्ति जानकर भीमपट्टी से पाटख की ओर विहार किया। पाटख में खेठ बदि चतुर्विंश के दिन शरीर में कोई व्याधि न होने पर भी विवेकसमुद्रोपाध्यायजी को चतुर्विंश संघ के साथ मिथ्या दुष्कृत दिखाया और अत्यन्त अद्भुत पूर्वक अनशन करवाया। उत्पन्नात् भीपूज्यजी के चरक-कमल का ध्यान करते हुये, पंचपरमेष्ठी नमस्काररूप महामंत्र का जप करते हुए, अनेक प्रकार की आराधनाओं का अभ्युत्पान करते हुए विवेकसमुद्रोपाध्यायजी खेठ सुदि त्रितीया के दिन मार्गो देवगुरु-गृहस्वति को जीतने के लिये स्वर्ग पधार गये। पाटख के भावक-बृन्द ने उनके शव को रमशान से जाने के लिए सुन्दर-सा विमान बनाकर सब मनुष्यों के मन में चमत्कार पैदा करने वाला निर्वाण महोत्सव किया। इसके बाद भीपूज्यजी के उपदेश से भीसप ने विवेकसमुद्रोपाध्यायजी की स्मृति के लिए एक स्तूप बनवाया। आषाढ़ सुदि त्रयोदशी के दिन बड़े विस्तार से वासुधप किया। विवेकसमुद्रोपाध्यायजी ने समाज का बड़ा उपकार किया था। इन्होंने ही भीजिनचन्द्रसरिबी, विष्णु-राचार्य, भीराबरोखराचार्य, बा० रात्रदर्शनगणि, बा० सर्वरामगणि आदि अनेक मुनि-महात्माओं को अनेक बार भीहेमव्याकरण बृहस्पृषि नामक ग्रन्थ पढ़ाया था; जो छपीस हजार अनुपुप श्लोकों में है। इसके अतिरिक्त भीन्यायमहातर्क आदि समस्त शास्त्रों का अभ्यास भी उक्त मुनियों को इन्होंने ही करवाया था। इसके बाद वहाँ भीसंघ की ओर से की गई प्रार्थना स्वीकार कर पूज्य भी विनङ्गनासरिबी महाराज ने दूसरा चातुर्मास भी पाटख में किया।

६३ वहाँ पर सं० १३७६ में मिगसिर बदि पंचमी के दिन शान्तिनाथ देव के विधिबैतव की विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करवाई। इस प्रतिष्ठा महोत्सव में अनेक प्राणियों से आकर अगन्धित नर-नारी सम्मिश्रित हुए थे। यह उत्सव दस दिन तक मनाया गया था। इसके खर्च का कुल मार भी सठ तेजपालजी ने उठाया था। सेठ के भाई कृष्णपाल ने भी इसमें काफी मदद दी थी। ये सेठ तेजपाल गुरु भीजिनचन्द्रसरिबी महाराज के छोटे भाई बालकजी के पुत्र थे। कई बातों को लेकर यह प्रतिष्ठा महोत्सव अभ्युत्पन्न था। इसमें अन्न-धन प्रचुर प्रमाणा में बाँटा गया था। बाहर से आये हुए तार्किक मण्डलों की बड़ी आवागमन की गई थी। प्रतिष्ठा में अन्तपादा महोत्सव भी देखने ही योग्य हुआ था। इसी दिन सेठ तेजपाल आदि भावक सहाय की ओर से ही शम्भु-जप नामक तीर्थ स्नान के

भीष्मपदवती महाराज के मंदिर की नींव डाली गई थी। उसी समय देव और गुरुओं की आज्ञा पालन में तत्पर साह नरसिंह क पुत्र खीचक भावक ने उद्यान महोत्सव किया था। उस महोत्सव क समय भीशान्तिनाथ आदि तीर्थहोत्रों की शिला, रत्न और पीतल आदि वातुओं की बनी हुईं देव सौ प्रतिमाएँ, दो मूल समवसरण और भीजिनचन्द्रधरि, विनरत्नधरि आदि नाना अधिष्ठायाओं की प्रतिमाएँ भीष्मपदवती द्वारा स्थापित की गईं। उस महोत्सव में भीमपत्नी के भावकों म प्रधान उदार-धरित्र सावल नामक सेठ के पुत्र वीरदेव ने, भीमचन, भीमपत्नी, आशापद्मी आदि नगरों क भावकों ने तथा सेठ सहजपाल के पुत्र स्थिरचन्द्र ने और सेठ भीशाजी के सुपुत्र खेतसिंह आदि वहाँ आये हुए भावकों ने भीसंभपूजा, साधमिक वात्सल्य और इन्द्रपद आदि महोत्सवों की रचना करके भीजिन-शासन को प्रभावित किया। एक वाद भी बीजापुर के भावकों क अनुरोध से भीष्मपदवती भावक समुदाय के साथ बीजापुर आये। बड़ी धूमधाम से महाराज क नगर में प्रवेश कराया गया। वहाँ पर भीष्मपदवती ने भीष्मपदवती के महोत्सवों को नमस्कार किया। इसके बाद बीजापुर क भावकों के साथ लेकर भीष्मपदवती ने त्रिशू गमक नामक नगर की तरफ बिहार किया। वहाँ पहुंचने पर शासन के प्रभाव को बचाने वाले सेठ खेतसिंह के सुपुत्र जगधर और लक्ष्मण नाम के दो भावकों ने इसको मनुष्यों के साथ जाके-बाजे से महाराज भीष्म का नगर प्रवेश करवाया। इसके पश्चात् भीष्मपदवती महाराज मन्त्रिणीय काल में उत्पन्न, देवगुरु की आज्ञा को मानने वाले, ठाकुर आसपाल के पुत्र, ठाकुर जगतसिंह आदि बीजापुरीय और त्रिशू गमपुरीय भावक-बन्धु के साथ भीष्मपदवती और तारगा नामक महोत्सवों में गये। वहाँ पर महाराज के सहपदेश से साधमिक वात्सल्य भीसंभ पूजा, दानशाखा और महापद्मरोपण आदि अनेक कार्य किये। वहाँ से आकर महाराज ने तीसरा चौमासा पाठ्य में किया।

सं० १३०० धार्मिक शुक्ला चतुर्दशी के दिन पूज्यभीष्म महाराज न सेठ तेजपाल तथा रुद्रपाल की ओर से शत्रुघ्न पहाड़ पर बनाय गये मन्व विशाल मन्दिर में स्तूपिक मणि की बनी हुईं, कर्पूर जैसी धवल, सचाइस अंगुल प्रमाण वाली आदिनाथ भगवान् की प्रतिमा की स्थापना की। धार्मिक कर्षणों में सेठ तेजपाल ने बहुत नाम कमाया था। इनके दादा सेठ पशोचरल भीष्मपदवती क कर्मचर्य कह जाते थे। पाल ही कहा जा शुद्ध है कि सेठजी चन्द्रकल प्रदीप भीजिन-प्रवोपधरिजी महाराज क छोट मर्द आम्हण्य नामक भावक के पुत्र थे। भीजिनकालधरिजी क पाठ महोत्सव क समय इन्होंने प्रचुर मात्रा में धन खर्च करके बड़ी कीर्ति पैदा की थी। इस प्रतिष्ठा महोत्सव में भारत तरफ निमन्त्रण-पत्र दे कर स्वधर्मियों को बुलाया गया था। मभीष्मपदवती क लोगों को मधुर मिष्टान्न-दान स सन्तुष्ट किया था। पचास मात्रा में धन बाँटा गया था। अनेक लोगों को मधुर मिष्टान्न-दान स सन्तुष्ट किया था। पचास मात्रा में धन बाँटा गया था। अनेक प्रकार क नृत्य-नाटकों क आयोजन करके लोगों का मनोरंजन किया गया था। इस उत्सव में म्पापती-व्यवहारी, राजा-रंक सभी सम्मिलित हुए थे। इस अवसर पर भीजिनप्रवोपधरिजी, भीजिन

चन्द्रखरिजी तथा करदपच, क्षेत्रपाल, अम्बिका आदि की प्रतिमाएँ भी स्थापित की गई थी। इसके साथ ही शत्रुञ्जय पहाड़ के उच्चशिखर पर बने हुए उम पिशाल मन्दिर के योग्य ही उस पर चन्द्रद्वारा लगाया गया था। उम महोत्सव में साह धोनाजी के पुत्र खेतसिंह आदि सुभावकों ने इन्द्र पद, भीयुगादिदेव सुखोद्धान्न, मालाग्रहण आदि विविध धार्मिक कार्यों में खर्च करके अपने मन को सफल किया। इसके बाद मार्गशीर्ष कृष्णा पष्टी के दिन मालारोपण, सम्यक्प्रयारोपण, सामायिक-रोपण परिग्रह परिमाण आदि नन्दि महामहोत्सव भी बड़े विस्तार से किया गया।

६४ इसक बाद विक्रम सं० १३८० में भीमालकुलोत्पन्न, गंगा प्रवाह की तरह निर्मल अंतःकरण वाले, भीमिनशासन को दिवाने में प्रेषित, श्रीकलवर्द्धिका महासीर्य की विस्तार स यात्रा करने वाले, भारतविरम्पात-द्वानी-महामान्यशाही, दिव्यी निवासी प्रसिद्ध सेठ भीहरूजी क पुत्र सुभावक सेठ रमपति ने दिल्लीपति बादशाह गयासुद्दीन तुगलक क दरबार में प्रतिष्ठा प्राप्त अपने पुत्र चर्मसिंह के द्वारा प्रधान मंत्री भी नेव साहब की सहायता से इस आशय का एक शाही-फर्मान निकलवाया कि "भीमिनकुशलखरिजी महाराज की अल्पयुवता में सेठ रमपति भावक का सच भीशत्रुञ्जय, गिरिनार, आदि तीर्थयात्रा के निमित्त जहाँ-जहाँ जाय, वहाँ २ इसे समी प्रांतीय सरकारों आशयक मदद दें और संच की यात्रा में बाधा पहुचाने वाले लोगों को दण्ड दिया जाय।" यह फर्मान समी अमीर-उमरावों को आश्चर्य देन वाला था। उसके पश्चात् सठ ने शत्रुञ्जय-गिरिनार आदि महातीर्थों की यात्रा करने क इतु अपने आश्रमियों को मेजरक महाराज से प्रार्थना की।

महाराज ने सेठ के संदेश को सुनकर अच्छी तरह सोच समझकर तीर्थयात्रा का आदेश दे दिया। पूज्यभी क आदेश को सुनकर सठ रमपति बहुत प्रसन्न हुए और अपने पुत्र चर्मसिंह, मानसिंह, शिवराज, अमयचन्द्र क पौत्र मीमम भावक के ज्ञाता सेठ अबखपाल आदि भावक-इन्द्र के साथ ससाह करके पूज्यभी की आज्ञा के अनुसार दिव्यी निवासी अल्पकों में मुख्य मन्त्रीखीयकुलोत्पन्न सेठ अबखपाल, गुरुमठ भीमाली मोशामी, साह छीरम, ठ० फेरु तथा घाम इनां ग्राम निवासी सा० रूप, सा० बीसा, सा पचठली, सठ चैमचर; इसी प्रकार छु भी ब की प्राम के निवासी भावकों को इकट्ठा करके और दिव्यी के समीपवर्ती अन्य ग्रामवासियों को बुलाकर दिव्यी से विदा होने के समय का उत्सव मनाया। अपने पुत्र अष्टिर्वर्ष चर्मसिंह के प्रयत्न से शाही सड़क से एक सुल्लु निकाला गया। अनेक ( बारह ) प्रकार के बाजे बजाये गये, बिछावसिमें गाईं गईं। रासड़े दिये गये। नगर रमसियों ने मांगलिक गीत गाये। दुःखी-भूखे लोगों को दान दिया गया। सरकारी आश्रमियों को सुख भूषण, शाल-दुशाल तथा घोड़े इनाम स्वरूप दिये गये। प्रथम वैशाख वदि सप्तमी के दिन नवीन निर्मित प्रासाद के सज्ज देवालय की साय सेकर बड़े आरोह-समारोह के साथ समस्त भीसच ने दिव्यी से प्रस्थान किया। यात्रा के प्रथम दिन से भी सेठ रमपतिजी की ओर से अन्नक्षेत्र खोला गया।

ग्रामों को भी व्यक्ति मनोबद्धित मोहन पा सकता था। दिल्ली से चलकर श्रीसध कन्या नयन नामक नगर में पहुँचा। वहाँ पर युगप्रधान भी विनयचरिणी महाराज से प्रतिष्ठित 'श्रीमहावीर' कीर्तिका का अर्चन-वन्दन किया गया और खैनेतर लोगों के हृदयों में सम्पत्त्व-भद्रा पैदा करने वाली महान् शासन प्रमावना की गई। वहाँ से सेठ पूजा, सेठ पया, सेठ रावा, सेठ रावू, ठा० देवाण, सेठ काखू, सठ पूना आदि भावकों को तथा आशिका नगरी के सेठ वेदा आदि भावक समुदाय को साथ लेकर संघ आगे की चला। इसके पश्चात् हर एक गाँवों और नगरों में चर्म की प्रमावना करता हुआ सारा संघ नरमट नगर में पहुँचा। वहाँ पर श्रीविनयचरिणी महाराज से प्रतिष्ठित भीनवफत्या पार्वर्ननाथजी की नमस्कार किया। वहाँ से साह भीमा, सा देवराज आदि अच्छे-अच्छे भावक लोग संघ के साथ हो लिये। इसके बाद खाटू न बडा, झूँ झूँ नू आदि गाँवों व नगरों के रहने वाले सा गोपाल, सा कान्हा आदि भावक लोग भी संघ के साथ चल पड़े। अन्तर्गत विनयासन की प्रमावना करने वाले सेठ रयपतिजी सारे संघ को साथ लिये हुए फलौ दी (मरवाड़) पहुँचे। वहाँ पर भीपार्वर्ननाथदेव की यात्रा के निमित्त बड़ा भारी उत्सव मनाया गया। उस संघ में सम्मिलित होने के लिये संघपति की ओर से अनेक प्रामों व नगरों को कुछ कम पत्र भेज गये थे। आने वालों में कतिपय मुख्य-मुख्य सज्जनों के नामों का यहाँ उल्लेख किया जाता है। सेठ हरिपाल के पुत्र गोपाल, पासबीर के पुत्र नन्दन, हेमल के पुत्र कडुआ, पूर्णचन्द्र के पुत्र प्रमलशाली हरिपाल, पेयड़, बाइर, काखण, सीधा, सामल, तथा कीकर आदि उ था पु री निवासी, बलुपाल देवराजपुर के, क्यासपुर आदि के मोहनदास आदि, मरुकोट के ताडण्य आदि समग्र विंघ के अनेक ग्राम-नगरों के संघ तथा लखमसिंहादि नागौर प्रमुख क अनेकों समुदाय तथा मडला के भाँडा आदि पर्व क्षेत्रवाला के मंत्री केन्हा आदि भावक समुदायों के कुछ के कुछ इस संघ में शामिल हुए। वहाँ से चलकर मार्ग में गुड हा निवासी भावक सा मेरू आदि समुदाय को साथ लेकर सारा संघ आ लौ र पहुँचा। वहाँ पर नगर प्रवेश के समय सरकारी और गैर सरकारी सभी लोगों ने संघ का स्वागत किया। वहाँ पर विपत्तियों के हृदय में क्षीत की तरह सुमने वाली अंत्य परिपाटी आदि महती प्रमावना भीसंघ ने की। वहाँ से साह महिराज और कोरटक गाँव के रहने वाले गांगा आदि भावक लोग भी संघ के साथ तीर्थयात्रा के लिये चल पड़े। इस पश्चात् संघ न भीमास नगर में श्रीशक्तिनाथजी की और भीमपट्टी एम वा प ड गाँव में विष्णु समारोह के साथ श्रीमहापोरदेव की अर्चा-पूजा की। वहाँ से चलकर सार संघ ज्येष्ठ बदि अहर्दशी के दिन गुजरात के प्रधान नगर पाटण में पहुँचा। यह स्थान सुप्रसमानों से भर पू था, महाराजपिराज की सना की तरह विशाल संघ योग्य स्थान में उतरा। बाद में संघपति सेठ रयपति एम महणसिंह आदि अनेक प्रामों से आये हुए लोगों ने अनागनों में बसित महाराजपिराज द्यार्णमद्र का तरह

भद्रों के साथ स्थावर तीर्थ श्रीशक्तिनाथ व लंगमतीर्थरूप युगप्रधान श्रीब्रिनकुशसहस्ररिची महाराज व चरखों में विविधपूर्वक घन्दना की। श्रीशक्तिनाथ भगवान् के चैत्य में संघ ने भद्रार्ई महोत्सव किया। इसके बाद थीसव ने पाटख के समाम मन्दिरों में बड़े विस्तार के साथ चैत्यपरिपाणी की। इस समय के उत्सव को देखकर समी लोग आश्चर्य चकित हो रहे थे और अन्य धर्मी भी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा कर रहे थे जो कि सम्पत्तर प्राप्ति का साधन था।

६५ इसके बाद सकल संघ के मुकुट तुल्य सेठ रयपति एवं समग्र संघ के मत को निमाने में प्रवीण साह महेशसिंह, गोपाल, अक्षयपाल, फालू, हरिपाल आदि देशान्तरीय भाषक समुदाय ने और पचन निवासी साधुराज बाण्ड्य के कुल के दीपक, आचार्य ब्रिनकुशसहस्ररिची म के पद स्थापनोत्सवादि अनेक पुण्यकार्यों को करने वाले तेजपास एवं भीमालकुलभूपक धन्वल के कुल में मुकुटमखि तुल्य सेठ रयपति के संघ के गुरुराजक पदधारक राजसिंह, भीपति के पुत्र कुलचन्द्र तथा भीमवादी के पुत्र सेठ गोसल आदि इ म्मीरपुर तथा पाटख निवासी मुख्य भाषकों ने धमचक्रवर्ति श्रीब्रिनकुशसहस्ररिची महाराज से विज्ञप्ति की कि 'हे स्वामिन् ! यद्यपि वर्षा श्रुतु निकट आगई है। फिर भी समस्त भीसंघ के उपर महान् कृपा कर के अनेकों उपद्रवादि महाभयनों के बल वाले एवं द्रुट स्वामी कलिकाल कुत अनकों आपत्तियों से संघ की रक्षा करन के लिये आप प्रसन्न होकर तीर्थ की विजय यात्रा में संघ के साथ पचारिये जिससे संघ के मनोरथ पूर्ण हों। इस प्रकार संघ समस्त की विज्ञप्ति को सुनकर दाक्षिण्यता के समुद्र भीभार्प्यसुहस्विहरि, भीवज्रस्वामी, भीभमयदेशहरि, भीभ्रिनदत्तहरि आदि अनेकों युग प्रभोनाचार्यों के चरित्र तुल्य चारित्र से बिनहीं निशद कीर्ति सपार्जन की है ऐसे आ० श्रीब्रिनकुशसहस्ररिची महाराज ने आत्तरयकादि शास्त्रधर्मों का कथन ध्यान में रखकर संघ को स्वीकृति दी। कहा भी है:—

“जो अवमल्लइ संघ, पावो धोर्व पि माणामयक्षितो ।

तो अप्पणां वोल्लइ, तुक्खमहासागरे भीमे ॥ १ ॥”

[ जो पापी मनुष्य मान-मद में लित होकर भीसंघ का घोडा भी अनादर करता है, वह अपनी आत्मा को भयकर दुःख के समुद्र में डूवाता है। ]

“सिरिसमणसंघआसा—यणाओ पारित्ति जं तुहुं जीवा ।

तं साहिउं समरयो जह परि भयवं जगो होइ ॥ २ ॥”

[ जो धमक संघ की अवज्ञा-आशाठना से नाना प्रकार के दिन दुःखों को भीष पाते हैं। उनको कहने में वही समर्थ हो सकता है जो संपूर्ण ज्ञानी केवली हो। ]

तिरथपणामं फाउं, कहेइ साहारणेण सहेशे ।

सव्वेति सद्धीणं, जोयणानीहारिया भयवं ॥ ३ ॥

[ योक्तों तक दृष्टि से देखने की अपूर्व शक्ति रखने वाले भगवान् न साधारण शक्तियों में सभी सम्पन्धी प्राणियों को यह आज्ञा दी है कि सदा सर्वदा तीर्थ ( सच ) को प्रणाम करो । ]

तत्पुच्छियया अरहया पूङ्गवपूया य विद्यायकर्म च ।

क्यकिञ्चोऽपि अह कह कहेह नमप तद्वा तित्थ ॥

[ कृतकृत्य एवं अगत्यून्य अरिहन्तों ने भीसंघ के सामने विनय क्रिया और इसकी पूजा की है । भगवान् ने अगह-अगह "नमप तद्वा तित्थ" अर्थात् इसलिये तीर्थ को नमस्कार है । ऐसा धार धार क्या है । इस कथन को अन्याया क्रीन कर सकता है । ]

“य” संसारनिरासलाजसमतिमुक्त्यर्थमुत्तिष्ठते,

यं तीर्थं कथयन्ति पावनतया येनास्ति नान्यं सम ।

यस्मै तीर्थपतिर्नमस्यति सता यस्माच्छुभं जायते,

स्फूर्तिर्यस्य परा वसन्ति च गुणा यस्मिन् स संबोऽर्च्यताम् ॥

[ जो संप संसार के अज्ञान को हटाकर मुक्ति के लिये चेष्टा करता है, विद्वान् लोग जिसको पवित्र तीर्थ कहते हैं । जिसके समान दूसरा कोई भी नहीं है । जिसको भगवान् तीर्थहर भी नमस्कार करते हैं । जिससे सत्पुरुषों को ध्यान की प्राप्ति होती है । जिसमें अपूर्व स्फूर्ति है, जिसके गुण अकृष्ट हैं, उस संप की पूजा करो । ]

अक्षमीस्तं स्वयमभ्युपैति रभसात् कीर्तिस्तमाप्तिङ्गति,

प्रीतिस्तं भजते मति प्रयतते तं जडधुमुत्कण्ठया ।

स्वध्यास्तं परिरब्धुमिच्छति मुहुर्मुक्लिस्तमाप्तोक्ते,

य संघं गुणसधकेलिसदनं श्रेयोरुचि सेवते ॥

[ कल्याणामितापी जो मनुष्य धन, मन, धन स सच की सेवा करता है, सधनी स्वय उसके पास बसी जाती है । कीर्ति शोभता से उस पुरुष का आसिगन करती है । सब कोई उससे प्रेम करने लगते हैं । पुद्धि बेकारी बड़े धार से उस पुरुष को पाने की कोशिश करती है । सर्वांग सधपी उस पुरुष से आसिगन करना चाहती है । हाकि उसकी प्रतीवा करती रहती है । ]



इत्यादि वाक्यों से विदित होता है कि भीमच तीर्थहरों के भी मृत्यु है, तो फिर हम जैतों की तो बात ही क्या ? भीमिनकुशलहरिजी महाराज ने अपने मन में विचार कर आसभवती चतुर्पास की भी परीह न करके और भीमच का प्रथम आग्रह मानकर ज्येष्ठ शुद्धि पछी के दिन शुभ सुहृत् में अपने गुरु भीमिनचंद्रहरिजी महाराज का ज्ञान करते हुए मानों कछिराज को जीतने के लिये और अपना कार्य सिद्ध करने के लिये गावे-भावे क साथ, बड़े ठाठ-पाट से सारे दल-बल को लेकर तीर्थ-यात्रा की गये। इस यात्रा में महाराज के साथ सेवा करने के लिये सतरह सखु और रूपि महारा, पुण्यसुन्दरी गबिनी आदि सभीस साध्वियाँ थी। इस यात्रा में चतुर्विंश सष सेना की और सेठ रयपतिजी सेनानायक ये तथा सेठ राजसिंह सेनानायक के पृष्ठरक्षक थे। सब महसिंह साह बबबपाल, साह मोमा, साह काला, ठाकुर फेरू, ठा० देपाल, भूष्टी गोपाल, साधुराज केसपाल, हरिपाल, सा० मोहया, सा० गोसल आदि महर्षिक भावक सोम इस सेना में महारी प्रबल योद्धा थे। इनके साथ पाँच सौ गाड़, सौ घोड़े तथा अगबित व्यादे थे। घोड़ों पर बसे हुए नगाड़े, डोस, मारू, बासे बसाये जा रहे थे। खान-पाल के लिये मोरनासम खोल दिया गया था। चलती हुई सष-सेना की सुस्ति से धँबेरा छा रहा था। शीघ्र ही दीवा लेने वाले छुल्लकों को बहुमूच्य मोहन, बस्त्र दिये जा रहे थे। मार्ग में जाने वाले प्रत्येक नगर व ग्राम में हिन्दू, सुसलमान आदि सभी जाति के लोग भीमच का आदर-सम्मान करते थे। भीमच ने शंखेश्वर नामक नगर में पहुच कर, भीपार्थनाथ मगवान को नमस्कार कर ध्वजारोपणादि कर्षों स धर्म-प्रभावना करके आगे का मार्ग लिया। क्रम से दण्ड कर रय के समान बा ला क प्रान्त को पार करक सष सुस्तिम नबावों की सहायता से बिना किसी बिम-बाधा के शंखेश्वर पहाड़ की उलहटी में पहुँचा।

वहाँ पर भीपार्थनाथ मगवान के दर्शन करके आपाड़ बदि छठ के दिन सकल तीर्थों में प्रवान, सर्वादिश्यों क निधान, भीशुभुञ्जय पर्वत के अलंकार भीष्मपमदेव मगवान की संघ सहित भीपूच्यजी ने अपन बनाय हुए अलंकार पूर्ण सुन्दर-स्तोत्रों से स्तुति की। स्त्री-पुत्रों सहित सषपति रयपति भावक न सषस पहिले सोने की सुहरों से नवांगी पूजा की। इसी प्रकार अन्य धनी-माली भावकों ने भी लय व टकों से नव अङ्गों की पूजा की। उस दिन मगवान् युगादिदेव क समब देवमत्र और यशोमत्र नामक छुल्लकों की दीवा का महोसव बड़ आठम्बर से किया गया।

इसके बाद त्रिनशासन की प्रभावना करने में प्रवीण, भीदेवगुरु की आज्ञा-पालन में उत्तर भीरयपति सठ के संघ क पृष्ठरक्षक, निरन्तर अन्नदान करने से यश को उपाक्षित करने वाले, चतुर्विंश शुद्धि के अतिराय से महाराजा भेलिक क मन्त्री अमयकुमार के समान, क्कटियावाड़ नरेश महोपालदब की ददन्तरममान, सषकर्ष संपालन में दक्ष, प्रमापी सेठ मोलदेव क कनिष्ठ भ्राता सहित, भीमालङ्कृतभूपक सठ छखल क दश में दीपक के समान सठ राजसिंह भावक

मे भगवान् बलि सप्तमी और अष्टमी के दिन खलयात्रा-निर्मास-पूर्वक भीष्मप्रमदेव भगवान के मन्दिर में भीनेमिनाय आदि अनेक मूर्तियों का प्रतिष्ठा महोत्सव ममप्र-सम्पि-निषान बगम युग-उपल भीजिनद्वयसंघर्षी महाराज के हाथ स करवाया । उत्सव में बारह प्रकार के बाजे बजाये गये । समस्त स्वर्णियों की बड़ी सेवा की गई । समस्त प्राणियों को मिष्टान्न-पान देकर मन्तुष् किया गया । स्वर्ग-वस्त्र-सूपण-बोड़े आदि बांटे गये । इस अवसर पर भीजिनद्वयसंघर्ष, भीषिने अक्षरि आदि गुरुमूर्तियों की प्रतिष्ठा की गई थी । लोगों का कहना है कि अपने शिष्य की सम्पि से प्रसन्न होकर भीजिनद्वयसंघर्षी महाराज भी स्वर्ग स इस महोत्सव को देखने आये थे । उसी दिन से सेठ मानहब के हस्त में दीपक के समान, धर्म कर्णों से महतीर स्वामी के भावक भानन्द आपदेवदिक का अनुकरण करने वाले, दान से याचकों का मनोरम पूरा करने वाले सेठ उषपाल ने अपने छोटे भाई रुद्रपाल के साथ पचन में प्रतिष्ठित मूलनायक युगादिदेव भगवान् की प्रतिमा के लिये सच की सम्मति मे बनवाये गये मन्दिर की प्रतिष्ठा और मूर्ति क साथ स्वर्ग गृहसामय हाथों वाली अम्बिका मूर्ति की प्रतिष्ठा की । नाना स्थानों से आये हुए अ० रयपति आदि प्राणक संप के समस्त सुवर्ण, भूपरा, वस्त्र, रेशमी वस्त्र आदि उपयुक्त वस्तुओं द्वारा मन्दिर क बनवाने वाले क्षत्रीगणों का सम्मान किया । बज्रस्वामी का अनुकरण करने वाले भीपूज्यश्री के हाथ से नबमी के दिन ठक कर्ण सम्पादन किया गया था । वहीं पर युगादिदेव के मन्दिर में माता रोष्य, सम्पकस्तुचार्य, परिग्रह परिमाण, सामायिक-अथ धारख और नदि महोत्सव भी किये गए । यहाँ पर सुखकीर्षिगणिक को वाचनाचार्य पद प्रदान किया गया और हजारों भावक-भाविकाओं ने नंदातोष्य किया और उसी दिन नये बनाये हुए मन्दिर पर पञ्चमरोहण का कर्ण भी विस्तार से किया । इस प्रकार शत्रुद्वय पहाड़ पर दस दिन तक बड़ी चहल-पहल रही । भीमालक्ष्म में उत्सव होने वाले, भीहठ सेठ के पशु की कीर्ति फैलाने वाले रयपति, महर्षिसिंह, उषपाल, रामसिंह आदि सच के प्रधान-प्रधान भावकों ने मूल मन्दिर और अपने मन्दिर में अनेक पूजायें पढ़वाईं । नाना प्रकार क रेशमी वस्त्र भगवान् के मंडे चढ़ाये । मन्दिरों पर पञ्चदश का आतोष्य किया । सुवर्ण, अक्ष, वस्त्र के दान से याचक वर्ग को सन्तुष् किया । भीसय के दिप्ती से प्रस्थान करने समय से अथ तक किये जाने वाले विविध वस्तुओं क दान से कल्पवृक्ष को भी ललित होना पड़ा है । इस अवसर पर उषापुरा निवामी रोहंड (? रोहंड गो०) हेमल के पुत्र कृष्ण भाषकने जिनशासन प्रभावक अपने भतीजे इतिपास्त के साथ दो हजार छ सौ चोदहर रुपयों में इन्द्रपद प्राप्त किया और सेठ भीषाजी के पुत्र गोसल ने छ सौ रुपयों में मन्त्रीपद ग्रहण किया । इसी प्रकार अन्य भावक-भाविकाओं न इन्द्रपरिहार योग्य अन्य पदों को ग्रहण किया । प्रतिष्ठा, उषापन, इन्द्रपद महोत्सव, कस्तुरामपहनादि द्वारा ऋषभदेव भगवान् क मयडार में पचास हजार रुपयों का सग्रह हुआ ।



द्विधा से दक्षिणां रेशमी वस्त्रादि उद्यमोद्यम वस्तुओं का दान देकर समग्र सौराष्ट्र देश में रहने वाले अग्रजित याचकों को सन्तुष्ट किया। राजसिंह, हरिपाल, तेजपाल आदि अन्य भावकों ने भी यथेच्छा निष्ठास-पानादि प्रदान कर याचक वर्ग को हर्षित किया।

६७ अपने संकल्पित कार्य का निधि पूर्वक संपादन करने वाले, युगप्रवरागम भीमिनचन्द्र धरित्री तथा अम्बिकर आदि देवी-देवताओं की सहायता से युक्त, व्याख्य, न्याय, साहित्य, अर्थशास्त्र, नाटक, ज्योतिष, मन्त्र, तंत्र और ह्यन्द शास्त्र के परम ज्ञाता, तुरगसद, कोष्ठक-पूरय आदि शुद्धासंस्कार और बटिल समस्या-पूर्तियों से बड़े-बड़े विद्वानों का मनोरञ्जन करने वाले, निर्वाण-असहाय-दीन-हीन गरीबों को धन प्राप्ति का उपाय बताने से बहूज्योत्सना समान उज्वल कीर्ति का उपार्जन करने वाले, गुरुओं में चक्रवर्ती के समान युगप्रधान भीमिनकुशलधरित्री महाराज इस प्रकार तीर्थ-यात्रा से अपने जन्म को सफल बनाकर भावय शुक्ला त्रयोदशी के दिन निर्बिन्वा पूर्वक संघ के साथ गुजरात के प्रधान नगर पाटण नगर में आ पहुँचे। इस संघ में संघपति भी रयपति आदि धनी-मानी याचकों ने अनेक प्रकार क अमिग्रह लिये। शासनवेष की कृपा से सभी के अमिग्रह पूर्य हुए। बर्षा श्रुत आ जाने के करण अति सुगमता से दुर्गम सौराष्ट्र देश को रायमार्ग की भाँति तय करके सघ पाटण पहुँचा। मार्ग में स्थान स्थान पर सघ का बड़ा सम्मान हुआ। भीपूज्यजी सहित सारा संघ १५ दिन पाटण के बाहर बगीचे में ठहरा।

इसके बाद मद्दा बदि एकदशी के दिन सोचे हुए काम को सिद्ध करने में समर्थ श्री० रयपति, परबसिंह, तेजपाल और राजसिंह आदि भावकों के प्रयत्न से भीपूज्यजी का पाटण प्रवेश राम के अपोष्या प्रवेश की तरह अभूतपूर्व हुआ। इस प्रवेश महोत्सव में देश-देशान्तरीं से आने वाला समस्त भावक ह्यन्द सम्मिलित था। इसी प्रकार स्वपीय तथा परपीय सभी स्थानीय महाजन लोगों ने इसमें योगदान दिया था। दान दिये गये; गान-नाच, स्नेह-उमाशे किये गये। चोड़ों की पीठ पर कसकर नगारे बजाये गये। यह उत्सव राजा-प्रजा सभी के चितों में अमत्कार पैदा करने वाला हुआ। इससे दुर्जनों के हृदय में उद्वेग हुआ और सजनों के हृदय में आभोर। अधिक क्या कहें, यह उत्सव सब तरह से बर्चनलित हुआ।

६८ इसके बाद सेठ रयपतिजी ने दूसरी बार पाटण क याचकों को सन्तुष्ट करके भीपूज्यजी के परण-रव को मस्तक पर धारण कर, उनकी आज्ञा से मकल संघ के साथ दिल्ली जाने क लिये प्रस्थान किया। स्थान-स्थान पर प्रभाबना कला हुआ भीसंघ युगप्रवरागम भीमिनचन्द्रधरित्री महाराज की निर्वाण भूमि 'भीकोशवावा' नामक नगर में पहुँचा।

वहाँ पर भीमिनचन्द्रधरित्री महाराज के स्तर पर प्रसा भड़ाई और महापूजा करके बड़ा उत्सव मनाया। निष्ठास-विवरण और कनक-तुरगादि दान से जिनशासन को पाली-

६६ इसके बाद श्रीजिनकुशलहरिजी महाराज सारे सच को साथ लेकर बुना पहाड़ की तलहटी में आगये। यद्यपि वर्षा ऋतु निकट आगई थी, ऊबड़-खाबड़ मार्ग में छुट्टों का भय था। काठियावाड़ की जमीन पथरीली थी; तथापि वहां से झौटते समय मार्ग में किसी प्रकार की विपत्तियां उत्पन्न नहीं हुई थी। यह मेघकुमारदेव की कृपा का प्रमाण है। संघ के प्रधान सेठ रघुपतिजी का प्रमाण भी बड़ी मदद पहुँचा रहा था, उनके प्रमाण में आकर उपरवकरी अनेक श्लेष्य मार्ग में अनुगामी एक आजाकरी बन गये थे। चतुर्विध-संधरूपी सेना को साथ लिये हुए धर्म चक्रवर्ती श्रीपूज्यजी महाराज पाटण्ड आदि नगरों के राजमन्त्रों की तरह उस मार्ग में चलते हुए सुखपूर्वक सौराष्ट्र देश के अलहार भूत खंगारगड़ पहुँचे। वहां पर सरकारी गैर सरकारी सभी लोगों ने सम्मुख आकर सच का सम्मान किया और गिरनार पहाड़ की तलहटी में संघ का बैरा लगवाया।

वहां पर स्वर्गीय-परवर्गीय लोगों के विषय में अत्यन्त उत्पन्न करने-वाली वैद्य परिपत्री को सच के साथ विधिपूर्वक सम्पन्न करके पूज्यजी ने आषाढ़ की चतुर्विंशती के दिन आवात-जवाती, राज्य वर्ष रात्रीमती का परिस्वाग करने वाले, श्रीउज्जयन्ताचल महातीर्थ के अलहारभूत भीनेमिनाब स्वामी को अपने नये बनाये हुए स्तुति-स्तोत्रों से नमस्कार किया। सच के अध्यक्ष रघुपति आदि प्रमुख भावकों ने शुभ्रज्य तीर्थ की तरह वहां भी सुवर्षा की सुहरों और स्वर्धु-टकों से नवागी पूजा की और उसी दिन मंगलपुर का रहने वाला, उदार चरित्र, प्रमाणी सेठ अगतसिंह का पुत्र अयथा भावक भी अनेक अभिग्रह लेकर बन्दना करने को वहां आया। खंगारगड़ निवासी, सम्प्रतिशाही रीढ़ अर्धमन्य, रीढ़ रत्नपुत्र मोखा आदि भावक-आबिच्छाओं ने सम्पत्तधारण, सामायिक-रोपण, परिग्रह परिभाषा आदि नदि महोत्सव किया और सेठ रघुपति आदि संघ के प्रमुख भावकों ने शुभ्रज्य महातीर्थ की तरह वहां भी चार दिन तक बड़े मक्ति मोच से महापूजा, ध्वजारोपण आदि महोत्सव किया। हमीरपुर के रहने वाले सेठ धीबाजी के पुत्र गोसल भावक न २४७६ रुपये मेंट अज्ञाकर इन्द्रपद ग्रहण किया और कला भावक के पुत्र बीबा भावक ने आठ सौ ग्राम अर्पण करके मन्त्री पद लिया। सारी सख्या मित्राकर धनेमिनापदेव के मंदार में पालीस हजार रुपये जमा हुए।

पहाड़ पर पूजा समाप्त करके संघ के साथ श्रीपूज्यजी तलहटी में आये। वहां पर नाना प्रकार के धार्मिक उत्सवों के करने से प्रबल प्रबंध कसिकास की बड़ उखाड़ने में उत्तर अपने स्वामी श्रीपूज्यजी को देखकर, अपने दानाविशय से धितामसो-अमपेजु-अप्यहच को भी माल करने वाले, परमयशस्वी, समस्त भावक इन्द्र गिरोमसिभूत रघुपति सेठ ने महोत्सव आदि अपने पुत्रों के साथ श्रीपूज्यजी को कीर्ति फैलाने के लिये तीन दिन तक बराबर रात-दिन विविध प्रकार के स्वर्धुपूज्य,

प्रतिष्ठा की। इसके पश्चात् पष्ठी क दिन व्रत-ग्रहण, बड़ी दावा, माला-धारण आदि नदि-महात्म्य प्रति विस्तार से किया। उसी महोत्सव में दामद्व, यशोमद्व नामक घुल्लकों का बड़ी दावा दाया। सुमतिसार, उदयमार, जयसार नामक घुल्लकों और धर्मसुन्दरी, चारित्रसुन्दरी नामक घुल्लिकाओं को दावा धारण कराई। जयधर्मेशि को उगाध्याय पद दिया गया और उनका नाम जयधर्मो पाध्याय ही रखा गया। अनेकों साधियों तथा भाविकाओं ने माला ग्रहण की और धवद-धोत्र आभूषण न सम्यक्त्व धारण, सामायिक इहय तथा भावक क बारह व्रतों को धारण किया।

इसके बाद तीर्थयात्रा की इच्छा रखने वाले सेठ श्रीमान् वीरदेव आदि श्रीमपल्ली क भावकों की प्रार्थना से श्रीपूज्यजी ने श्रीमपल्ली नगरी में सेठ वीरदेव निर्मित बड़ नारी ममाराड से बगाल बदि प्रयोदशी के दिन प्रव्रश करके श्रीमहावीर मगवान् को विधिपूर्वक पदन किया।

१०० छत्रिमहारान क श्रीमपल्ली में पचार बाट उसी वष सा मालदेव एव सा कुलमहिंद स परिषद सठ वीरदेवजी ने इस्वीपति गयासुदान क यहाँ से तीर्थयात्रा का फर्मान निकलवा कर अन्य भावकों क माय समस्त अविशयो क निधान और अपन उदार चरित्र स गणधर भगवान पालमस्वामी, सुधर्मस्वामी, अचूस्वामी, स्पृहमद्व, श्रीभार्यमहागिरि, श्रीवज्रस्वामी और जिनदल धरित्री आदि गुणप्रधानों की याद दिलाने बाल युगप्रवर श्रीजिनकुशलधरित्री महाराज स यात्रा क लिये अस्वाग्रह युक्त गाइ प्रार्थना की। भावक वीरदेव जिनशासन को दिवाने बाला था। अपने-अपन समी लोगों के कार्यों में सहयोग देन बाला था। श्रीमपल्ली क भावकों में तो सुदृढमणि क ममान था। अपन २ उज्ज्वल कचव्यों से सेठ लीबड़, सा अमयचन्द्र, मा माठन, मा धरामाल, सा सामल आदि निज पूर्वजों स भी बड़ खुब आगे बटा हुआ था। इमक चरित्र पद उदार थे। कठिनातिकठिन अभिग्रहों क निभाने में प्रवीण था। पूज्यभी क प्रार्थना स्वीकार करन पर सठ तजबाल ने गावों और नगरों में निमन्त्रण-पत्र भेजकर स्वधर्मो समुदाय को एकत्रित किया।

उत्सवत् परिषद्वरति श्रीजिनचन्द्रधरित्री महाराज क शिष्यों में शुकामणि क महज श्रीजिन कुशलधरित्री महाराज अपने ज्ञान-ध्यान क बल स यात्राविषयक पूजापर निरापत्तादि को माध-मममकर बठ बदि पत्रमी क दिन भोसप क साथ तीर्थ उमस्कार क लिय भी मपल्ली म पाल पद। महाराज न प्रस्थान करने स पूव सठ वीरदेव का संपपति का पद दिया और जिनशासन क अनन्य प्रभावक पूर्णबाल तथा खंडा नामक आतामों क साथ, राजदेव सठ क पुत्र श्रीमम भावक का मप के धरमक पद पर नियुक्त किया। पुण्यश्रेणिगण सुलदानिगण आदि पाद मापुओं आर प्रतिनी पुण्यसुन्दरी आदि साधियों को माय लकर वीरदेव भावक द्वारा बनवाये हुए कन्युगाभगा महाराज क ममान मन्दिर में बड़ा प्रभावना क माय जिनधारीमी क पद का स्थापित करक तीनमी पाद, मनक पाद अनेक उठ और विविध म्पानों म आय हुए भीसप क साथ निष्क्रमण

क्रिया । फिर वहाँ से चलकर फलोदी पहुँचे । वहाँ पर वस्त्रादि दान-सम्मान से सम्मानित कर देश-देशान्तर्गतों से आकर रूप में सम्मिलित होने वाले भावकों को अपने-अपने घरों की ओर बिदा किया । इसके बाद सेठ रयपतिजी मिस मार्ग से आये थे, उसी मार्ग से होकर क्वार्तिक बदि चतुर्थी के दिन यवनों की राजधानी दिल्ली पहुँचे । राजकीय प्रतिष्ठा पाय हुए सेठजी के सुपुत्र साधु राजसिंह ने निर्गमन महोत्सव से भी अधिक प्रवेश महोत्सव करवाया ।

६६ इसके बाद विक्रम सन् १३८१ वैशाख बदि पचमी के दिन श्रीपूज्य जिनह्वयलहरिजी महाराज ने पाटख नगर में एक बड़ा मारी बिराट् प्रतिष्ठा-महोत्सव करवाया । यह उत्सव शक्तिनाथ भगवान् के विविधैत्य में सम्पन्न किया गया था । इसमें सम्मिलित होने वाले अनेक प्रांतों से आये हुए मुख्य भावकों के नाम ये हैं—दिल्ली निवासी श्रीमालकुन्तोत्यभ साह कृपास, सा० नीबा, आन्तौर के मन्त्री मोहराज के पुत्र मन्त्री सलखवासिंह, रंगाचार्य, सलख, सत्यपुर से समान्त मन्त्री मलयसिंह, मीमपट्टी के सेठ बीरदेव, खंमात से आये हुए व्यवहारी छाड़ा, श्रीपोषा बेलाकुल से समागत सा० देवाल, मन्त्री कुमर, साह खीमद, उत्सव के कर्मों में विशेष माग लेकर पुण्य कमाने वाले सेठ आनन्द के पुत्र तेजपाल और कृपास, श्री श्रीमाली सा० आना, साह रामसिंह, मन्तराली सूया, साह चेमसिंह, साह देवराज, मयरासी पधा, मभा आदि भावकों ने पन्द्रह दिन तक सप का सत्कार किया । गरीबों को द्रव्य बाँटा, खेल-तमाशे, नृत्य-गान करवाये । दुःखी व भूखों के सिये अन्नपत्र खोले । साधर्म्य वात्सल्य किया । दीपा के सिये वैराग्य धरख करने वाले सुदूर-सुदूरिअर्धों को नाना प्रकार की उचमोत्तम वस्त्राभूषण सामग्री दी गई । चतुर्थी के दिन बड़ी घूम-धाम से अक्षय-श्रोत्सव एवं प्रतिष्ठा महामहोत्सव किया गया । इस उत्सव से लोगों के मन में बड़ा आश्चर्य हुआ ।

प्रतिष्ठा करने वाले श्रीजिनह्वयलहरिजी महाराज बड़े सम्पत्तरी, श्रीगौतमस्वामी और श्रीवज्रस्वामी आदि अनेक पूर्वज आचार्यों के समान थे । स्वर्गीय गुरु श्रीजिनचन्द्रहरिजी महाराज अहनिश उनकी सहायता करते थे । जिन-जिन मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई उनके नाम ये हैं—

जाबालिपुर योग्य भीमहावीर प्रतिमा, देवराजपुर योग्य श्रीपुगादिदेव प्रतिमा, श्रीशत्रुघ्न्य तीर्थ में स्थित बृन्दा बस ही मन्दिर का श्रीबोद्धिर करने के सिये छत्रस के पुत्र राजसिंह और मोक्ष देव भावक द्वारा बनाई हुई शेषासनाथ आदि अनेक तीर्थकरों की प्रतिमाएँ । इसी प्रकार सूबा भावक से बनाई हुई अष्टाव् योग्य चौबीस भगवानों की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित की गई । इनमें बाई सौ मूर्तियाँ पापय की री और पीतल की मूर्तियाँ अगणित थीं । इनके अतिरिक्त उन्नापुरी के योग्य श्रीजिनदत्तहरिजी महाराज की प्रतिमा, जाबालिपुर और श्रीपाटख क योग्य जिनप्रभाहरिजी की प्रतिमा, भी देवराजपुर के योग्य जिनचन्द्रहरिजी की मूर्ति और अम्बिका आदि आषष्ठादी देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी प्रतिष्ठित की गई । इसी प्रकार अपने मयहार के योग्य समबसर की

प्रतिष्ठा की। इसके पश्चात् पृष्ठी क दिन व्रत-प्रदक्ष, बड़ी दोषा, माला-धारण आदि नति-महोत्सव अति विस्तार से किया। उसी महोत्सव में देवमद्र, यशोमद्र नामक घुल्लकों का बड़ी दोषा दी गई। सुमतिसार, उदयमार, जयसार नामक घुल्लकों और वमसुन्दरी, चारित्रिसुन्दरी नामक घल्लिकाओं को दाया घाय्य करवाई। जयधर्मगण्ठी को उगाधाय पद दिया गया और उनका नाम जयधर्मो पाध्याय ही रखा गया। अनेकों साध्वियों तथा आत्रिकाओं ने माला ग्रहण की और भवक-धाविकाओं ने मय्यवस्त्र धारण, सामायिक इहय तथा भावक के बारह व्रतों को धारण किया।

इसके बाद तीर्थयात्रा की इच्छा रखने वाले सेठ श्रीमान् वीरदेव आदि मी म प स्त्री के भावकों की प्रार्थना से श्रीपूज्यजो न मी म प स्त्री नगरी में सेठ वीरदेव निर्मित बड़ जारी समारोह स ब्याह बदि प्रयोदशी के दिन प्रवेश करके श्रीमहावीर मगवान् को विधिपूर्वक वन्दन किया।

१०० अग्निहाराण क मीमपस्त्री में पचारे घाट उठी वप सा मालदेव एव सा हुल्लमविह से परिबृत सठ वीरदेवजी ने इस्तीपति गयासुदीन के यहाँ से तीर्थयात्रा का फरमान निकलवा का अन्य भावकों के साथ समस्त अनिशायों के निधान और अपन उदार चरित्र से गणधर भगवान गौतमस्वामी सुधर्मास्वामी, बधूस्वामी, स्थूसमद्र, श्रीभार्गवहागिति, श्रीब्रह्मस्वामी और जिनदण्ठरिमी आदि गुणप्रधानों की याद दिलाने वाले युगप्रवर श्रीजिनकुशलधरिमी महाराज से यात्रा के लिये अग्याग्रह पुक गाड़ प्रार्थना की। भावक वीरदेव जिनशासन ओ दिवाने वाला था। अपने-पराये सभी लोगों क कार्यों में सहयोग देने वाला था। मी म प स्त्री के भावकों में दो सुकृतमणि क समान था। अपने २ उज्ज्वल कण्ठों से सेठ कीरद, सा अमयचन्द्र, सा सज्जल, सा पञ्चपाण, मा मोमल आदि निज पूर्वजों स भी बह खूब आगे बढा हुआ था। इतक चरित्र बड़े उदार थे। कठिनातिकठिन अमिग्रहों के निमाने में प्रवीण था। पूज्यभी के प्रार्थना स्वीकार करने पर सेठ उज्ज्वल ने गाँवों और नगरों में निमन्त्रण-पत्र भेजकर स्वधर्मो समुदाय को एकत्रित किया।

तत्पश्चात् धरिचक्रवर्ति श्रीजिनधरधरिमी महाराज के शिष्यों में चूड़ामणि के सद्यः श्रीजिनकुशलधरिमी महाराज अपने ज्ञान-ध्यान के बल से यात्राविषयक पूर्वापर नि। वाचतादि को साध-सममकर बैठ बदि पवनी क दिन भीसच के साथ तीर्थ नमस्कार के लिय मी म प स्त्री स चल पद। महाराज ने प्रस्वान करने से पूर्व सेठ वीरदेव को सचपति का पद दिया और जिनशासन के अनन्य प्रभावक पूर्वपाल तथा छँडा नामक आठाप्यों के साथ, राजदेव सेठ के पुत्र श्यामा भावक को सच के प्रहरचक्र पद पर नियुक्त किया। पुण्यद्योतिगण्ठी सुलकीतिगण्ठी आदि बारह साधुओं और प्रवर्तिमी पुण्यसुन्दरी आदि साध्वियों को साथ लेकर वीरदेव भावक शाग बनगाये हुए कृत्युगावतार महाराज के समान मन्दिर में बड़ी प्रभावना के साथ जिनचौरीशी के पद को स्थापित करके तीनसौ गाड़, अनेक घोड़े, अनेक उठ और विविध स्थानों से आय हुए भीसच के साथ निष्क्रमण





महोत्सव पूर्णक वहाँ से प्रस्थान किया। यद्यपि वास्तुमास समीप आ रहा था, परन्तु भीष्मपुत्र भीष्म की प्रबल प्रार्थना को टुकरा नहीं सके। क्योंकि भीष्म तीर्थंकरों के भी आदरणीय है।

वहाँ से चलने के बाद मार्ग में अगह अगह अनेक उत्सवों का मनाता हुआ भीष्म वा यज्ञ नगर में पहुँचा। वहाँ पर भीमहावीर भगवान की पूजा-वन्दना करके बड़ी धूम-धाम से सेरि सा नगर में प्रवेश किया। वहाँ दो दिन ठहर कर पारशनाथ भगवान की पूजा की और वहाँ अन्न-धन बाँटा गया तथा भगवान के मन्दिर पर चूड़ा चढ़ाई गई। वहाँ से चलकर शिरस्त्रिज में सप्तसह पूज्यभीष्म पहुँचे, वहाँ पर अगम (चलते हुए) मन्दिर के समान विनालय के साथ महोत्सव से प्रवेश किया। वहाँ से आशापट्टी नगर नदीक था, इसलिये वहाँ के भावक महद्यपाल, ध्यव० मंडलिक, सा० बयझल आदि रथ की प्रार्थना मानकर भीष्मपुत्र भीष्म सहित आशापट्टी गये। स्थानीय भावकों के भगीरथ प्रयत्न से समारोह पूर्णक नगर प्रवेश कर भीष्मपुत्र भगवान के दर्शन-स्पर्शन-पूजन-वन्दन विधिपूर्वक किये। वहाँ पर बड़े विस्तार से माहारोपयादि महा उत्सव मनाया गया।

इसके बाद सम्पूर्ण संघ के साथ पूज्य भीष्म गुजरात देश के अल्लकार समान भोस्तम्भन पारशनाथस्वामी के दर्शन-यात्रा के लिये स्वमात की ओर चले। मार्ग में आने वाले अनेक ग्राम और नगरों में उचम मन्दिर के समान देवालय के महोत्सवों को करता हुआ भीष्म बड़ आनन्द के साथ स्वमातार्थ पहुँचा।

१०१ वहाँ पर अतिशयशाली युगप्रभरागम आर्य सुहस्तिधरि के समान भीष्मिन्नुसस्रिजी महाराज के उपदेश से इतिहास प्रतिज्ञा महाराजधिराज भीष्मपुत्र के तुम्य, सेठ वीरदेव भावक न स्वमात नगर निवासी उचम मन्म-अधन्य समी लोको के महा समुदायों के साथ, अंगम युगप्रधान, अनेक लक्षिमघान भीष्मिन्नुसस्रिजी महाराज का नगर प्रवेश हिन्दू-साम्राज्य में वैसा होता था, वैसा करवाया। विरोधी यवन लोगों के देखते हुए भीष्म पर टाक जा रहे थे मस्तक पर अन्न पारक किया गया था। प्रवेशोत्सव अर्थात्नीय था। हिन्दू राज्य के अलंकार भूत मन्त्रीवर भीष्मपुत्रासन युगप्रभरागम भीष्मिन्नुसस्रिजी म० का वैसा प्रवेशोत्सव कराया था एवं यवन राज्यकास में राजमन्त्रीवर सेठ भीष्मसस्रिजी से भीष्मिन्नुसस्रिजी म० का नगर प्रवेश करवाया था, उनसे भीष्मिन्नुसस्रिजी महाराज का यह नगर प्रवेश महोत्सव हुआ। वहाँ पर नवांगी गीकाकार भीष्मयदेवधरिजी महाराज की स्तवना से प्रकट हुए, तब मात नगर के अलंकार-भूत भीष्मिन्नुसस्रिजी महाराज और उसी अल्प में विराजमान भीष्मिन्नुसस्रिजी की स्तवना आचार्यभीष्म से अपने नूतन बनाय हुए स्तुति श्लोको से की। सकल चतुर्विध संघ सहित

भीष्मजी ने अनेक भवों से संवित पाप-रूपी कीचड़ को धोने के लिए यह पवित्र यात्रा की थी ।

इसके बाद लगातार आठ दिन तक सेठ वीरदेव तथा अन्य धनी आचर्यों ने खम्मात निवासी विभिन्न सहाय के साथ अन्नरोपण, अनिवारित अन्न-वस्त्र दान, सप्त वात्सल्य, सप्त पूजा और इन्द्रमहोत्सव आदि धार्मिक कार्य प्रचुर धन-व्यय से किये । ये कार्य स्वयं के लोगों के लिए अन्नन्द-दायक और विपश्चियों के लिए कष्टप्रद हुए । इस उत्सव में कछुआ भावक के पुत्र दो० खामराज के छोटे भाई रामस भवक ने वारह सौ रुपये में चढ़ाकर इन्द्रपद प्राप्त किया और मंत्री आदि पद अन्य भावकों ने ग्रहण किये ।

१०२ आठ दिन तक खम्मात में रहकर सप्त शत्रुञ्जय यात्रा के लिए चला । यद्यपि उस समय देश में अगह-अगह राजाओं में लड़ाइयाँ चल रही थीं, मय के मारे वहाँ-वहाँ नगर, ग्राम ध्वस्त हो रहे थे, तथापि गुरुदेव की कृपा से अन्नन्द से चलाता हुआ भीसंघ चाँधूख नामक नगर में पहुँचा । वहाँ पर सारे नगर में प्रचलित भरीदलीयकूलभूपण ठाकुर उद्यकरण भावक ने भीसंघ-गण्डव्य और भीसंघ-पूजा आदि कार्यों से बड़ी प्रभावना की । वहाँ से प्रस्थान करके संघ शत्रुञ्जय पहाड़ की तलहटी में पहुँचा । पूज्यभी महाराज सारे सप्त को साथ लेकर शत्रुञ्जय पर्वत के शिखर पर दूसरी बार गये । सत्तारूपी बेलड़ी के कटन में तलवार के समान, शत्रुञ्जय तीर्थ के अलक्षर-भूत श्रीभद्रदेवजी की स्तुति, अपने बनाये हुए मक्ति-रम पूर्ण सुन्दर रचना वाले स्तोत्रों से की । वहाँ पर सकल सप्त में मुख्य वीरदेव, सप्त पृष्ठपोषक सठ तथपार, नेमिचन्द्र, दिङ्गी निवासी कृपास, सा० नीचदेव, मंत्रीदलीय कूल-भूपण बदनपाल, लखमा, झालीर के निवासी पूर्णचन्द्र, सा० सरदा और गुहा के रहने वाले सेठ बाघु आदि धनी भावकों ने इस दिन तक अन्नरोपण, सप्त पूजा, अनिवारित सप्त, स्वधर्मी वात्सल्य, इन्द्रपद-महामहोत्सव आदि कार्य बड़े उत्साह से किये । इस अवसर पर वस्त्र, भूषण आदि खूब बाँटे गये । जिनशासन की अत्यधिक प्रभावना की गई । जिन शासन की प्रभावना करने में प्रवीण सठ लोहट के पुत्र लखस ने सैंतोस सौ रुपयों में इन्द्रपद प्राप्त किया । दिङ्गी निवासी सुरराज के पुत्र कृपास के छोटे भाई सेठ नीचदेव भावक ने वारह सौ रुपयों में मंत्रीपद ग्रहण किया । शेष पदों को अन्य धनी-मानी भावक, आधिकारियों ने ग्रहण किया । महाबलु आदिनाथ के मंडार में विभिसंघ की ओर से चौदह हजार रुपये संवित हुये । श्रीभद्रिनाथ महाबलु के मन्दिर में नये बनाये हुए चौबीस जिनालय की दण्डिकाओं पर भीष्मजी ने विनामपूर्वक कस्तुरा और चम्रा का आरोपण किया ।

इस प्रकार पूजन-वर्दन आदि कृत्यों से निहत होकर भीष्मजी पहाड़ के नीचे अपने स्थान पर आ गये । इसके बाद सारा संघ जिस प्रकार गया था, उसी प्रकार अष्ट-नाथ से

बापिस सौटवा हुआ सिरसा (पाटख) नगर में पार्वनाथ भगवान् की पूजा करके चलता हुआ शंखेश्वर नामक तीर्थ स्थान में पहुँचा। वहाँ पर चार दिनों तक अवारित सत्र, स्वधर्मी वात्सल्य, श्रीमहापूजा और महापञ्चारोपण पूर्वक श्रीपार्वनाथ और पाटखालंकार श्रीमेदिनापल्ली की, श्रीपूज्यजी ने नये-नये स्तोत्रों से स्तुति-पूजा की। इसके बाद सकलसंघ सहित श्रीपूज्यजी साम्ब सुदि एकदशी के दिन बीरदेव भावक द्वारा किये गये प्रवेश महोत्सव के साथ भीमपल्ली आये। श्रीमहाबीरदेव की रचना की। देश-देशान्तर्गत स आये हुए भावक लोगों को दान-सम्मान पूर्वक अपने पत्तों को निदा किया।

१०३ इसके बाद सं० १३८२ में वैशाख सुदि ५ के दिन सामल सेठ के कुल में दीपक के समान, कल्पवृक्ष और समुद्र के तुल्य, समस्त नागरिक लोगों में सुकृत, स्थिरता-उदारता, यन्मीरल में मेठ पहाड़ के समान, जिनशासन को प्रभावित करने में अग्रणी, शत्रुजय आदि तीर्थों की यात्रा से पुण्य संचय करने वाले सेठ बीरदेव ने दीक्षा, मालारोपण आदि नन्दि महोत्सव करवाया। इसमें भीमपल्ली, पाटख, पालनपुर, बीजापुर, आशापल्ली आदि नाना स्थानों के लोग बहुत बड़ी संख्या में आये थे और बड़े विस्तृत महामहोत्सव से शासन की प्रभावना की थी। इस अवसर पर श्रीपूज्यजी ने चार सुद्वक और दो सुद्विकार्यों को दीक्षा प्रदान की। जिनमें सुद्वकों के नाम विनयप्रम, मतिप्रम, हरिप्रम, सोमप्रम एवं सुद्विकार्यों के नाम कमलभी व सलितभी स्थिर किये गये थे। अनेक भावक-भाषिकार्यों ने माहा प्रवेश की। अनेकों ने सम्यक्सव तथा सामायिक व्रत धारण किया, कईयों ने परिग्रह-परिमात्र किया। उसी साल श्रीपूज्यजी महाराज भावक वृन्द के प्रवक्त अनुग्रह से सौ चौर गये और वहाँ पर भूमिपाम से नगर में प्रविष्ट होकर श्री महावीर देव तीर्थराज को नमस्कार किया। वहाँ पर एक मास तक ठहर कर भावकों को धर्मोपदेश किया। साटखद नामक गाँव के भावकों के अनुरोध से महाराज वहाँ गये। वहाँ पर देवाधिदेव श्री महावीर को नमस्कार करते हुए पन्द्रह दिन ठहरे। वहाँ के भावकों को सन्तुष्ट करके वाड़मेर गये। वहाँ पर भी भूपमदेव भगवान के दर्शन-वन्दन से कुत-कृत्य होकर भावकों के अनुरोध से वातुर्मास वहीं किया।

१०४ वाहड़मेर में सं० १३८३ की पीपी पुषिमा के दिन जिनशासन प्रभावना, स्वधर्मी वात्सल्य आदि नाना प्रकार के धर्म कार्यों में उद्यत सेठ प्रतापसिंह आदि वाहड़मेर स्थित भावक समुदाय की अभ्यर्चना से महाराज ने अमारि पोषणा पूर्वक दीक्षा मालारोपण, सम्यक्त्वारोपण, सामायिकारोपण, परिग्रह-परिमात्र आदि नन्दि महोत्सव किया। इसमें वैसलमेर, साटखद, साँचौर, पालनपुर आदि नाना स्थानों के रहने वाले सभी अच्छे-बच्छे भावक आये थे। भागन्तुक लोगों का स्वागत-सम्मान खूब किया गया था। नृत्य-गान और अन्न-दान आदि शुभ धर्म अधिक मात्रा में किये गये थे।

१०५ उसी वर्ष भावक महाजुमाबों के विशेष आग्रह से समस्त अतिशयों के निधान, समग्र धरि समुदाय में प्रचान, श्रीजिनकुशलधरिजी महाराज ने वाहङ्गमेर से झालौर की ओर विहार किया। मार्ग में लवणखेड़ा और शम्भानयन नामक दो गाँव आये। इन दोनों ग्रामों में कुछ दिन ठहरकर श्रीपूज्यजी ने अपने पीयूषवर्षी सदुपदेशों से भावक समुदाय को सन्तुष्ट किया। लवणखेड़ा में राजकीय उच्च पदस्थ महाराज के पूर्वज, बाह्यिक सेठ उद्धरख ने भीशान्तिनाथ भगवान् का मन्दिर करवाया था। इसी नगर में अपने गुरु श्रीजिनचन्द्रधरिजी महाराज की जन्म तथा दीक्षा हुई थी। इस कारण इस स्थान का और भी महत्व अधिक बढ़ा हुआ है। यहाँ से चलकर विविध धर्मधर्मा क्रमशः क सरोवर जा बालिपुर में बड़े समारोह के साथ प्रवेश किया। वहाँ पर अपने हाथ से प्रतिष्ठित श्रीमहावीरदेव भगवान् का चरण—कमलों में विधिपूर्वक बंदना की। श्रीकुशलधरिजी महाराज के जन्म में उत्पन्न सेठ मोहराज के पुत्र मंत्री सखलसिंह, वाहङ्गवी के पुत्र मन्मथलाल, धारि बालिपुरीय विधि समुदाय ने उष्णापुर, देवराजपुर, जैसलमेर, शम्भानयन, धीमाल, सत्यपुर, गुहड़ा आदि स्थानों के हरिपाल के पुत्र गोपाल, धार्मिक उत्सवों में अधिक भूमि लेने वाले सेठ जगन्नाथ के पुत्र तेजपाल, रुद्रपाल आदि भावक समुदाय को आमन्त्रित कर संवत् १२०३ फल्गुन बदि नवमी के दिन से लगातार पन्द्रह दिनों तक श्रीजिनकुशलधरिजी महाराज का हाथ से प्रतिष्ठा, व्रतग्रहण उद्यापन—मात्तारोपण, सम्पत्क चरण आदि नदि—महोत्सव बड़े विस्तार से करवाया। विषम दुःखमाला में भी श्रीजिनकुशलधरिजी महाराज का ऐसा प्रभाव था कि जिसके मस्तक पर हाथ रख देते थे, उस पुरुष के अमंगल निवारण और मंगल प्राप्ति होकर ही रहती थी। इसमें इनका ज्ञान—स्थानातिशय ही हेतु था। ऐसे प्रभावी आचार्य के हाथ से प्रतिष्ठा आदि करने का सुअवसर मन्मथलाल ही मिलता है। इस उत्सव में ह्युद्धकवत चरण करने वालों को नाना प्रकार की उत्तमोद्यम वस्तुएँ दान में दी गई थीं। महाशक्तिशाली भावकों ने सोना, चाँदी, धन, वस्त्र आदि मुक्त हस्त होकर बाँटे। सपना स्त्रियों ने स्थान—स्थान पर मार्गतिक गीत गाये। संपूजा—स्वधर्मा वास्तव्य, अवारितसत्र और अमारी घोषणा आदि प्रभावनाएँ प्रकटित हुईं। इस वर्तमान विषम दुःखमाला में भी शत्रु—मित्र सभी के शुभचिन्तक श्रीजिनकुशलधरिजी महाराज के प्रभाव से अपने—पराये सभी को आनन्द देने वाला यह उत्सव बिना किसी विषम के आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ। इस उत्सव के शुभ अवसर पर भी राजगृह निवासी लोगों का प्रीति—स्वत, भीर्बर्तमान स्वामी के चरण—कमलों से विहित और भीर्गतमगलधर आदि ग्यातह गणधरों के निर्वाण से पवित्रित, भीर्बर्तगिरि नामक पर्वत के शिखर पर संघ के प्रचान मंत्रीदलीप प्रतापसिंह के वंशधर ठाकुर अचलसिंह का बनाए हुए मूलनायक भीष्मपदेव भगवान् का मन्दिर में पतुविशान्ति विनालय एवं महावीर आदि तीर्थरत्नों की शिला—पीठल आदि धातुओं को धनी हुई अनक मूर्तियों की प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। गुरुओं तथा अधिष्ठापक देवताओं की प्रतिमाएँ भी स्थापित की गईं।

न्यायकीर्ति, ललितकीर्ति, सामकीर्ति, अमरकीर्ति, ज्ञानकीर्ति और देवकीर्ति ये छः पुस्तक बनाये गये। अनेक भावक-भाविकार्यों ने माला ग्रहण करके सम्यक्त्व, सामायिक तथा द्वादश ब्रतों को अंगीकार किया।

१०६ इसके बाद सिंधु-देशालङ्कार उज्जानगर तथा देवराजपुर वास्तव्य महर्षिक भावकों का गाढ़ अनुरोध से युगप्रवरागम भी आर्य सुहस्तिधरि के समान लोकोचर उज्ज्वल कार्यो को करने वाले, बिना अतिवार क कठिन चारित्र्य-पालन के उप विधान से आकर्षित व्यंतर देवताओं को पशु में करने वाले, ध्यानातिशयरूपी निरुपम गम्भीर देवीकु बरों, अठारह हजार शीलांगरूपी महाराजों, अत्यिक-बाधिक-मानस मेदों में से प्रत्येक के कृत, कारित व अनुभोदित मेद से त्रिषाविमक होने के कारण नवधा विमक क्षीप्त प्रकार क धरियों क अच्ये घोड़ों तथा दूसरों से अजय्य, मुनि-मण्डल रूपी पदासियों से युक्त, युगप्रधान श्री जिनकुशलधरिजी महाराज अक्षरकी सम्राट की तरह म्नेच्छ-समुदाय से पूर्ण विशान्त मिच देश में अमे हुए उर उ मिध्यात्व रूपी भूपति को उखाड़ कर उसक स्थान में विधि-धर्म रूपी रामा की स्थापना के लिए चैत्र मास के कृष्णपक्ष में विजय-यात्रा करके वैसल मेर में पहुँच। मार्ग में महाराज को शकुन अच्ये हुए। रास्ते में शम्यानयन और खेड़ा नगर फिर आये। वहाँ पर आपने अपने आदेश रूपी भूपति की स्थापना की। मरुस्थल के मुख्य किल्ले जैसलमेर में अमे हुए अज्ञान रूपी दैत्य को मगाना महाराज का वहाँ आने में मुख्य उर उ था। वहाँ पर भावक लोगो ने प्रवेश महोत्सव बड़े समारोह से किया। श्रीपूज्यजी ने सम्पूर्ण विम-बाधाओं को नष्ट करने वाले, पहले कमी अपने हाथों से प्रसिद्धा किये हुए पार्ष्णाब मगवान के चरधारबिन्दों में विधिपूर्वक धँदना की। पूज्यजी ने १५ दिन तक रहकर जैसलमेर में तलवार के समान तीक्ष्ण बाहुबाहुरी से अज्ञान दैत्य को विम-भिष करके सर्वजन सुखदायी ज्ञान-भूपति की स्थापना की। इसके बाद उज्जानपुर और देवराजपुर के भावकों के अनुरोध से मरुस्थल के भूत-प्रेत पिशाचों को अपने दास बनाने वाले श्रीपूज्य युगप्रवर प्रीष्म अशु की असहाय रूप में भी मरुस्थली के रेशीले महासमुद्र को पाटय क राव-मार्ग की तरह पार करके बही ईसी-सुरी के साथ ईर्या-समिति आदि नाना समितियों का पासन करते हुए प्रवेश-महोत्सव-पूर्वक देवराजपुर पहुँचे। वहाँ पर स्वहस्त प्रतिष्ठित श्री अयमदेव मगवान की बन्दना की।

१०७ वहाँ पर एक मास ठहर कर धर्म-धर्मरूपी दयद को धारण करने वाले, व्याख्यान रूप सेनापति की सहायता से प्राणियों के हृदय रूपी किल्ले में विराजमान मिध्यात्व-भूपति को कुब-सना आदि कुदुम्ब परिवार के साथ वर मगाकर गुप्तशक्ति को धारण करने वाले श्रीपूज्यजी महाराज दुर्भय भूपति-मिध्यात्व का उन्मूलन करने के लिए मिध्यात्व की राजधानी रूप उज्जानगरी में पहुँचे। इसी उज्जानगरी में हिन्दू राजाओं के शासन काल में सुगुरु श्री जिनपतिधरिजी महाराज भी

पक्षे एक दफा आये थे और वहाँ पर अनेक प्रतिवासी विद्वानों को शास्त्रार्थ से इराया था। महाराज के नगर-प्रवेश के समय चारों वरों के सरकारी-नौर सरकारी हजारों मनुष्य स्वागत में आये थे। उभागमन के अक्षर पर अनेक घनी भावकों ने गाजे-बाजे वज्राय और गरीबों को अन्न-दान दान। वहाँ पर प्रतिदिन चौबीसी पट के अलङ्कार-भूत भी अक्षरमदेव स्वामी को नमस्कार करते हुए, सब लोगों को दुःख देने वाले मिथ्यात्व-रूपी राजा को अपने गुणों के सामर्थ्य से इटाकर महाराज ने अपने आश्रित विधि-धर्मराज की जड़ खमाई। इस प्रकार एक मास के समय विवाकर शीतलस के वातुर्मास की पूर्णिमा समीप आने से अनेक भावकों के हृन्द के साथ फिर से देवराजपुर आकर युगादिदेव को नमस्कार किया।

१०८ इसके बाद सम्बत् १२८६ माह सुदि पञ्चमी के दिन स्वैर्य, श्रीदर्य, गाम्भीर्य आदि गुणों से अलंकृत, देव गुरुओं की आज्ञा को सुकर्षा सुदृष्ट की तरह मस्तक पर धरने वाले, जिन शसन की प्रमाणा के निमित्त विविध मनोरञ्जक साधनों को जुगलन वाले, सेठ गोपाल के पुत्र सेठ नरपाल, सा० नन्दय, सा० बरसिंह, सा० मोसदेव, सा० शाखण्ड, सा० आशा, सा० कडुपा, सा० हरिपाल, सा० कीकिल, सा० आइइ आदि उचापुरी के भावकों की प्रार्थना से तथा देवराजपुर, क्रियासपुर, बहिरामपुर, मलिकपुर आदि नाना नगरों एवं ग्रामों के प्रमुख भावक एक राज्य-पिछरियों के अनुरोध से श्रीजिनकुशलधरिनी महाराज ने प्रतिष्ठा, व्रतग्रहण, मासाग्रहण आदि नन्दि-महोत्सव बड़ विस्तार के साथ किया। इस महोत्सव के समय राखकोट और क्रियासपुर में स्थित विधि-वैत्य के लिये मूलनायक श्री युगादिदेव आदि की, शिला-पीतल की बनी हुई अनेक प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की। यह उत्सव बहुत दिनों तक मनाया गया था। इसमें अगह-जगह नाचों का आयोजन किया गया था। गन्धर्वों में प्रसिद्ध हा-हा ह-हू के समान गायनाचार्यों ने अपनी संगीतकला का परिचय दिया था। सोना, चाँदी, अन्न, बस्त्र, मोड़े आदि देकर पाषक वर्ग को वृत्त किया गया था। जाने वाले सुल्लक-सुल्लिकार्यों को पुष्पांक दान बड़े विस्तार से किया गया था। सधर्मी-वात्सल्य, संघ-पूजा आदि धार्मिक कार्यों से, विषम दुःखमकल में भी सुपमाकल का सा मान होता था। यह उत्सव षड्वर्ती के पञ्चमियेक के समान था। महामिथ्यात्व रूपी दैत्य के विनाश करने में श्री कृष्ण का अनुकरण करने वाला था। स्वपक्ष के पुरुषों को आनन्द प्रद था। विपक्षियों के हृदय में क्षील की तरह घुमने वाला था। विधिधर्मसम्प्राद की जड़ खमाने वाला था। इस सुभ्रमर पर नौ सुल्लक और तीन सुल्लिकार्यों महाराज की अधीनता में आये। इनका नाम भावमूर्ति, मोदमूर्ति, उदयमूर्ति, विजयमूर्ति, इममूर्ति, मद्रमूर्ति, मेघमूर्ति, पद्ममूर्ति, इन्धमूर्ति तथा कुलधर्मा, तिनयधर्मा, शीलधर्मा, इस प्रकार थे। इस समय ७७ भावक-आधिकार्यों ने परिग्रह परिनाम्ब, सामाधिकारोपण, सम्यक्त्वारोपण आदि व्रत भारत किये। श्रीजिनकुशलधरिनी महाराज बड़ प्रभावशाली आचार्य थे। इन्होंने आर्य-अनार्य सभी देशों में जिनधर्म की प्रवृत्ति बढ़ाई। अनेक भूतियों को प्रतिशोध दिया था। इन्होंने धरि-मंत्र को सिद्ध किया

था। नाना शास्त्रों की व्याख्या, सुरासुर-वशीकरण, प्रतिवादी निराकरण, सर्व ग्रामों और नगरों में जिनमथन-प्रतिमा-स्थापना आदि नाना प्रकार की लम्बि-शक्ति से गौतमस्वामी, सुधर्मा स्वामी, आर्य सुहरित्छरि, बभ्रुस्वामी, वर्द्धमानछरि, नवांगी टीकाकर श्री अमरदेवछरि, मरुस्वामी कल्पद्रुम श्रीजिनदत्तछरि, प्रतिवादी पचानन श्रीजिनपतिछरि, जिनेश्वरछरि आदि अपने-पूरे पुरुषों की पदति का पूर्ण अनुकरण किया था। तपस्या, विद्या, व्याख्यान, ध्यान आदि के अतिशय से वशीभूत देवता, ग्लेच्छ व हिन्दू राजाओं के द्वारा कन्दनीय चरख कमल वाले, जिनचन्द्रछरिजी महाराज क प्रचान शिष्य थे। इन्होंने युगप्रचान पद प्राप्ति के बाद प्रतिवर्ष किय जाने वाले प्रतिष्ठा, व्रतग्रहण, मालारोपण, महातीर्थ-यात्रा-विधान आदि कार्यों से विश्वमर में ख्याति प्राप्त कर ली थी।

१०६ इन्होंने न्याय, कन्द, असङ्कार, नाटक, मीमांसा आदि सिद्धान्त और वेदादि ग्रन्थ रूपी महानगर के भागों में प्रवेश के लिए सारथी भूत अपनी कुशाग्र बुद्धि से देवगुरु-वृहस्पति को भी मात कर दिया था। इन्होंने सम्वत् १३८५ में उज्जैन नगर, बहिरामपुर, क्यासपुर आदि स्थानों से आने वाले, खरतरगच्छीय आचर्यों के मेल में फाल्गुन सुदि चतुर्थी के दिन पदस्थापना सुप्रक-सुस्त्रिभूतों की दीक्षा, मालाग्रहण आदि नदि महोत्सव वड़े विस्तार से किया। इस उत्सव में कमलाकर गण्डि को वाचनाचार्य पद दिया। बीस आचर्यों ने माला ग्रहण की, अनेक आचर्यों ने परिग्रह-परिभाषा, सामाधिकारोपण, सम्यक्त्व-धारण आदि कार्य किये।

११० इसके बाद सं० १३८६ में, गुरु मक्ति में अग्रतर, चिंतामणि के समान, देवगुरु की आज्ञा को भूषण की तरह मरुतक पर चारण करने वाले, बनपक्ति के समान जिन शासन प्रभावना को मध वृन्द की तरह सींचने व सत्ते, बहिरामपुरीय खरतर संघ के विशेष आग्रह से श्रीजिनकुशलछरिजी महाराज ने बहिरामपुर आकर, जिनकी सेवा से सब मनोरथ पूरे होते हैं ऐसे धीवाभनाथ मगवान की विधि पूर्वक वन्दना की। श्रीजिनकुशलछरिजी महाराज खरतरगच्छीय संघ क अनुरोध से सदैव विहार करने में तत्पर रहा करते थे। अपनी कृपि कीमुदी के प्रसार से पौर अचकर क मिटान में समर्थ थे। तरह-तरह क मांगलिक कार्यों के लिये आचर वृन्द को सङ्ग करने वाले थे; बस चरख कमलों को विस ही माविक-अनों को प्रबोध देने में उत्पथ थे। मोहापकार को भगाने म समर्थ थे। नगर प्रवेश क समय सेठ मीम, सा० देदा, सा० धीर, सा० रूपा आदि विधि-समुदाय न स्वजन व परजन समी क हृद्यों में चमरकार उत्पन्न करने वाला महाव उत्सव किया। उत्सव में अनेक लोग भीपूज्यजी के सम्मुख आप। महाराज क निर्मल पश क बरतान किया जाता था। रमणीय आकृति, सौन्दर्य आदि गुणों स युक्त महाराज अपनी मदिमा क अतिशय स तीक्ष्ण धार वाच परस की तरह विवा बेलड़ियों को कटाने में दक्ष थे। बहा पर बहिरामपुरीय भारक समुदाय ने भीपूज्यों के चरखारविन्दों की स्थापना की। इस चरख-प्रतिमा स्थापना-महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए अनेक ग्रामों तथा नगरों से बहुत से आचर-समुदाय

आये थे। इस आषर पर साधर्मी वात्सल्य, संभूषा, अवारित सत्र आदि नाना प्रमाणार्थ की र्य थीं। नगर में एकटक देखने योग्य अनेक प्रकार के खेल वमश्यों से जगह-जगह सुन्दर नृत्य के साथ धीपूज्यजी के गुणग्राम का वर्धन किया जा रहा था। बाहिरामपुर में कितने ही दिन दरदर और अपनी वाणी रूपी किरणों से निष्पान्चकार को मगाकर उसके स्थान पर महाप्रकाश का साम्राज्य फैलाया। इसके बाद क्या सपुर के खरतरगच्छीय भावक-समुदाय के प्रबल अतुरोच स महाराज ने क्या सपुर की ओर बिहार किया। मार्ग में श्री लारबाइय नामक गाँव के निवासी साह बीसिंग, साह जडा, साह बेला, साह महावर आदि मुख्य-मुख्य भावक समुदाय ने जब सुना कि पूज्यभी पधार रहे हैं, तब वे लोग अपने नगर क नवाब को साथ लेकर महाराज के सम्मुख आये और बड़ गाजे-बाजे क साथ महाराज का नगर में प्रवेश करवाया। यह प्रवेश महोत्सव भी बहिरामपुर की मौति ही हुआ। मन्दिरों के शिखर पर बजने वाले नक्शरों की आवाज सुनकर मयूरों का मेघ गर्जना का झम होता था। यहाँ पर धीपूज्यजी छह दिन बिराजे। इन छहों दिनों स लगातार साधर्मी वात्सल्य, अवारितसत्र, और सभ पूजा आदि कार्य बड़ी उत्तमता स होवे रह। इसके बाद सब को प्रबोध देने वाले जिनकुशलसरिजी महाराज वहाँ स चलकर बीच में खोजा जाइन नायक नगर में पहुंचे। वहाँ के भावकों ने बड़े समारोह के साथ नगर में प्रवेश करवाया।

१११ महाराज वहाँ स फिर क्या सपुर की ओर चले। महाराज को लेने क लिए क्या सपुर निवासी मुख्य-मुख्य भावकों का टल मार्ग में ही आ मिला; जिनमें सेठ मोहन, सा० कुमारसिंह, मा० खीमसिंह, सा० नापू साह बट्टा आदि भावकों क नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं। क्योंकि गुरु मक्ति के रम में इनकी आत्मा निषध थी। ये लोग विधि-मार्ग-रूपी मरोहर में बलवत्स के समान थे। धीजिनकुशलसरिजी महाराज क शुभागमन की सुशी में इन ममी क रोम-रोम झिल रहे थे। ये लोग क्या सपुर क नवाब स मांगकर पुलिस क आठ बजानों का साथ लेकर इमलिन आये थे कि नगर-प्रवेश महोत्सव के समय कोई दुष् मनुष्य किमी प्रकार का बलेहा उत्पन्न न कर सके। महाराज के स्वागत के लिए गरकारों, गैर सरकारी सभी लोगों ने उत्सव में भाग लिया था। उस समय नर-नारियाँ का खासा मना लगा था। उस समय मादों मास क मजल उत्सवों की प्वनि क समान गाज-बाजों की प्वनि का तुमुल गुञ्जार हो रहा था। महामिथ्यात्व के मर्म का नाश करने में बननी रूप पचरियाँ गई जा रही थीं। पारथ-भाट आदि लोग महाराज के निर्मलपय सम्भूषी नृपन गरम रचना वाली कविताये सुना रहे थे। श्वेताम्बर मुनियों क दर्शन से अर्द्धटिल, बौद्धिक-कृती सुन्दरियों क मधुर गीत कणधारी पय-पदियों को भी लुमा रह थे। नगर निवासी ममी आँसू धपना काम छोड़कर मयूरों के दर्जों पर आ इनीं थी। पूज्यभी के अभूतपूर्व दर्शनों स आरपर्य पछित होकर नगर निवासी समय नर-नारी करने लगे कि 'इनका रूप-सावय विधाता की बनोती रचना'...



के बादशाह इन महाराज की शांतिप्रियता वर्णनातीत है। इन्द्रियरूपी दुर्दमनीय घोड़ों को का करने में इनकी चातुरी अपूर्व है। इनका शांत वेश सब मनुष्यों को आनन्द देने वाला है। अनुयायी हजारों सामान्य सोधु इनके गुण-प्राप्त कर वर्णन कर रहे हैं।" इस प्रकार हजारों अंगुलिर्मा महाराज का परिचय दे रही थीं। "यै महाराज चिरकाल तक जीत रहें" चारों ओर से ऐसी आभ्युक्ति परम्परा सुनाई दे रही थी। पूज्यभी के पुण्य का प्रभाव से बड़े-बड़े घरों की स्वयं आई हुई, मदमाती सुन्दरी स्त्रियां मंगल-कलश मस्तक पर धारण किये हुए उत्सव के आगे शोभा बढ़ा रहीं थीं। महाराज ने अपने प्रभाव के अतिशय से फरसे की तरह सभी विप्र बेलड़ियों को विभ-मिश्र कर आनन्द उमग के साथ नगर में प्रवेश किया। महाराज प्रतिवादी-रूप हाथियों के सिधे सिंह के समान थे। इसीलिये दुष्ट भी शिष्ट बन गये और म्नेच्छों ने भी भावक-हृद की भाँति पूज्यभी का चरधारबिन्दों में विधिपूर्वक वन्दना की। महाराज का यह नगर-प्रवेशोत्सव बैसा ही हुआ; जैसा इतिहास प्रसिद्ध चौहान राजा पृथ्वीराज के समय अजमेर में जिनपतिहरिजी महाराज का हुआ था। इस महोत्सव की मफ़लता को देखकर कई एक विप्र सन्तुष्ट होने वाले दुष्टों की मुनाकृति फीकी पड़ गई थी। वहाँ पर महाराज ने अपने हाथ से प्रतिष्ठित भीयुगादिदेव मन्थान का पादरबिन्दों में वन्दना की। क्या सपुर निवासी शरतर-समुदाय का विधिमागोंपासक, क्रोमस-हृदय सभी भावक ज्ञान, ध्यान, पवित्र-चरित्र आदि सभी गुणों से सम्पन्न पूज्यभी के अनन्य मक हो गये और इस खुशी के उपलक्ष में नाना प्रकार के फलानों, व्यंजनों व फलों से साथी-बन्धुओं का उनने अत्यधिक सत्कार किया। महाराज ने भी कुतूहल बश आये हुए बड़े-बड़े पवन नेताओं को अपनी बचन चातुरी से आह्लादित कर उनका हृदय-रूपी कन्दराओं में सम्पत्क-बोध रूपी प्रकाश को पहुँचा कर मिथ्यात्व अंधकार को मगाया। सुभातक भक्ति-कमलों को धर्य की किरबानली की तरह बचनानली से विकसित करने वाले, तथा अनेक प्रकार के त्याग प्रत्यास्थान करने वाले महाराज चौमासी पृथ्विमा का ह्यम अवसर पर 'द्वाराजपुर' पधारे। सभी समुदायों ने मिलकर प्रवेश महोत्सव करवाया। वहाँ पर महाराज ने युगादिदेव के मन्दिर में दर्शनार्थ पधार कर विधि स उनकी वन्दना की।

११२ इसका बाद सम्वत् १३८७ में सठ नरपाल, माह हरिपाल, साह आंबा, साह लखवा, साह बाकन आदि उषानगरी का भावक समुदाय का प्रबल आग्रह से १२ साधुओं की साथ लेकर महाराज उषानगरी पधारे। वहाँ पर एक नाम तक ठहर कर पहले की तरह उनके तीर्थ प्रभावना आदि कार्य क्रिय और गुहरल का प्रधान मगर पाटख की तरह यहाँ भी 'अर्द्ध धर्म' का सूत्र विस्तार किया। इसके पश्चात् परशुरोरकोट के निवासी सठ दरिपाल, साह रूपा, साह आशा सा० सामस आदि मुख्य भावकों का अनुरोध से भी जिनकृशलहरिजी महाराज वहाँ से पले। मार्ग में ग्रामानुग्राम अनेक भावकों के सुपुत्र को सिधे हुए, महाराज के ह्यभागमन स प्रकृष्टि भावक

वृद्धाय की बन्दना स्वीकार करते हुए, दोल दमाके के साथ महाराज ने परशुरोरकोट नगर में प्रवेश किया। प्रवेश के समय सुहर बस्त्र-आभरणों से सुसज्जित अनेक नर-नारी महाराज के समुख आये थे। यहाँ पर कुछ दिन तक अपने सदुपदेशों से अनेक समुदाय का हित साधन कर महाराज भी बहिरामपुर आये। महाबान पार्ष्णनाथ प्रसू के घरखों में भक्ति-गण्डू होकर बन्दना की। कुछ दिन निवास कर बरत की तरह जिनशासन को प्रभावित किया और वहाँ से बिहार कर क्यासपुर आदि नगरों का नामों में; ग्राम में एक तथा नगर में पाँच; इस रीति से राष्ट्रियाँ बिताकर सम्पन्नियों के उपकार क लिये शीतकाल के प्रारम्भ की चौमासी तिथि पर श्रेष्ठ नगर बहरामपुर आये। श्री अक्षयमदेव महाबान के घरखों में आदर भद्रा-भक्ति परिपूर्णा हृदय से बन्दन किया।

११३ इसके बाद मन्वत् १३०० में श्रीविमलापल शिखर के असङ्कराररूपी धीमानतुङ्ग शिखर के शृङ्गार श्री प्रथम तीर्थङ्कर आदि जिनशरों की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा, स्थापना, व्रतग्रहण, मात्सरोपस्य आदि धार्मिक कार्य छत्रित्री ने करवाये। महाराज ने देश-विदेशों में भ्रमण कर ऐसे-ऐसे अनेक धर्म्य करवाये थे जिनके फारस्य छत्रीश्वर का गोबीर-श्रवण-रूप के समान घबल यश त्रिलोकी में फल गया था। बड़े हुए श्रेष्ठ ज्ञान-ध्यान के बल से समय की अनुकूलता-प्रतिबन्धता को पहिचान कर महाराज कार्य करत थे। अपने सुबल से अर्जित ज्ञान-बल से मत्तहृन्द के मनोरथ पूरने में बहुत म कल्पवृक्ष को भी पराजित कर दिया था। सब समुदायों ने सुव्यतिनक के समान उत्थापुरीय बहिरामपुरीय, क्यासपुरीय, सिसार बाइखोय नानानगर-ग्राम निवासी विधि समुदाय तथा समस्त सिंधुदेश के भावक समुदायों के मल में मिगमिर सुदि दशमी के दिन पदस्थापन, व्रतग्रहण, मात्सरोपस्य, सामायिक ग्रहण, सम्पत्स्य पारण आदि नन्दि महोत्सव घड़ी पूजाम स किया गया। इसमें नाच-गान, खेल-कूद, तमाशो खूब ही करवाये गये। और श्रीसंप की पूजा, साचमी भाष्यों की मनोवाञ्छित मोक्षण तथा गरीबों को दान आदि धर्म्य धनी-मानी भाष्यों की ओर से हुक हस्त हो किया गय। छुल्लक-छुल्लिभ्रमों को मन चाही बस्तुएँ दकर उनको सम्मानित किया गया। उस महोत्सव में गोमीर्य, औदार्य, धैर्य स्वैर्य, आर्जन, विद्वत्ता, कवित्व, वाग्मिस्व, साहित्य-ज्ञान, दान, चारित्र, आदि छत्तीस छत्रिगुणों की छान पं० तठुल्लकीति गच्छित्री को आचार्य पद प्रदान किया गया और 'तठुल्लप्रभाचार्य' यह नया नाम रखा गया और पं० लम्बिनिचानगणित्री को 'अभिपक पद' दिया गया तथा लम्बिनिचानोपाध्याय इम प्रखर नाम परिवर्तन किया गया। इसी अवसर पर दो छुल्लक और दो छुल्लिभ्रम भी हुईं जिनके नाम त्रयप्रिय मुनि, पुण्यप्रियमुनि, तथा त्रयभा व धर्म्यधी रत्न गये। इस भाविद्यमों न माता ग्रहण की। अनेक भावक-आदिद्यमों न परिग्रह-परिमाण, सामायिक ग्रहण एवं सम्पत्स्य-पारण की उपनता क लिये नादि महोत्सव मा किया। इस प्रखर पुन्य आचार्य भीत्रिनकुशलधरित्री महाराज ने अपने जीवन काल में अनेक ग्राम-नगरों में विचारत हुए अपने पुत्र्यार्य से समुदायित निर्निमिष दान देने से श्रेष्ठ हस्तिदन्त क समान तथा

सुक्तोद, वीरोद, वीर-समूह के माग, शिव के अङ्गदास एवं काश के समान निर्मल यश को चारों दिशाओं में फैलाया ।

११४ देवराजपुरमें श्रीतरुणप्रमाचार्य और श्रीलख्मिनिधान महोपाध्याय को श्रीपूज्यश्री महाराज ने जैनदर्शन के आधार मृत स्याद्वादरत्नाकर व महात्करत्नाकर सिद्धान्तों का परिशीलन करवाया अन्याय शिष्य मण्डली अपने-अपने शास्त्राम्यास में सलमन थी । इसी समय महाराज को ऐसा मान हुआ कि अब मेरा शरीर अधिक दिन नहीं रहेगा । माघ शुक्ल (१ प्रयोदशी) को शरीर में प्रबल नर व आस की व्याधिने बाधा खड़ी कर दी है । महाराज न स्वर्ग सिंघारने क लिये उन क्षेत्र को छुड़ाने बानकर और अपने निर्वाण का समय निकट आया समझकर तरुणप्रमाचार्य और लख्मिनिधान महोपाध्याय को श्रीमुख से आज्ञा दी कि 'मेरे बाद मेरे पाठ पर मेरे शिष्यों में प्रधान, पन्द्रह वर्ष की आयु वाले, सेठ लक्ष्मीधर के पुत्र, सठों में प्रधान सेठ 'आशंखी' को पुत्री साप्त्री 'नीकीका' के नन्दन, युगप्रधान क लक्ष्मी से विहित, कुल-सी सुकुमार आकृति वाले 'पद्ममूर्ति' नामक सुष्ठु को अमिषिक कर पक्षर बनाना ।' ऐसा कहकर स० १३८६ में फाल्गुन मास की कृष्ण पक्ष की क दिन तीसरे पहर सारे सय को इकट्ठा कर, सय से समायाचना कर चतुर्विध आहार का प्रत्याख्यान किया । नाना प्रकार से आराधना का अमृत पान करत हुए पक्षरमेष्टी क भ्रष्ट ध्यान रूपी पाँच सौगधिक पदार्थों से मिथित ठाम्बूलास्वदन से सुरमित दुख वाले श्री विनकुशलहरित्री महाराज ने दो पहर रात्रि बीतने पर इस अतार सतार को त्याग कर स्वर्गरूपी लक्ष्मी से विवाह किया अर्थात् स्वर्गिय देवों की पक्ति में अपना आसन जा जमाया ।

इसके बाद प्रातःकाल विद्युत्प्रति से यह समाचार फैलते ही; विषम-कालरूपी कासरानि के अज्ञानाधिकार को इटाने में अतुर भास्कर विधिसय के परम आचार युगप्रधान श्री विनकुशलहरित्री के अस्त होने से दुःखित अन्तःकरख वाले, समस्त सिन्धदेशीय नगर-ग्राम निवासी भावकों का इन्द्र एकत्रित हुआ । पंचहजर मन्त्रिकाओं से मण्डित सुन्दर धमकीले सुनहले दण्ड से सुशोभित इन्द्र के विमान क समान बनवाये गये निर्वाण विमान से निपाख महोत्सव मनोया गया और कपूर, अगर, ठगर, कस्तूरी, मलयचन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों से दाह-सस्कर किया गया । उनकी दाह-भूमि पर सेठ रीहड़ (गोत्रीय) पूर्णाचन्द्र के कुलदीपक सेठ हरिपाल भावक ने अपने पुत्र अर्धरुख, यशोचक्र आदि सर्व परिवार क साथ एक सुन्दर स्तूप बनवाया । यह स्तूप सय के समस्त मनुष्यों की दृष्टि को सुधारस की तरह आनन्द देने वाला था । श्री मरत महाराज से बनवाये गये अष्टापद पर्वत के शिखर क शिरोभूषण-इच्छाकुर्वंशोत्पन्न मुनिभूषणों के यज्ञभूमि के प्रधान स्तूप के सङ्घ था । मुस्लिम-प्रधान सिन्ध देश के मध्य में बसने वाले भावकों के विषय का आचार था ।



## आचार्य जिनपद्मसूरि

११५ इसके बाद सं० १३६० न्येष्ठ सुदि क्लृप्त सोमवार को मिथुन लग्न में देवराजपुर म युगादिदेश भगवान के विविधैत्य में तरुणप्रमाचार्य नं धी जयधर्म महोपाध्याय, धी लक्ष्मिनिधान महोपाध्याय आदि तीस मुनि, अनक साध्विर्पा, नाना देश नगर-ग्राम-निवासा स्वपचार-परदक्षीय अगणित भावक, ब्राह्मण, ब्रह्मचरिय, राजपूत, यवन, नवाष आदि हजारों मनुष्यों की अगणित उपस्थिति में धीजिनकृशालधरिजी महाराज की आज्ञा क अनुसार पद्मसूक्ति नामक जुलुक का उनके पाट-सिंहासन पर स्थापित किया गया और उनका नाम परिवर्तन कर भीजिनपद्मसूरि घोषित किया गया।

इस पाट-महोत्सव क शुभ अवसर पर अमारी घोषणा, नाना विष प्रमाभना, अवारित सत्र, उत्सपूर्वक रासगान, सौभाग्यवती कुलीन-ललनाओं का मंगलमय प्रमोद नृत्य, धन-धान्य, वस्त्र, सुवर्ण, तुरङ्ग आदि अनेक बहुमूल्य वस्तुओं का दान आदि विविध कर्ष्य किये गये। धनिषों ने बहुत विधि संप-पूजा में धन व्यय कर सुयश सम्पन्न किया। यह महोत्सव रीढ़ कुल में दीपक के समान, त्रिनशासन को प्रभावित करने में प्रवीण धनदेव के पोत हेमल के पुत्र सैठ पूर्णचन्द्र के सुपुत्र हरिपाल भावक ने सर्वधर्यो-नगरों-ग्रामों में कुडुम पत्रिकाएँ भेज कर चारों ओर से, सब स्थानों से विधि संपों को आमन्त्रित कर एक माम तक स्वगत कर, इन उत्सव को अपने विपुल धन व्यय से सफल बनाया। इसी हरिपाल भावक ने शत्रुञ्जय, गिरनार आदि महातीर्थों की यात्रा की थी। इसी नं धीजिन पन्द्रसूरि और युग प्रबर भीजिनकृशालधरिजी महाराज को सिन्ध देश में विहार करवाया था। अनेक मुनिषों को आचार्य पद, उपाध्याय पद दिलाने में सहायक हुआ था। इसन सुयश पैदा करने वाले अनेक कर्ष्यों से अपने कुडुम्बियों की दिग्दिगन्तरो तक स्थापति की थी। इन कर्ष्यों में अपन चाचा कडक, महीश कुलवर और अपन पुत्र भोम्रय, यशोधरल आदि कुडुम्बियों का सदैव साथ रखकर अग्रतर होता था। इसने संप-पूजा साधर्मि वास्तव्य आदि कर्ष्यों में हजारों रुपय अपने जेब से लगाय थे। यह महासुभाष सदैव याचक वर्ग का मानसिक सन्तोष करन में उत्तर रहता था।

उस महोत्सव में सठ भाषा भूमिका, मन्त्री, चाहक, पुस्तुर, मोहण, नागद्व, गामल, कर्षमिह खतसिंह, बोहिय आदि नाना स्थानों क निवासी धनी भावकों न अपन-अपने धन का सदुपयोग किया। उक्त अवसर पर धीजिनपद्मसूरिजी महाराज ने जयपद्म, शुभपद्म, हर्षपद्म इन तीन मुनिषों को तथा महाधी, कलकधी इन दो सुप्रिद्यमों का दावा दी। प० अमृतचन्द्रग ख को वाचनाचार्य का पद प्रदान किया। अनेक यात्रिकाओं न माला-प्रदण की। बहुत से भावक-भात्रिकाओं न सम्पन्नरत पारण, सामायिक प्रदण तथा परिग्रह-परिमाण पा प्रत लिया। तदनन्तर बठ सुदि नवमा क दिन सत्र हरिपाल ने युगादिदेश धीअपमदेव आदि अष्ट प्रतिमाओं का प्रतिष्ठा-प्रदण कराया।

स्वयं और जेजलमेर, क्यासपुर, स्थानों के लिए बनाई गई भीजिनकुशलधरिजी महाराज की तीन प्रतिमाओं का प्रतिष्ठापन—महोत्सव पद स्थापन—महोत्सव की तरह बड़े विस्तार से किया। उत्तरघात पट्टामिपैक में आये हुए जेजलमेर के विधि समुदाय की गाढ़तर अम्पचना से श्रीपूज्यजी उपाध्याय युगल आदि बारह साधुओं को साथ लेकर जेजलमेर के भावक समुदाय द्वारा किये गये, स्वपच—परपच, हिन्दू, म्लेच्छ आदि सब कलिये आनन्दकारी प्रवेश महोत्सव पूर्वक नगर में प्रवेश किया और देवाधिदेव पार्श्वनाथ मगवान को नमस्कार किया और महाराज का पहला चातुर्मास यहीं हुआ।

११६ अनन्तर सं० १२६१ पौष वदि दशमी के दिन मालारोपण आदि महोत्सव को विस्तार पूर्वक समाप्त कर लक्ष्मीमालागण्डिना को प्रवर्तिनी पद दिया। वहाँ से महाराज ने बाइमेर की ओर विहार किया। वहाँ पर साह प्रतापसिंह, साह सातसिंह आदि भावकों ने और श्रीचतुर्मान कुलदीपक राणा श्रीशिवरसिंह आदि राजपुरुष एवं अन्य नागरिक लोगों ने सम्मुख आकर बड़ी प्रतिष्ठा के साथ महाराज का नगर प्रवेश करवाया। वहाँ पर सर्वप्रथम महाराज ने मन्दिर बाहर युगादिदेव को विधिमाव से बन्दना की। बाइबुमर में दस दिन तक भावक समुदायों को सजुपदेश देकर श्रीपूज्यजी ने स्वयंपुर की ओर विहार किया। वहाँ पर राजमान्य, समस्त संघ के कार्य संचालन में समर्थ सठ नीब आदि भावकों और राखा श्री हरिपालदेव आदि राजकीय प्रधान पुत्रों ने सम्मुख आकर नगर प्रवेश महोत्सव करवाया। वहाँ पर श्रीपूज्यजी ने श्रीमहावीर मगवान की सत्तर सन्निप बन्दना की। साँचोर के समस्त समुदाय ने एकत्र होकर माह सुदि छठ के दिन सब मनुष्यों के मनको हरने वाला ब्रह्मप्रहस्य—मालारोपण आदि महोत्सव किया। इस अवसर पर श्रीपूज्यजी ने नयसागर, अभयसागर नाम बाल दो छुट्टकों को दीया दी। अनेक भाविकाओं ने माता-प्रहय और सम्यक्त्व धारण किया। वहाँ पर लगभग एक मास ठहर कर श्रीपूज्यजी ने भारत समुदाय का समाधान किया। फिर वहाँ से चलकर संघ के प्रधान पुरुष सेठ वीरदेव आदि के अनुतोष स घूमघाम से आदित्यपाट नगर में प्रवेश किया। श्रीशान्तिनाथ मगवान को नमस्कार किया। वहाँ पर माघ शुक्ला पृथ्विमा के दिन श्री ज्ञानबहुलोत्सव सठ तेरपाल आदि भावकों ने मिलकर बड़े समारोह के साथ प्रतिष्ठा महामहोत्सव करवाया। इस उत्सव में श्रीअपमदेव आदि पाँच सौ दिनप्रतिमाओं की प्रतिष्ठा श्रीपूज्यजी के हाथ से करवाई गई। उत्तरघात फागुन वदि पत्ती के दिन मालारोपण, सम्यक्त्वधारण आदि उत्सव हुआ।

इसके बाद सम्बत् १३६२ मार्गशीर्ष वदि पत्ती के दिन दो छुट्टकों को बड़ी दीया प्रदान की और भाविकाओं की माताप्रहय के निमित्त एक उत्तम उत्सव किया गया।

११७ इसका बाद सं० १३६३ में अतिथि क महीने में अवस्था में छोटे होते हुए भी श्रीपूज्यजी ने अपना आचर्यक कर्त्तव्य समझकर सेठ तेरपाल द्वारा विस्तारपूर्वक करवाये गये

वनमनन्दि-महोत्सव की सफलता के निमित्त अति कठिन 'प्रथमोपवान तप' बड़ी उत्तमता से निमाया। इसके बाद मोखदेव भावक के अत्यधिक अग्रह से और उसके द्वारा लिये गये अभिप्राह की पूर्ति के लिये महाराज ने फागुन सुदि दशमी के दिन पाण्डव से चत्तकर खीरापट्टी के अलक्षर मूल श्रीपरब्रह्मदेव मगवान् को वन्दना की। वहाँ से नारदव्र ( नाडोद ) स्थान में मंत्रीरत्न शोकाक के अनुसरोध से आये। दो दिन ठहरे और फिर वहाँ से श्रीआशोटा नामक स्थान की दिशा कर गये। आशोटा में स्यामल-कुल भूपरा, शत्रुञ्जय आदि महत्तीर्थों की यात्रा करने से विरहिकस्यात्, सदाचारी, भीसंघ के प्रधान पुरुष सेठ वीरदेव भावक ने भावक-समुदाय एवं भीरु, के पुत्र राधा, गोषा, सामतसिंह आदि बड़े-बड़े नगारिक लोगों को सम्मुख लाकर बड़े छट-बाट से महाराज को नगर में प्रवेश करवाया। यह प्रवेश महोत्सव भीमिनकुशलक्षरिजी महाराज के भी मयझी प्रवेशोत्सव से भी विशेष महत्वशाली हुआ। वहाँ से चलकर महाराज बूजद्री नामक स्थान में आये। यद्यपि मार्ग बड़ा विकट था और बहूत था, हिंसक वस्तुओं की भरमार थी, नदी नाछे, पहाड़ आदि के कारण जमीन भी बड़ी ऊपर-साबर थी। परन्तु मार्ग में मोखदेव भावक की धोर से सुप्रबन्ध होने के कारण श्रीपूज्यकी राजमार्ग की मांति निःशङ्क हो अपने प्राप्य स्थान को सङ्गृह्य पहुँच गये। मोखदेव भावक सेठ छत्रलक्ष्मी के विशालकुल गगन का अलंकारभूत चमकीला धर्य था। चाहमानवश मानस-सरोवर का रावहस था। अपनी प्रतिष्ठा के निमाने में अद्वितीय था। मोखदेव भावक ने बूजद्री के राजा उदयसिंह की तथा समस्त नगारिक लोगों को साथ लाकर बड़े प्रभाव से श्रीपूज्यकी को नगर में प्रविष्ट करवाया।

११- उसी वर्ष श्रेष्ठिर्ष्य मोखदेव ने सेठ रावसिंह के पुत्र पूर्वासिंह, पयसिंह आदि सकल कुलम्बियों से परामर्श कर भी राजा उदयसिंह की तरफ से राजकीय सहायता पाकर अर्बुदाचल ( भाबू पर्वत ) आदि तीर्थों की यात्रा करने के लिये श्रीपूज्यकी से प्रार्थना की। ज्ञान-पान में अपने पूर्वाचार्यों का अनुकरण करने वाले श्रीपूज्य जिनपद्यक्षरिजी महाराज ने अपने देवी-ज्ञान-वत्त से यात्रा की निर्बिभवा को जानकर और तीर्थयात्रा धर्मप्रभावना का सबसे बड़ा भग है, सम्यक्त्व की निर्मलता का निदान है, यह सुभाषकों के अवरप करने योग्य है, ऐसा समझकर मोखदेव भावक को अपनी धोर से अनुमति दी। पूज्यकी का आदेश पाने पर सोलख और श्रीमाल आदि ग्रामीय तप के प्रधानपुरुष श्रेष्ठिर्ष्य साह बीजा, माह देपाल, साह जिनदेव, माह सांगा आदि न स्वपक्षीय-परपक्षीय महाजुभावों को तथा अन्य संघों को तीर्थयात्रा निमन्त्रण के लिए बुद्धम-पत्रिकायें भेजी गई। मार्ग में समस्त संघ की देखभाल, निगाह-निगरानी का भार साह मूत्रराज और साह पयसिंह को सौंपा गया। सेठ मोखदेव ने तीर्थयात्रा में साथ चलने योग्य दशान्तय क आकार का एक रथ बनवाया, जिसमें चैत्र शुक्ला पञ्ची आदित्यवार क दिन थीशान्तिनाथ मगशान् क दिव्य की स्थापना करके महाराज से वासवेष करवाया। इसके बाद बड़े छट-बाट से अर्थात्

किया गया। बुद्ध की निवासी सेठ फाला, साह कीरतसिंह, माह होला, साह मोवा आदि विदिसंघ तथा मंत्री लडा आदि अन्य भावक सघों को साथ लेकर चैत्र सुदि पूर्णिमा क दिन शुभ मुहूर्त में देवासय सहित सघ ने प्रस्थान किया। भीपूज्यजी भी श्रीसम्भिनिधान महोपाध्याय, अमृतचन्द्रगणि आदि पन्द्रह मुनियों और त्रयविं महतरा आदि आठ साध्वियों को साथ लेकर सघ क साथ तीर्थयात्रा को चल।

११६ मार्ग में भी बुद्धी सघ और सोलख प्रान्तोपसघ भी भी नावा तीर्थ में आ मिले। वहां पर सठ छरा आदि मुख्य २ भावकों ने तथा सठ मोलदेव ने इन्द्र पद आदि पदां को ग्रहण कर बड़ी प्रभावना की और भी महावीर भगवान के लक्ष्मणे में दौ सौ रुपये नगद देकर अपने इच्छ क सदुपयोग किया। इसके बाद समस्त भीसघ द्वारा पूजित-सेवित भीपूज्यजी महाराज तीर्थराज भाव पहुँचे। वहां पर अर्बुदाचल के अलङ्कार, सकलजन मनोहार, भारतीय प्राचीन शिल्पकला के सार प्रसिद्ध मन्दिर विमल विहार, भीखुबिगविहार, भीतेजसिंह विहार के मूल अलङ्कार भीष्मपमदेव एवं नेमिनाथ प्रमुख तीर्थहूरो की मक्ति-मात्र से बन्दना की। वहां भेष्टी मोलदेव आदि समस्त भीसघ ने इन्द्र पद, अमात्यपद आदि पद ग्रहण, महाध्वजारोपण, अवारिठ सत्र आदि अनेक महोत्सव किये और पाँच सौ रुपये भगवान के मण्डार में प्रदान कर अपन धन को सफल किया। वहां से चलकर प्रहादनपुर के स्तूप में अलङ्कार समान युगप्रधान भीबिनपतिस्मरिणी महाराज की प्रतिमा को सुदृश्य ला ग्राम में आकर नमस्कार किया। इसके बाद जोरा पट्टी में आकर भीसघ सहित भीपूज्यजी ने महाप्रभाषी लक्ष्मीनाथ-श्रीपार्श्वनाथ भगवान की बन्दना की। वहां पर भीसंघ ने इन्द्रपद आदि महोत्सव का विधान किया और भगवान के मण्डार में डेढ़ सौ रुपये प्रदान कर धन का सदुपयोग किया। वहां से चल कर श्रीमंघ च टावती नगरी आया। वहाँ पर सेठ शंकर, कृपा आदि नगर निवासी भावकइन्द्र ने साधर्म वास्तव्य, भीसघ पूजा आदि के विधान से संघ का बड़ा सम्मान किया। सघ ने इन्द्र आदि पद क ग्रहण से भीपुगादिदेव के मन्दिर-कोश में दौ सौ रुपये प्रदान किये। वहां से विदा होकर भीपूज्यजी न समस्त संघ के साथ आरासन नामक स्थान में भीनेमीश्वर आदि पाँच तीर्थों को नमस्कार किया और भीसंघ ने इन्द्रपद आदि ग्रहण कर डेढ़ सौ रुपये वितरण किये। तदनन्तर श्रीसारगाजी तीर्थ में आकर समस्त यात्रीदल न श्रीकुमारपाप्त भूपाल के धीर्तिस्त्वम् रूप अजितनाथ भगवान् को प्रणाम किया। इन्द्रपद आदि के निमित्त डेढ़सौ रुपये देकर धन को सफल किया। वहाँ स लौट कर भीमंघ त्रिशुम् आया। वहाँ पर मंत्रिभर सांगखडी के पुत्र रत्न मंत्री मंडलिक, मंत्री बपरसिंह, साह नेमा, माह कुमारपाल, महीपाल आदि स्थानीय भीसघ ने महाराज महीपाल के पुत्र भीरामदेवजी की आज्ञा से भीसघ का नगर प्रवेश महोत्सव करवाया। वहाँ पर भीपूज्यजीने

शुद्धि सय को साथ लेकर बड़े समारोह से चैत्य परियागी की और श्रीसय ने अन्य स्थानों की तरह इन्द्र आदि पदों को स्वीकार कर डेढ़ गौ रुपय धीपार्थनाच मगवान व मन्दिर में भेंट चढ़ाये।

पारों और दिशाओं स फैलने वाले महाराज के गुणगण और कीर्ति-सम्बन्ध को सुनकर राजसमा के सदस्यों सहित महाराज रामदेव के हृदय में धीपूज्यजी क दर्शन की उत्कण्ठता बागुल हुई और सठ मोखदेव और मन्त्री मंडलिक को कहा कि "छोटी सी उम्र वाले आपके गुरुओं का बहुत बुद्धिमर्क्य सुनने में आया है। इसलिये उनक दर्शनों क लिये मैं वहां चलूंगा, नहीं तो उन्हें यहां मेरी समा में लाओ।" मोखदेव और मन्त्री मंडलिक का विशेष आग्रह देखकर धीपूज्यजी महाराज भीष्मनिधान महोपाध्याय आदि साधुओं के साथ महाराज रामदेव की समा में पधार। राजा रामदेव ने धीपूज्यजी को दूर ही से आता देखकर अपने राजसिंहासन स उठकर वारस-बन्दना की और पूज्यजी क बैठने के लिये अपन हाथ से चौकी बिछाई। धीपूज्यजी ने हृदय से आशीर्वाद दिया। मुनिराजों क विराजने क बाद धीसारंगदेव नामक महाराज क ब्यास ने अपनी रचना की हुई संस्कृत कविता सुनाई। उनकी रचना में भी शिष्यनिधान महोपाध्यायजी ने क्रिया सम्बन्धी वृत्ति पठाई। इस बात से राजा रामदेव के हृदय में आश्चर्य हुआ और बारंबार समा में कहने लगे कि—“इन उपाध्यायजी महाराज की वाक्यदुता और समस्त शास्त्रों का रहस्य ज्ञान अलौकिक शक्ति का परिचायक है। इन्होंने हमारी समा के प्रौढ विद्वान् ब्यासजी की रचना में भी अद्भुत दर्शाई है।” इसी प्रकार अन्य समावद भी आश्चर्य से अपना मस्तक घुनत हुए धीपूज्यजी और उपाध्यायजी के गुणों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने लगे। धीपूज्यजी ने तत्कालिक कविता स श्रीरामदेव महाराज का दर्शन इस प्रकार किया —

विहितं सुवर्णसारङ्गलोभिनाऽपि स्वयाऽव्यसुतं राम । ।

यत् सङ्कापुरुषेण ननु ददे श्रीर्वरा सीता ॥

[ हे राजन् ! राम ! ( रामदेव ) उस इतिहास प्रसिद्ध राम की तरह आप सुवर्णरूपी मृग क सोमी हैं, परन्तु लंका क कापुल्य राक्षस ने उनकी सीता नामक भेष्ट मार्या को हर लिया। किन्तु आपकी लक्ष्मीरूपी सीता को छीनने वाला कोई नहीं है। आप में और उम ऐतिहासिक राम में यही आश्चर्यजनक भेद है। ]

इस मात्सर्यमिंत श्लोक को सुनकर सारी समा आश्चर्य निमग्न हो गई। इसके बाद राजा साहब रामदेव न श्रीमिदसेन आदि आचार्यों को बुलाकर उनक समक्ष धीपूज्यजी स उठ करतस्य कविता को विस्तार से सुनवाए। इस नूतन राजसमा में भी स्वभाव सिद्ध प्रगल्भता को कारण करने वाले धीपूज्यजी ने उस उल्लिखित कविता को परब्रह्म गान्त वि-





इसके बाद आप अब गुजरात के लिए बिहार कर रहे थे, उस समय मार्ग में सरस्वती नदी के किनारे ठहरे। तब एकदन्त में यह चिन्ता हुई कि "कल गुजरात पहुँच कर पत्नीय संघ के सम्मुख धर्मदेशना देनी है और मैं बालक हूँ, कैसे धर्मदेशना दे सकूँगा?" तो सरस्वती नदी के किनारे ठहराने के कारण सरस्वती ने सन्तुष्ट होकर वरदान दिया और आपने प्रातःकाल पाठ्य पहुँचकर 'धर्मो मगवन्त इन्दमहिता' इत्यादि शार्दूलविक्रीडितछन्दोबद्ध नवीन काव्य का निर्माण कर उसका ऐसा सुन्दर प्रबचन पत्नीय संघ के सम्मुख किया कि सब आश्चर्य चकित हो गए और आपको 'बालाघवलकृष्ण सरस्वती' इस उपाधि से सुशोभित किया गया।

सन् १४०४ में वैशाख शुक्ला चतुर्दशी के दिन किसी ने आप से आपकी धर्मपुर का प्रतिष्ठा बना दिया।





# खरतरगच्छ का इतिहास

[ उत्तरार्द्ध ]

भाचार्य जिनलक्ष्मण से जिनधन्वर्ष



### श्री जिनलम्बिसूरि

आचार्य श्री जिनपद्मसूरि क पङ्क पर श्री जिनलम्बिसूरि अभिषिक्त हुये । आपका जन्म स० १३७८ में मालू गोत्र में हुआ था । स० १३८८ पाटण में आपने दीक्षा ग्रहण की थी । उपाध्याय पद आपके श्री जिनकुशलसूरिजी ने ही दिया था । आप जिनपद्मसूरि के विद्या गुरु थे और उपाध्याय विनयप्रम के सहपाठी थे । विनयप्रम को उपाध्याय पद भी आपने ही दिया था । आपका पद्मामिषेक पाटण निवासी नवलखा गोत्रीय साह अमरसी ईस्कर कृत नन्दि महोत्सव द्वारा स० १४०० आपाङ्ग मुदि प्रतिपदा को सम्पन्न हुआ था । आपके सूरि मंत्र श्री तर्कप्रमाचार्य ने दिया था । तदनन्तर क्रम से आप सप्त सिद्धान्तों के शिरोमणि और अष्ट विधान पूरक हुये । स० १४०६ में नागपुर में आपका स्वर्गवास हुआ था ।

### श्री जिनचन्द्रसूरि

आपका जन्म ब्रह्मह गोत्र में स० १३८५ में हुआ था और स० १३६० में आपने केवल ५ वर्ष की अवस्था में ही दीक्षा ग्रहण करली थी । स० १४०६ माघ मुदि दशमी को वेणुत्तमे में नागपुर निवासी श्रीमाल बंशीय रखेवा गोत्रीय साह हासी कृत नन्दिमहोत्सव पूर्णक आपकी पद स्थापना हुई थी । श्री तर्कप्रमाचार्य से आपने भी सूरि मंत्र ग्रहण किया था । स० १४१४ आपाङ्ग वदि प्रयोदशी के दिन स्वप्न तीर्थ में आपका स्वर्गवास हुआ । कृपाराम लयायीय प्रदेश में आपका स्तूप निवेश किया गया था ।

मुनि सहजज्ञान रचित विवाहलो सं आपके संबंध में निम्न श्लोक्य बतलें प्राप्त हैं —

( मठ ) दश क कुसुमाबा मांव में मंत्री केन्हा निवाम करते थ । उसकी पत्नी सरस्वती की कृपि सं पातालकुमार का जन्म हुआ था, कुमार बड़े होने लगे । इपर दिव्नी नगर से रपति संपति ने शत्रुञ्जपतीर्थ की यात्राय संच निघ्नला । कुसुमाथो में आने पर मंत्री केन्हा भी उसमें सम्मिलित हुये । क्रमशः प्रयास कृता हुआ संच शत्रुञ्जय पहुंचा । तीर्थपति अपमवेच प्रथ के दर्शन कर सबने अपना जन्म सफल माना । वहाँ गन्धनायक श्री जिनकुशलसूरि का वैराग्यमय उपदेश श्रवण कर पातालकुमार को दीक्षा लेने का उत्साह प्रकट हुआ । पर माता से अनुमति प्राप्त करना कठिन था । अन्त में किसी तरह माता ने प्रबोध पाकर आग्रा ददी और पातालकुमार को सूरिजी ने वासुदेव देकर उन्हें शिष्यरूप से स्वीकार किया । यथा समय दीक्षा की तैयारियां होने लगीं । मन्त्री केन्हा ने शत्रुविष विधि संच की पूजा की । याचकजनों को

मनोविक्षिप्त दान दिया। पाल्हालकुमार का कर्घोडा निकला और वे व्रतभी से इच्छेता जोड़ने ( दीवा लेने ) गुरुभी के पास आगये। गुरु महात्मा ने उसका दीवा-कुमारी से किनाह करवा दिया ( दीवा देदी )। इस समय दिल्ली आदि नगरों की क्षिर्यो मंगलमान गाने लगीं। गुरुवर जिनकृशलक्षरि ने आपका दीवा नाम जशोमद्र ( यशोमद्र ) रखा। श्री अमीचंद्रगणिक के पास आगने विषाध्ययन किया। यथा समय पद लिखकर योग्यता प्राप्त होने पर श्री जिनलक्ष्मिरि अपने अंतिम समय यशोमद्र मुनि को अपने पद पर प्रतिष्ठित करने की शिषा दे गये। तदनन्तर तरुणप्रमथरि ने सं० १४०६ माघ सुदि १० को जैसलमेर में आपको गच्छनायक पद पर प्रतिष्ठित किया। पाट महोत्सव हाजीराह न किया।

### श्री जिनोदयसूरि

आपका जन्म सं० १३७४ में पाल्हालपुर निवासी मान्हू गोत्रीय साह रूपास की धर्मपत्नी धारल देवी की रत्नकुषि से हुआ था। आपका जन्मनाम समर था। सं० १३८६ मीमस्त्री में महावीर पैत्य में पिता रूपास द्वारा कृत उत्सव से पहिन कीण्ह के साथ आचार्य प्रथम श्री जिनकृशलक्षरिजी के पास दीवा ग्रहण की। दीवावस्था का नाम सोमप्रम रखा गया था। सं० १४०६ में जैसलमेर में श्री जिनचन्द्ररि ने स्वहस्त से इनको वाचनाचार्य पद प्रदान किया था। सं० १४१४ ज्येष्ठक कृष्णा १३ को स्वम्मतीर्य में अजितनाभ विधि पैत्य में लूबिया गोत्रीय माह जेमसत<sup>x</sup> कृत नदिमहोत्सव द्वारा तरुणप्रमाचार्य ने आपकी पद स्थापना की। तदनन्तर आपन स्वम्मतीर्य में अजित जिन पैत्य की प्रतिष्ठा की तथा शत्रुघ्नप तीर्थ की यात्रा की। पांच स्थानों पर पांच बही प्रतिष्ठायें कीं। आपने २४ शिष्य और १४ शिष्याओं को दीक्षित किया एवं अनेकों को संघवी, आचार्य, उपाध्याय, वाचनाचार्य, महषरा आदि पदों से अलंकृत किया। इस प्रकार पञ्चपर्व दिन ( पांचों तिथि ) के उपनाम करने वाले, बारह धामों में अमारिपोषणा करने वाले तथा अट्टाईस साधुओं के परिवार के साथ अनेक देशों में विहार करने वाले आनायभी का सं० १४३२ माघपद वणि एकादशी को पाल्हाल नगर में स्वगत्व हुआ।

इनके विषय में विप्रति पत्र के आचार पर कुछ विशेष वृत्त कृत हुआ है, यह विप्रति भी जिनोदयसूरि का शिष्य मेरुनन्तनगणिक ने लिखा सं० १४३१ में अपोष्या में विराजमान

राज्याम ५० सुदि १३, सं० ५० आषाढ सु २, सम्मत्सुत्तीय आषाढ बदि १३

x जयधर्मोय गुप्तकेसव तथा धनरत्नश कृत राम आदि के अनुसार पृथग्विभक्त मद्योक्तव दिव्यो निष्ये भीमल टमाल, नीला मया के पुत्र संघवी रत्न्या पुत्र्या और शत्रु बन्तुल्ल ने किया था।





हमने विधिपूर्वक वर्षप्रस्थिपर्व मनाया। वहां पंद्रह दिन ठहरे। फिर सैंकड़ों वैदल मिपादियों सहित साधुराज रामदेव हमे लेने आया। दो प्रहर मे सप्त माग को पार कर हमने मेवाड क कपिल-पाटक नाम के सुमज्जित नगर मे श्रीविभिन्नोक्ति विहार के श्रीकरहेटक पार्ष्वनाथ की सहर ब्रना की और वहीं शतुर्मास किया। मार्गशीर्ष के प्रथम पष्ठ के दिन श्री भागवत दीवा महोत्सव हुआ। दीवाएँ ये थीं—

पूरे नाम

दीवा नाम

१—चौरासी गाँवों मे अमारी घोषणा कराने के लिये प्रसिद्ध मंत्रीस्वर अरसिंह की संतान घोषरा गोत्रीय साखा का पुत्र श्रीबाक मत्री

कन्याबिसलाम मुनि

२—कश्योडा-गोत्रीय राखा का पुत्र जेहड़

श्रीतिविलास मुनि

३—झड़ड़ वंशी खेता का पुत्र भीमड भाकक

कृष्णविलास मुनि

४—भूतपूर्व देश सखि मालू शास्त्रीय इ गरमिह की पुत्री उमा

मलिसुन्दरी साखी

५—न्यावहरिकरंगी मदिपति की पुत्री हाँघ

हर्षसुन्दरी साखी

इसके बाद साधुराज रामदेव न पाँच दिन अमारी की घोषणा करवाई और मात्र-आठ दिन गरीब भावकों की मद्दयता की। इसक बाद सप्त मत्र लोग अपने अपने स्थानों पर चले गए तो हम सेह्रहस्त खेम् भाकक द्वारा आमन्त्रित होकर उसके शतपत्रिका आदि स्थानों मे पूमे। इसक बाद यद्यपि हम गुजरात जाना चाहते थे तो भी साधुराज रामदेव के आग्रह से राजधानी पहुँचे। फरगुन कन्या अम्मी को मोमवार के दिन अमृतमिदियोग मे अिनविभ्र प्रतिष्ठा महोत्सव किया। वहाँ अन्नक जिन प्रतिमाएँ और श्री जिनरत्नशरि की मूर्ति की स्थापना की। यह कष्टक पार्ष्वनाथ की ही कृपा थी कि म्नेच्छ संकृत मंनिषयों मे भी यह मत्र काय निराबाध सम्पन्न हुआ।

इसक बाद नरसागरपुर क निशामी मन्त्रीकर मुज्जा क वंशज मंत्रीजर बीग न हमे लेन क लिये अपने माई मन्त्रीजर मयडलिक क पुत्र मन्त्री मार ग को मजा। हम मंत्री मार ग क मायें गरित थी कष्टक पार्ष्वनाथ को नमस्कर कर फरगुन शुक्ला दशमी को खाना द्युप।

नागादद (नागा) मे हमन नवरगण्ड पार्ष्वनाथ क दर्शन किया। ईहर के किले मे पालुन्यगज द्राग निमापित मुन्दर लोग्य पुत्र विद्वान् भाल अयमन्त्र की, बडनगर मे आदिनाथ धार बर्दमान की, मिदपुर क चरुनी मिदगज जयमिह द्राग करित दनालय मे परमन्त्री की

पार-मूर्तियों की वंदना करते हुये हम चैत्र के प्रथम पक्ष में पष्ठी के दिन (१) पचनपुर पहुँचे।

मंत्रीश्वर वीरा बहुतसी में ट लोकर खान से मिला। खान प्रसन्न हुआ और यात्रा के लिये फरमान प्रदान किया। उसके बाद प्रवेशक महोत्सव पूर्वक नगर में प्रवेश कर उसने श्री शान्तिनाथ की वंदना की और पुण्यशाला में गुरु को नमस्कार कर अपने स्थान पर गया।

उसने लकड़ी का सुन्दर एक सुमजित देवालय तैयार किया। उसमें चैत्र की द्वितीय पक्ष की पष्ठी को श्री अक्षयमेष का निवेश किया। मंत्रीश्वर वीरा और मंत्री सारग संघ के अधीश्वर बने। उन्होंने नरसमुद्र को सर्वथा वृत्त किया। चारों दिशाओं से लोग संघ में सम्मिलित हुए और श्री देवालय का निष्क्रमण महोत्सव अत्यन्त विस्तार से हुआ।

नरसमुद्र से निकल कर कुमरगिरि पर पहला प्रयाण हुआ। इसके बाद कुडुमपत्रिकाओं द्वारा समाहृत मरु-मेदपाट-सपदलक्ष-माठ-सिन्धु-बामाठ-कौशल आदि देशों के लोगों सहित हम भी सैनाथ की पहली तृतीया के दिन वहाँ पहुँचे। वहाँ से मल्लखपुर पहुँचे। गेय के पुत्र इंगर ने प्रवेशक महोत्सव किया। सा० कौकर द्वारा उद्धारित विचित्रिहार में सैन्धव-पार्ष्व कौं नमस्कार किया। दो दिन ठहर कर शंखरपुर पहुँचे और वहाँ चार दिन ठहरे। फिर पाप्म पम्भासर में नेमिअन और वर्द्धमान को नमस्कार कर मण्डलग्राम पहुँचे। वहाँ बाह्यमेर के परीषि विक्रम, राजापचन के का-इड, स्तम्भवीर्य क गोबल को महाभर पद दिया। वीरा ने उनका सम्मान किया और उनका संबन्धित पद प्रथक विलक कर संबन्धित स्थाननाचार्य विक्रम प्राप्त किया। इसके बाद माणु वेङ्गपाल के पुत्र कडुक सुमारक का सर्व श्री संब में सब कार्य में प्राधान्य हुआ। इसके बाद स्थान थाप इश से ५० हर्षचंद्रगणि हमसे मिले फिर मौराष्ट्र मंडल से महिपाउद्र स्थान में मिले हुए संसाष्ट्रपति के प्रसाद पात्र, अजयशहपुर पार्वनाथादि के मसुद्धारक सुवालदेव के नंदन वीरा का बड़े भाई पूर्ण सुभावक ने अक्षय तृतीया के दिन सम्पूर्ण संपनस्यकण्य धारण किया और हम प्रवेश महोत्सव महिना पोपावेलइल स्थान में पहुँचे और नरखण्ड पार्वनाथ की वंदना की। वहीं श्री विनयप्रम से माषात्कार हुआ। आगे बढ़ कर विमलाचल क निष्क मघ ने तम्बू लगान, वहाँ से शत्रुञ्जय इत्यादि देने लगा। अनेक दानों द्वारा संघ ने मिठाचल क दर्शन को मफल किया। उसके बाद संघ पदलिप्तपुर होता हुआ शत्रुञ्जय पर्वत पर चड़ा। प्रायश क अन्दर शूयकत खरतरविद्वान्, नन्दीश्वरम्भ मण्डप, उञ्जयन्ताभनाग, धीम्नगतिगिह्य, प्रिलवतोरणादि स्थानों का मोक्षार्थ इच्छता हुआ संघ विद्वान् मण्डल में पहुँचा। वहाँ उमने युगादिद्य क दर्शन कर अपने आपको कृतकृत्य किया। संपति मंत्री पूर्ण और मंत्री बीरा न अनेक प्रश्न से हम महार्थ की महिमा का स्तुति किया एवं ज्येष्ठ कृष्ण तृतीया को प्रतिष्ठा महोत्सव किया। हमने ६ - १८५

प्रतिष्ठित की। विस्तार पूर्वक मालातोषय महोत्सव हुआ। फिर युगप्रधान जिनकाव्युत्तरि की कीर्ति के विस्तारक मानतु ग नाम के खरखरविहार में संपत्तियों ने पूजादि की। श्रीजिनरत्नहरि को पूजनादि द्वारा प्रसन्न किया। फिर विमलाचल के विहारों में महाअक्षयप्रोपन्न पूजा की। इस प्रकार वहाँ आठ दिन तक रहे।

इसके बाद संघ गिरिनार तीर्थ के लिये चला। विनयप्रम महोपाध्याय शरीर से सशक्त न थे। अतः स्वम्मतीर्थ चले गए। अजागृहपुर में तीन दिन भी पार्ष्वनाथ की उपासना की। फिर अर्थापुर होते कोटिनारपुर पहुँचे और वहाँ अम्बिका का पूजन किया। देवपत्तनपुर में श्री चन्द्रप्रम स्वामी आदि जिनद्वारों को नमस्कार किया। मांगन्यपुर में नवपद्म पार्ष्वनाथ की बन्दना की। इन्होंने मन्त्रि पूर्वक द्वारा करिव दारुमयी पौपत्रशाला में तीन दिन तक विभ्राम किया। श्रीजीबदुर्ग में श्री पार्ष्वप्रभु को पूज कर खेताचल पर चढ़े। वहाँ नेमि जिनकर के दर्शन किये। वहाँ भी वीरा और पूर्ण ने शत्रुञ्जय की तरह कृत्य किये। पाँच दिन वहाँ ठहर कर उज्जयन्त से उतरे। मांगन्यपुर पहुँचे। वहाँ लोगों के आग्रह के कारण ललितकीर्ति उपाध्याय, देव कीर्तिगधि, और सावृत्तिलक धुनि को रखा।

देवपत्तनपुर में दोहा महोत्सव हुआ। वहाँ सीहाकुल वाले मन्त्रीरवर टांडू के पुत्र खेतसिंह का दीवा नाम के मूर्तिधुनि और मान्हू शास्त्रीय चाम्या के पुत्र पद्मसिंह का नाम पुण्य मूर्तिधुनि रखा। फिर नवलचदीप होते हुए शैरीपक पत्तन पहुँचे और लोठयापार्ष्वनाथ जिन को नमस्कार किया। वहाँ बाराने सुवर्णकलाया चढ़ाया। आश्वय मास की पहली पक्षदशी को मघ ने नरसम्पत्तन में प्रवेश किया।

आपके लिये मेवाड के देवनमस्कार के सपेद आद्यत, शत्रुञ्जय के पान और उज्जयन्त पूजन की सुपारी मेजते हैं। आप स्वीकार करे। यहाँ श्रीपत्तन में चातुर्मास मान द हुआ है।

संस्कृत १४३१ जिनपञ्चक पंच कल्याणक द्वारा पवित्रित पक्षदशी के दिन श्रीपत्तनपुर में स्थित श्रीखरखरगच्छाचार्य श्री जिनोपाध्याय—गुरु के आवेश से उनके शिष्य मेरुनन्दन गधि ने अयोध्यावारी स्थित श्री लोकहितार्थ के लिये यह महा लेख समर्पित किया।

## आचार्य जिनराजसूरि

सं० १४३३ फाल्गुन कृष्ण पष्ठी क दिवस अथर्वसिद्धपुर ( पाटण ) में श्रीलोकहितार्थी † ने इन्हें आचार्य पद प्रदान कर जिनोदयसूरि का पङ्कज घोषित किया । पङ्कामिके पद महोत्सव सा० कृष्ण षष्ठी ने किया था । आप सवालाल श्लोक प्रमाण न्यायन्यों के अध्येता थे । आपन अपने अकर्मलों से सुवर्णप्रम, सुवनरत्न और सागरचन्द्र † इन तीन मनीषियों को आचार्यपद प्रदान किया था । आपने सं० १४४४ में चित्तौड़गढ़ पर आदिनाथमूर्ति की प्रतिष्ठा की थी । सं० १४६१ में देवकुसुमाटक ( देलवाड़ा ) में आपका स्वर्णवास हुआ था । मक्तिवश आराधनार्थ देलवाड़ा के सा० नान्दक आश्रम ने आपकी मूर्ति बनाकर उनके पङ्कज श्रीजिनवर्धनसूरि से प्रतिष्ठा करवाई थी, जो आज भी देलवाड़ा में विद्यमान है । इस मूर्ति पर निम्नलिखित श्लेष उत्कीर्ण है—

“सं० १४६६ वर्षे माघ सुदि ६ दिने ऊर्ध्वशेषे सा० सोपा सन्ताने सा० सुहृदापुत्रेण सा० नान्दकेन पुत्र शीरमादिपरिवारयुतेन श्रीजिनराजसूरिमूर्ति करिता प्रतिष्ठिता श्रीखरसरगच्छे श्रीजिनवर्धनसूरिमिः ।”

आपके कर कमलों से प्रतिष्ठित मूर्तियाँ आज भी अनेक नगरों में बड़ी सख्या में प्राप्त हैं ।



† आपको जिनोदयसूरि न आचार्य पद प्रदान किया था ।

† सागरचन्द्राचार्य ने जेसलमेर के चिन्तामणि पार्षनाथ के मन्दिर में श्रीजिनराजसूरि के आदेश से सं० १४३६ में जिन विश्व की स्थापना की थी—

नवेपुषार्थीन्दुमितेय वस्सरे निदेशत श्रीजिनराजसूरेः ।

अस्थापयन् गर्भग्रहेत्र धिम्बं, मुनीश्वरा सागरचन्द्रसारा ॥

जेसलमेर का तरकालीन राजा कश्मकदेव राजसूय सागरचन्द्राचार्य का बहुत बड़ा परासक और भक्त था जैसा कि निम्नलिखित पद्य से जाना जाता है—

गाभीर्यवशात्परमोदकत्वाद्धार य सागरचन्द्रकक्षमीम् ।

युक्त स भेजे तदिदं कृतज्ञः सूरीश्वरान् सागरचन्द्रपादान् ॥

## आचार्य जिनमद्रसूरि

आचार्य जिनराजसूरि के पद पर आचार्य श्रीजिनवर्धन को सागरचन्द्राचार्य न स्थापित किया था, किन्तु उन पर देवी प्रकोप होगया था। अतः गच्छ की उभति क निमित्त उनको (जिनवर्धन को) पद से उतार कर सं० १४७५ में श्रीजिनमद्रसूरि को स्थापित किया गया।

आप श्रीजिनराजसूरि की शिष्य थे। श्रीगुरुदेव ने ही आपको बाघक शीलचन्द्रादि क निकट विद्याध्ययन के लिये रख छोड़ा था। आपने सम्पूर्ण सिद्धान्त-शास्त्रों क अध्ययन किया था। आप मणशाली गोत्रीय थे। सं० १४४६ में वैत्र शुक्ला\* पक्षी को आर्द्रा नक्षत्र में आपका जन्म हुआ था। मद्रो आपका जन्म नाम था। सं० १४६१ में आपने दीक्षा ग्रहण की थी। सब आपकी पचीस<sup>†</sup> वर्ष की आयु हुई, तब आपको सर्व प्रकार से योग्य समझकर श्रीसागरचन्द्राचार्यकी ने सं० १४७५ माघ सुदि पूर्णिमा बुधवार को सात भकर अक्षरों को मिलाकर, मणसासिक नाम्हा शाह करित नदि महोत्सव पूर्वक आचार्यपद पर स्थापित किया था। इस महोत्सव में सवाहास्य रूपसे व्यय हुये थे। वे सात भकर ये हैं—१ माखसोलनगर, २ माखसालिक गोत्र, ३ माखी नाम, ४ मरखी नक्षत्र, ५ मद्रा करण, ६ मद्रारक पद और ७ जिनमद्रसूरि नाम।

आपने बेसलमेर, बाकोर, देवगिरि, नगोर, पटख, माण्डवगढ़, आश्रमपट्टी, कर्णावती, खम्मात आदि स्थानों पर हजारों प्राचीन और नवीन ग्रन्थ लिखवाकर मण्डारों में सुरक्षित किये; किन्तु लिये केवल तीन समाख ही नहीं, किन्तु सारा साहित्य संसार भी बिरकृत है। आपने आपू, गिरनार और बेसलमेर के मन्दिरों की प्रतिष्ठा भी की थी। आपने जिन विम्बों की प्रतिष्ठा प्रचुर-परिमाण में की थी, उनमें से सैंकड़ों अब भी विद्यमान हैं।

श्री मातृप्रमाचार्य और श्रीशिरिस्ताचार्य को आपने ही आचार्य पद से अलंकृत किया था। सं० १५१४ मिगतिर बदि नवमी के दिन कुम्मसमेर में आपका स्वर्गवास हुआ।

जिनमद्रसूरि पञ्चमिषेक रास से निम्न शतों बानी जाती हैं :—

भरतखंड के मेवाड़देश में देतलपुर नामका नगर है। वहाँ लखपति राजा के राज्य में ससुद्धि शाली द्वाबहड गोत्रिय भण्टि श्रीशिंग नामक व्यबहारी निवास करता था। उसकी शीलादि विभूषिता सती स्त्री का नाम खेकलदेवी था। इनकी रत्नगर्भा कुवि से रामबाहुमर ने जन्म लिया, वे असाधारण रूप शुभ सम्पन्न थे।

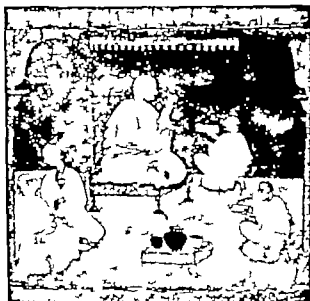
† २० अयसोमीय शुक्लपंचम में द्वाबहडगोत्रीय सा० पाण्डक मार्ग सेवकदे का पुत्र जन्मा है।

\* N P कृष्णा। † वही १२ वय। N P श्रीशिंग

भाषार्थ भी विनम्रमूर्ति जी की हस्तलिपि ( पृष्ठ १८८ )



विद्यापद युग मयाल विनम्रमूर्ति जी ( पृष्ठ १६० )



आचार्य दिनराजसूरी जी (द्वितीय) (वृष्ट १९६)  
 (आचार्य विद्यमानता में ही मं १९८१ में शालिवाहन चित्रित पद्मा शालिमन् आचार्य से)



महोपाध्याय दामोदरदास जी

एक बार जिनराजधरिजी उम नगर में पधारे । रामखड्गमार के हृदय में आचार्यजी के उपदेशों से वैराग्य परिपूर्णा रूप से जागृत हो गया । कुमार ने अपनी मातुभी से दीक्षा के लिये आज्ञा माँगी । माता ने अनेक प्रकार क प्रलोमन दिये—मिषत की, पर वह व्यर्थ हुई । अन्त में खेच्छानुमार आज्ञा प्राप्त कर ही ली । समारोहपूर्वक दीक्षा की तैयारियां हुई । शुभ मूर्हत में जिनराजधरि ने रामखड्गमार को दीक्षा देकर कीर्तिसागर नाम रखा । धरिजी ने समस्त शास्त्रों का अध्ययन करने के लिये उन्हें शीलचन्द्र गुरु को माँगा । उनके पास इन्होंने विद्योपयन किया ।

चन्द्रगन्ध शृङ्गार आचार्य सागरचन्द्रधरि ने गच्छाधिपति भीजिनराजधरिजी क पत्र पर कीर्ति सागरजी को बैठना ठीक किया । माखसठलीपुर में साहुकार नालिग रहते थे, जिनक पिता अ नाम सहुदा और माता का नाम आरथि था । सीलादेवी के भरतार नान्दिगशाह ने सर्वत्र हु हुम पत्रिका भेजी । बाहर से सप्त विशाल रूप में आने लगा । स० १७७५ में शुभ मूर्हत क समय सागरचन्द्रधरि ने कीर्तिसागर मुनि को धरिपद पर प्रतिष्ठित किया । नान्दिगशाह ने बड़े समारोह स पट्टामिपेक उत्सव मनाया । नाना प्रकार के यागिन्न बजाये गये और याचकों को मनोवांक्षित—दान दकर संतुष्ट किया गया ।

### आचार्य जिनचन्द्रसूरि

स० १४८७ में जमलमेर निवासी चम्मगोत्रीय साह बच्छराज क घर इनका जन्म हुआ । बाल्यादेवी इनकी माता थी । स० १४६२ में ये दीक्षित हुए । आपका सन्म नाम करया और दीक्षा नाम कनकचक्र था । स० १५१५ ज्येष्ठ षदि<sup>१</sup> द्वितीया क दिन कुम्भनरु निवासी पृरुड गौरदा गोत्रीय साह समरसिंह कृत नदि महोत्सव में श्रीकीर्तिरत्नाचार्य ने पदस्याग्ना की । तदनन्तर आपुंदाबस पर नवकण्या पारर्चनाय क प्रतिष्ठापक तथा श्री धर्मरत्नधरि आदि अनेक मुनिपों को आप आचार्यपद प्रदान करन बाल आर मिन्ध, सीराष्ट्र, मालव आदि देशों में बिदार करन बाने श्रीजिनचन्द्रधरिजी स० १५३० में जमलमेर में स्वर्गशाना हुए ।



## आचार्य जिनसमुद्रसूरि

ये बाइबलमेर निवासी पारखगोत्रीय देकोमाह के पुत्र थे। देवलदेवी इनकी माता का नाम था। सं० १५०६ में इनका जन्म हुआ और सं० १५२१ में दीक्षा इनने ग्रहण की। दीक्षा नन्द महोत्सव पुष्पपुर में मण्डप दुर्ग के निवासी श्रीमत्स बंशीय सोनपाल ने किया था। दीक्षा नाम कुसुमवर्धन था। सं० १५३३ माघ शुद्ध त्रयोदशी के दिनस जेठलमेर में, सचपति श्रीमत्स बंशीय सोनपाल कृत नन्दिमहोत्सव में श्रीजिनसमुद्रसूरिजी ने अपने हाथ से पद स्थापना की थी। ये पंच-नदी के सोमयज्ञ आदि के साधक थे। सं० १५३६ में जेठलमेर के अष्टापद प्रताप में आपने प्रतिष्ठा की थी। परम पवित्र आरिश के पालक आचार्यभी का सं० १५५५। मिगसर वदि १४ को अहमदाबाद में देवलोक हुआ।

## आचार्य जिनईससूरि

इनके परचाङ्ग गच्छनायक श्रीजिनसमुद्रसूरिजी हुये। सेत्रावा नामक ग्राम में घोषड़ा गोत्रीय साह मेघराज इनके पिता और श्रीजिनसमुद्रसूरिजी की बहिन कमलादेवी माता थी। सं० १५२४ में इनका जन्म हुआ था। आपका जन्म नाम धनराज और धर्मरग दीक्षा का नाम था तथा सं० १५३५ में बिक्रमपुर में दीक्षा ली थी। सं० १५५५ में अहमदाबाद नगर में आचार्य पद स्थापना हुई। तदनन्तर सं० १५५६ ज्येष्ठ शुद्ध नवमी के दिन रोहिणी नक्षत्र में श्रीबीकनेर नगर में पौडिधरा गोत्रीय करमसी मन्त्री ने पीरोभी लाख रुपया व्यय करके पुनः आपका पद महोत्सव किया और उसी समय शान्तिसगराचार्य ने आपको धर्ममंत्र प्रदान किया। वहीं नमिनाथ चैत्य में विम्बों की प्रतिष्ठा करवाई। तदनन्तर एक बार आगरा निवासी सचमी हुँगरसी, मेघराज, पौमदच प्रहल संघ का आग्रह पूर्वक बुलाने पर आप आगरा नगर गये, उस समय बादशाह के भेजे हुये हाथी, घोड़े, पालकरी, बाजे, ध्वज, खँवर आदि के आहम्बर स आपका प्रवेशोत्सव कराया गया; जिसमें गुरुमक्ति, सचमक्ति आदि धर्म में दो लाख रुपये व्यर्थ हुये थे। जुगलखोरो की घचना के अनुसार बादशाह ने आपको बुलाकर धनलपुर में रचित कर चमत्कार दिखाने को कहा। तब आचार्य ने दैविक-शक्ति से बादशाह का मनोरंजन करके पाँच सौ बंदीबनों (कँदियों) को छुड़वाया और अमय घोषणा कराकर उपाध्य में पधार आये। तब सारे संघ को बड़ा हर्ष हुआ। तदनन्तर अलि-शय सौभाग्यपत्नी, सोनों नगरी में तीन प्रतिष्ठाकारी तथा अनेक सचपति-प्रमुखपद स्थापन श्रीगुरुनेर पाटन नगर में तीन दिन अनशन करके सं० १५८२ में स्वर्गवासी हुये।

## आचार्य जिनमाखिन्धरसूरि

अपन पद पर उन्होंने भी जिनमाखिन्धरसूरिजी को स्थापित किया। इनका जन्म सं १५४६ में कुरुक्षेत्र चोपड़ा गोत्रीय साह राठलदेव की बर्मा पत्नी रमणा देवी \* की कुची से हुआ। जन्म नाम सारग था। सं १५६० में बीकानेर में म्यारह वर्ष की आयु में आपने आचार्य जिनहस के पास दीक्षा ग्रहण की। इनकी विद्वत्ता और योग्यता देखकर गण्डनायक भी जिनहससूरि से स्वयं सं १५८२ (माघ शुक्ल ५) माघपद बदि † त्रयोदशी को पाटण में शाह देवराजकुंड नंदि परोत्सव पूर्वक आचार्य पद प्रदान कर के पद पर स्थापन किया। आपने गुर्जर, पूर्व देश, सिंध और मारवाड़ आदि देशों में पर्यटन किया। पंच नदी ‡ का साधन किया। सं १५६३ माघ शुक्ल प्रतिपदा गुरुवार को बीकानेर निवासी मंत्री कर्मसिंह के बनवाये हुये भी नमिनाय के मंदिर की प्रतिष्ठा की। कुछ वर्ष तक आप जेसलमेर बिराज। उस समय गण्ड के साधुओं में शिष्यलाभार गइ गया था। प्रतिमोत्यापक मत का बहुत प्रसार हो रहा था। परि इ त्याग कर क्रियोद्धार करने की तीव्र उत्कण्ठों आपके हृदय में जागृत हुई। बीकानेर निवासी बण्डावत संग्रामसिंह ने गण्ड की रक्षा के लिये आपको बुलवाया। आपने माघ से क्रियोद्धार करके वहाँ से पहिले देराठर नगर को जाकर दादा भी जिनकुराकसूरिजी की यात्रा के परचात् क्रियोद्धार करने का संकल्प किया। आपने इस निश्चय के अनुसार आप पहिले देराठर गुरु-यात्रार्थ पधारे। वहाँ गुरु-दर्शन करके वसलमेर की ओर जाते समय मार्ग में जल के अभाव के कारण पिपासा परीसह उत्पन्न हुआ। रात्रि में थोड़ा सा जल मिला। मकों की आपसे उस थोड़े से जल को पीकर पिपासा शान्त कर लेने की प्रार्थना पर आपने चढ़ता से उठर दिया कि इतने बपों तक पालन किये हुये चतुर्विंशवार मय को क्या आज एक दिन में मग कर दू ? यह कर्मी नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार हम निश्चयों द्वारा मत मङ्गल न करके स्वयं अनशन द्वारा सं १६१२ आपाद शुक्ल पंचमी को देह त्याग कर स्वर्ग पधारे।

\* ज. च. साहजवालाजी की पट्टावली में माता-पता का नाम शाह जीवराज और पधारेकी लिखा है।

† समय भाद्रपद सुदी ६

‡ महोपाध्याय पुस्तकसंग्रह स्थित पंच नदी साधना गीत के अनुसार सं. १३३३ आषाढ मानी १३३३ को पंच नदी साधन की।

## आचार्य जिनचन्द्रसूरि

सुमप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि के पिता रीहङ्गोत्रीय साह भीमत थे, जो तिनरीनगर के निष्कम्प बहलीगाँव में रहते थे। माता श्रीविरियादेवी की कुमि से स० १५६८ में आपका जन्म हुआ और स० १६०४ में करल ६ वर्ष की अवस्था में ही, पूर्व-पवित्र संस्कारों क द्वारा तीव्र वैराग्य उत्पन्न होने के कारण दीक्षा ग्रहण करली। आपके दीक्षा गुरु श्रीजिनमाखिक्यसूरिजी थे। आपके पूर्व नाम सुलतान कुमार था और दीक्षा नाम था सुमतिवीर। आचार्य जिनमाखिक्यसूरि का देराठर से खेसलमेर आते हुये मार्ग में ही स्वर्गवास हो गया था। अतः स० १६१२ माघपद शुक्ल ६ गुरुवार को खेसलमेर नगर में राठल मासदेव द्वारा कारित नदिमहोत्सव पूर्वक आपको आचार्य पद प्रदान कर, जिनचन्द्रसूरि नाम प्रख्यात कर श्रीजिनमाखिक्यसूरि का पङ्कधर (गच्छनायक) घोषित किया गया। यह काम बेगड़गण्ड (गच्छनायक की ही एक शाखा) के आचार्य श्रीपूज्य गुणप्रम सरित्री के हाथों से हुआ। उसी दिन रात्रि में श्रीजिनमाखिक्यसूरिजी ने प्रकृत होकर समयसरर पुस्तक और जिनआम्नाय सहित छरिमत्र पत्र श्रीजिनचन्द्रसूरिजी को दिखाया। आपका विषय सबै बातना से बानिध था। गच्छ में शिषिसाधार देखकर आप सब परिग्रह का त्याग करने मत्री संज्ञाम सिंह तथा मत्रिपुत्र कर्मचन्द्र के आग्रह से बीकानेर पचारे। वहाँ का प्राचीन उपाभय शिषिसाधार पतियों द्वारा रोका हुआ देखकर मत्री ने अपनी अग्रशाला में ही आपका वात्तुमाँघ कराया और बड़ी मक्ति प्रदर्शित की। वह स्थान आग्रकल रांगड़ी चौक में बड़ा उपाभय क नाम से प्रसिद्ध है।

गच्छ में फैले हुये शिषिसाधार को देखकर आप सहम गये। जिस आत्म-सिद्धि के उदरय से पारित्र-धर्म का वेश ग्रहण किया गया; उस आदरा का ययावत् पालन न करना सोइवञ्चना ही ही नहीं, अपितु आत्मबञ्चना भी है। गच्छ का उदार करने के लिये गच्छनायक को क्रिदा उदार करना अनिवार्य है-इत्यादि विचारों क साथ ही आपका हृदय में क्रियोदार की प्रबल भावना उत्पन्न हुई। उदतुच्छ स० १६१४ चैत्र कृष्ण सप्तमी को आपने क्रियोदार किया। उसी दिवस प्रथम शिष्य रीहङ्गोत्रीय प० सकलचन्द्रगर्ब की दीक्षा हुई। तदनंतर स्वममान सहाचारी स्वधर्मपरायण साधुओं क साथ वहाँ स बिदार करक मार्ग में स्थान-स्थान पर प्रतिमोत्थापक मत का उच्छेदपूर्क एगमाचारी की दृढ़ता स स्थापना करते हुये ग्रम से गुर्वरदश में आय। वहाँ अहमदानाद में कटड़ी के व्यापारी, मिष्यात्वकुल में उत्पन्न हुए प्रग्नाट क्षाति के शिवा सोमजी नामक दो भार्यों को प्रतिशोध देकर सङ्कुम्भ भावक बनाया। स० १६१७ में पाटश में जिस समय तपगच्छीय प्रखर विद्वान् क्रिन्तु कदाप्रही उपाध्याय धमसागरजी ने गच्छ विद्वेषों का सघपात किया, उस समय आचार्यजी ने उसको शास्त्रार्थ के लिये आह्वान किया, क्रिन्तु उसके न आने पर तत्कालीन अन्य समस्त गच्छों के आचार्यों के समक्ष धर्मसागरजी को उत्सृज्यवादी घोषित किया। इतने पर भी वह

हृदय से विरत नहीं हुआ। फिर उसके भ्रम को—नवाङ्गी—वृषिकार भीष्ममयदेवसूरिजी खरतर गन्ध में नहीं हुये—दूर करने के लिये आपने चौरासी गन्ध के आचार्यों के सामने सिद्ध कर दिया कि भीष्ममयदेवसूरि खरतरगन्धीय ही थे; जो सब ने एकमत होकर, पत्र पर हस्ताक्षर कर लोकर किया।

एक समय उत्कालीन सम्राट अक्षर के आमंत्रण से आप लुम्बास स विहार कर स० १६४८ फाल्गुन शुक्ला द्वादशी के दिवस महोपाध्याय जयसोम, वाचनाचार्य कनकसोम, वाचक रत्ननिधान और पं गुरुबिनय प्रभृति ३१ साधुओं के परिवार सहित लाहौर में सम्राट से मिले। स्वकीय उपदेशों से सम्राट को प्रभावित कर आपन तीर्थों की रक्षा एवं अहिंसा प्रचार क लिये आपादी अष्टाङ्गिका एवं स्वम्भतीर्थीय वसुधर रक्षक आदि कई फरमान प्राप्त किये थे। सम्राट ने पंच नदी के तीरों के साधन प्रसंग से बिदोष समस्तुत हो सूरिजी को भी साधन करने के लिये शर्मना का थी। सम्राट के कथन एवं संप की उत्पत्ति क हेतु सूरिजी ने पंच नदी साधन करने का विचार किया। उस प्रसंग की अनुकूलता प्राप्त कर आपने वहाँ से विहार किया। ग्रामानुग्राम में धर्म प्रचार करत हुये सभ के साथ मुलतान पधारे। आपका आगमन सुनकर नगर के सारे लोगों ने जिनमें खान, मल्लिक और शेख आदि भी थे—आपके दर्शन से इतित होकर बड़ी घूम—घाम से नगर प्रवेशोत्सव किया। इस प्रकाश में आपको सम्राट की आज्ञा से सर्वत्र अनुकूलता रही। अमय दान आदि धर्मकर्मों का अन्धा प्रचार हुआ। सं १६४२ में पंच नदी साधन की। सिन्ध देश और पञ्जाब प्रान्त में आपकी प्रशस्त कीर्ति फैली तथा जैन धर्म की उत्पत्ति और महती वृद्धि हुई।

आपके सामयिक अनन्त समस्तकारों से प्रभावित होकर स्वयं सम्राट् ने सं १६४६ फाल्गुन वदि ब्रह्मी के दिवस आपका युगप्रधान पद से अलंकृत किया। इस विशाल महोत्सव में महामंत्री भी कर्मचन्द्र बख्शवत ने एक करोड़ रुपये व्यय किये थे। एक समय सम्राट् सहांगीर न मर सिद्धिचन्द्र नामक व्यक्ति को अन्तपुर में दूषित कर्ष्य करत देखकर, कृपित होकर समय जैन साधुओं को बंद करने तथा राज्य सीमा से पाहिर करने का हुक्म निकाल दिया था, तब जैन शासन की रक्षा के निमित्त आचार्य भी ने शूद्रावस्था में भी आगरा पधार कर सम्राट् सहांगीर ( जो उनको अपना गुरु मानता था ) को समझाकर इस हुक्म को रद्द करवाया।

आप जैसे प्रकथित विद्वान् थे, जैसे ही दुर्द्वर्ष चारित्र्य का पालन काने में भी अग्रगण्य थे। आचार्य पद प्राप्त करने के पद ही क्रियोद्वार फरक दृढता के साथ उत्कृष्ट संयम पालने में आप सर्वदा कटिबद्ध रहे। उत्कृष्ट चारित्र्य का प्रभाव उचरोचर वृद्धिगत हो रहा। फलतः आपके उपदेशों से असंख्य मन्प्राप्तियों ने सर्वत्र चारित्र्यधर्म और सैद्ध्यों ने देश भरति प्रत ग्रहण किये और हजारों अन्य लिखवा कर अतुल्य को विरस्यायी किया। सैद्ध्यों नवीन जिनप्रासाद और जिनविमों की

प्रतिष्ठण की। आप के उपदेशों से धार्मिक सप्त क्षेत्रों में करोड़ों रुपये वितरस किये गये। आपके चरित्रमय के सेजोमय प्रताप से ही सम्राट अकबर और बहांगीर आदि सुख हो गए थे। यही कारण था कि कठिन से कठिन कार्य भी अनायास सफल हो सके थे। इस प्रकार दीक्षा के बाद स ही ६६ वर्षों के अतिरिक्त परिश्रम से जैनशासन का सुदृढ़ प्रचार करके सं० १६७० आश्विन कृष्ण द्वितीया की विंशत्या गौरी में आपका स्वर्गवास हुआ था। महामंत्री कर्मचंद्र बच्छवत और अहम दाबद के प्रसिद्ध श्रेष्ठी संघपति श्री सोमजी शिवा आदि आपके प्रमुख उपासक थे।



### आचार्य जिनसिंहसूरि

आचार्य जिनसिंहसूरि युगप्रधान जिनचंद्रसूरि के पड़वर थे और साथ ही वे एक असाधारण प्रतिभाशाली पिद्वान्। इनका जन्म वि० सं० १६१५ के मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा की खेतासरा ग्राम निवासी घोषडा गोत्रीय शाह चांपसी की धर्मरत्नी भीचाम्बलदेवी की रत्नकृषि से हुआ था। आपका जन्म नाम मानसिंह था। सं० १६२३ में आचार्य जिनचंद्रसूरि खेतासर पचारे थे, उन आचार्यभी के उपदेशों से प्रभावित होकर एक बैरत्य वासित होकर आठ वर्ष की अम्पायु में ही अपने आचार्यभी के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षावस्था का नाम महिमराज रखा गया था। आचार्यभी ने सं० १६४० माघ शुक्ला ५ की खेतासमेर में आपको बाचक पद प्रदान किया था। 'जिनचन्द्रसूरि अकबर प्रतिबोध रास' के अनुसार सम्राट अकबर क आमंत्रण को स्वीकार कर सूरिजी ने बाचक महिमराज को गण्धि समयसुन्दर आदि ६ साधुओं के साथ अपने से पूर्व ही लाहोर भेजा था। वहां सम्राट् आपसे मिलकर अत्यधिक प्रसन्न हुआ था। सम्राट के पुत्र शाहजहा सलीम (बहांगीर) सुरनाथ के एक पुत्री मूल नक्षत्र के प्रथम चरण में उत्पन्न हुई थी; जो अत्यन्त अनिष्टकारी थी। इस अनिष्ट का परिहार करने के लिये सम्राट की इच्छानुसार सन्वत् १६४८ चैत्र शुक्ला पूर्णिमा की महिमराजजी ने अष्टोचरी शान्तिरत्नात्र करवाया, जिसमें लगभग एक लक्ष कथा व्यप हुआ था और जिसकी पूजा की पूर्णाहुति (आरती) के समय शाहजहा ने १०००० रुपये चढ़ाये थे।

करमीर विजय यात्रा के समय सम्राट की इच्छा को मान देते हुये आचार्यभी ने बाचक महिमराज को हर्षविशाल आदि मुनियों के साथ करमीर भेजा था। उस प्रवास में बाचक महिमराज की अर्बुकीय उत्कृष्ट साधुता और प्रासंगिक एवं मार्मिक चर्चाओं से अकबर अत्यधिक

प्रभावित हुआ। उसी का फल था कि बाघक भी श्री अमितापालुसार गजनी, गोलकुण्डा और कापुल पर्यन्त अमारि (अमयदान) उषोपखा करवाई और मार्ग में आगत अनेक स्थानों (सरोवर) के बसुवर भीनों की रक्षा कराई। काश्मीर विजय के पश्चात् भीनगर में सम्राट को उपदेश देकर आठ दिन की अमारी उषोपखा कराई थी।

बाघक भी के चारित्रिक गुणों से प्रभावित होकर सम्राट् अफ़्जर ने आचार्यभी को निवेदन कर वड़े ही उत्सव के साथ आपको सन् १६४६ फरगुन कृष्णा दशमी के दिन आचार्य भी के ही कर-कमलों से आचार्य पद प्रदान करवा कर जिनसिंहधरि नाम रखवाया।

सम्राट् अर्हांगीर भी आपकी प्रतिभा से काफी प्रभावित था। यही कारण है कि अपने पिता का अनुकरण कर सम्राट् अर्हांगीर ने आपको युगप्रधान पद प्रदान किया था।

गण्डूनायक घनने के पश्चात् आपकी अल्पयुता में मेढ़वा निवासी चोपड़ा गोत्रीय शाह आशुकरब्य द्वारा शत्रुह्वय तीर्थ का सप निराला गया था।

सन् १६७४ में आपके गुणों से आकर्षित होकर आपका सहवास एवं धर्मबोध-प्राप्त करन के लिये सम्राट् अर्हांगीर ने शाही स्वागत के साथ अपने पास बुलाया था। आचार्य भी भी की कनेर से बिहार कर मेढ़वा आये थे। दुर्भाग्य बश वहीं सन् १६७४ पौष शुक्ला प्रयोदशी को आपका स्वर्गवास हो गया।



## आचार्य जिनराजसूरि

बीकानेर निवासी बोहियरा गोत्रीय श्रेष्ठी धर्मसी क पुत्र थे। इनकी माता का नाम पारसदे था। सं० १६४७ वैशाख सुदि ७ बुधवार, क्षत्रयोग, भयव नक्षत्र में इनका जन्म हुआ था। इनका जन्म नाम खैरसी था। सं० १६५६ मिंगसर सुदि १ को इनने आचार्य जिनसिंहसरि के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा नाम राजसिंह रखा गया, किन्तु बृहद् दीक्षा के पश्चात् इनका राजसमुद्र नाम रखा गया था। बृहद् दीक्षा यु० भीखिनचन्द्रसरि ने दी थी। आसाउख में उपाध्याय पद स्वयं युगप्रधानकी ने सं० १६६८ में दिया था। खैरसमेर में राठक श्रीमसिंहजी के सन्मुख आपने तपानन्दकीय सोमकिम्बयी की शास्त्रार्थ में पराजित किया था। आचार्य जिनसिंहसरि के स्वर्गवास होने पर ये सं० १६७४ फल्गुन शुक्ला सप्तमी को मेड़ठा में गवनापक आचार्य बने। इसका पद-महोत्सव मेड़ठा निवासी चौपड़ा गोत्रीय संघकी आसकरण ने किया था। पूर्वमात्यपीय श्रीहेमाचार्य ने खरिमत्र प्रदान किया था। अहमदाबाद निवासी सधपति सोमकी करित शत्रुञ्जय की खरतरबसही में सं० १६७५ वैशाख शुक्ला १३ शुक्रवार को ७०० मूर्तियों की इन्हीं ने प्रतिष्ठा की थी। खैरसमेर निवासी मण्यशास्त्री गोत्रीय संघपति वाहड करित, खैनों के प्रसिद्ध तीर्थ सौत्रवासी की प्रतिष्ठा मी सं० १६७५ मार्गशीर्ष शुक्ला १२ को इन्हीं ने की थी और इनकी की ही निभा में सं० वाहड ने शत्रुञ्जय का संघ निकाला था। माखबड पार्ष्णनाथ तीर्थ के स्थापक मी ये ही थे। आपने सं० १६७७ ज्येष्ठ बदि ५ को चौपड़ा आसकरण करापित शान्तिनाथ आदि मन्दिरों की प्रतिष्ठा की थी; और बीकानेर, अहमदाबाद आदि नगरों में श्रृयमदेव आदि मन्दिरों की प्रतिष्ठा मी की थी। कहा जाता है कि अम्बिकादेवी आपको प्रत्यक्ष थी और देवी की सहायता से ही बह्वन्वी तीर्थ में प्रकटित मूर्तियों के लेख आपने बॉये थे। आपकी प्रतिष्ठापित सैंकड़ों मूर्तियाँ आज मी उपलब्ध हैं। सं० १६६६ आपाड शुक्ला ६ को पाटख में इनका स्वर्गवास हुआ था\*। आप न्याय, सिद्धांत और साहित्य के उद्भूट विद्वान् थे। आपने स्थानाङ्ग छत्र विषम पदार्थ व्याख्या और नैपथ काव्य पर 'जैनराजी' नाम की टीका ( ३६०० श्लोक परिमाण ) आदि अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया था।

† समस्य. १६५० सि० सु० १। ‡ देखें मेरी सम्पादित प्रतिष्ठा लेख संग्रह प्रथम भाग।

\* सं० १६८६ मार्गशीर्ष शुक्ला ४ रविवार को आगरे में सम्राट् राइबर्ग से आप मिले थे और वहाँ बाद-विहार में ब्राह्मण विद्वानों को पराजित किये थे एवं स्वर्गानी लोगों के विहार का वहाँ कही प्रतिषेध वा बह शत्रुञ्जयकर शासन की बधति की थी। राजा गजसिंहजी सुरसिंहजी असरफखान आक्रम दीवान आदि आपके प्रशंसक थे।

जिनराजसूरि प्रथम के अजुसार निम्न बहनेकनीय विरोध बार्ते हैं — आपने ६ मुनिबों को उपाध्याय पद, ४१ को वाचक पद और एक साध्वी को प्रवर्तिनी पद दिये वा। ८ बार राजसुख की आभा

### आचार्य जिनरत्नधरि

आचार्य श्रीजिनराधधरि के पद पर आचार्य श्रीजिनरत्नधरि विराजे। आप सै रूपा ग्राम निवासी लूणीयागोत्रीय साह विलोकसी के पुत्र थे। आपकी माता का नाम तारादेवी था। आपका जन्म सं० १६७० में हुआ था। आपका जन्म नाम रूपचन्द था। निर्मल वैराग्य के कारण आपने अपनी माता और माई रत्नसी के साथ सं० १६८४ में दीक्षा ग्रहण की थी। आपको सोरपुर में आचार्यधी स वासधेप की पुढ़िया मंगारर उपाध्याय साधुसुन्दर ने दीक्षा प्रदान की थी। आपके गुणों से योग्यता का निर्याय कर जिनराधधरिजी ने अहमदाबाद पुलाकर आपको उपाध्याय पद प्रदान किया। इस समय बयमाल, तेजसी ने बहुतसा द्रव्य व्यय कर उत्सव किया था। सं० १७०० आपाद् झुन्ला नबमी को पाटण में आचार्य श्रीजिनराधधरि ने स्वहस्त से ही छरिमत्र प्रदान कर अपना पदधर घोषित किया था। पाटण से बिहार कर जिनरत्नधरिजी पाण्डुपुर पधारे। वहाँ संघ ने इर्षित हो उत्सव किया। वहाँ से स्वर्णगिरि क संघ क आप्रह स वहाँ पधारे। थ्रेण्टि पीधे ने प्रवेशोत्सव किया। वहाँ से मरुधर में बिहार करते हुये संघ के आप्रह से श्रीकनेर पधारे, नयमल बेणे ने बहुतसा द्रव्य व्यय करक प्रवेश उत्सव किया। वहाँ से उग्र बिहार करत हुये सं० १७०१ का वीरमपुर में संपाप्रह से पान्तुर्मास किया।

† आपकी दीक्षा-आचार्य पद क सम्प्राप्य में सं० १७०२ जिन पत्र में लिखा है —

“श्री सैरूपा नगर निवासी लूणिया सा० पिता विलोकसी माता सावकी तारादे अतः सगी तेजसदेना पुत्र थे। बड़ा नब नाम रत्नसी अपने लहुबा नब नाम रूपचन्द। सुखे सम पे रहतां म० श्रीजिनराधधरि श्रीकनेर आचार्य। विहा पिता परोक्ष पयो पखे माता तेजसदे अइ बइराण बननइ। ये वेडा साथे लई श्री श्रीकनेर आसी। श्रीपूज्यजी ने बीनक्या-मुम्नइ येडा सहित दीक्षा थी। तियारइ भीपूज्यजी काम माणी माता तेजसदे अनइ रत्नसी वरस १६ ना था-वेऊं ने दीक्षा पीपी। कपुरपप माई रूपचन्द ८ वरस ना था ते गृहस्थ पयो भाब आरिशीयक हरि रामया। गृहस्थाने परे बीम अनइ भणै गुणै। तियारइ ××× विमलकीर्ति गणिय ××× नहम्पाकरक काव्य ××× आदि मणाय्या। ××× काशोर में विजयदेवसुरि क सम्मुदा १९ वर्ष की अवस्था में इ कगटा तक पारा प्रवाह संभूज बोक्तते इंस बनन कदा था कि “आपके पाट के अत्यधिक योग्य होगा। ××× सं० १६ ४ वै० गु० ३ का १४ वर्ष की अवस्था में सोरपुर में आरको दीक्षा की गई। दीक्षोत्सव मखरात्री गोश्रीय मत्रि ता० सहसकरण सुग मंत्रि जनमन्त के किया था। ××× दीक्षा परपान्तु पावर्मीपन के लिये कडाई विगय का त्याग कर दिया था। ××× इरीणा जिनराधधरि जी ने देवर रत्नसोम नाम रखा।

की। पाटण के संघ के साथ गौड़ी पारवनाय, गिरनार आपू रम्यधरु की यात्रा का। पानी के देरामर के अत्र-व्यह की प्रतिष्ठा की। नवानगर क पान्तुर्मास के समय में दोही मापक आदि ने ३६०० जम साइ व्यय की। आगरे में १६ वर्ष की अवस्था में ‘विष्णामणि’ शास का पूण अध्ययन किया। पानी में प्रतिष्ठा की। राजन कल्याणशास और रायकुंवर मनोहरशास क आमन्त्रण से पान्त्तु देवमेर पधारे संवकी वादक ने प्रवेशोत्सव किया। आपके शिष्य-प्रशिष्यों की संख्या ४१ थी।



चातुर्मास समाप्त होते ही सं० १७०२ में वाङ्मर आये। सभ क आग्रह से चातुर्मास बर्ही किया। वहाँ से बिहार कर सं० १७०३ का चातुर्मास कोटङ्क में किया। चातुर्मास समाप्त होने पर वहाँ से जेसलमेर के आग्रहों के आग्रह से जेसलमेर आये। साह गोपा ने प्रवेशोत्सव किया। सभ क आग्रह से सं० १७०४ से १७०७ तक के चार चातुर्मास आपने जेसलमेर ही किये। वहाँ से आगरा आये। मानसिंह ने बेगम की आज्ञा प्राप्त कर छरिबी का प्रवेशोत्सव बड़े समारोह से किया। सं० १७०८ से १७११ चार चातुर्मास आगरा में ही किये। आप छुद्र किया-भारित्र के अम्पली थे। आपने अनेक नगरों में बिहार करके वैन सिद्धान्तों का प्रचार, प्रसार किया और सं० १७११ आनन्द कृष्ण सप्तमी के दिन आगरा में आप देवलोक पवारे। अन्त्येष्टि किया के स्थान पर भीसंघ ने स्तूप-निर्माण करवाया था।



### आचार्य जिनचन्द्रसूरि

उनक बाद आचार्य भीमिनचन्द्रछरि उनके पट्ट पर आसीन हुये। आपके पिता का नाम बीकानेर निवासी गणेशर खोपड़ा गोत्रीय साह सहस्रकिरब और माता का नाम सुपियार देवी था। आपका जन्म नाम हेमराज तथा दीपा नाम ईर्षलाम था। १२ वर्ष की अवस्था में आपने जेसलमेर में दीपा ग्रहण की थी। सं० १७११ माद्रपद कृष्ण सप्तमी को राजनमर में नाहटा गोत्रीय साह जयमल्ल ठेकसी की माता कस्तूरबाई का महोत्सव द्वारा आपकी पद स्थापना हुई। गन्ध में किया शैविष्य देखकर सं० १७१८ आषोढ सुदि १० सोमवार को बीकानेर में स्वस्था-पत्र द्वारा शैविष्य का त्याग करवाया था। तदनन्तर आपने बोधपुर निवासी साह मनोहरदास द्वारा करित भीसंघ के साथ श्री शत्रुघ्नय यन्त्रा की और मडोबर नामक नगर में संघपति मनोहरदास द्वारा करित शैत्यमङ्गल में श्रीश्यामदेव आदि चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिष्ठा की थी। इस प्रकार अनेक देशों में विचारण करने वाले, सब सिद्धान्तों क पारदर्शी भीमिनचन्द्रछरि सं० १७१३ में छरत-बन्दर में देवलोक हुये।



### आचार्य जिनसुखसूरि

आचार्य जिनचन्द्र के बाद भीमिनसुखछरि पट्ट पर गिराये। ये कोमपचन निवासी साह सेषा बोहरा गोत्रीय साह रूपसी के पुत्र थे। इनकी माता का नाम सुक्या था। इनका जन्म सं० १७३६ मार्गशीर्ष शुक्ल १५ को हुआ था। सं० १७५१ की माघ सुदि पंचमी को आपने

\* पिता रूपचन्द माता रतमादे।

पुष्पपालसर ग्राम में दीक्षा ग्रहण की। आपका दीक्षा नाम मुखकोर्ति था। सरत निवासी चौपड़ा गोश्रीय पारस्य सामीदास ने ग्यारह हजार रुपये व्यय करके सं० १७६३ आपका सुदि एकदशी के दिन आपका पञ्च महोत्सव किया था।

फिर एक समय घोषाबिंदर में नवलखड़ा पात्रनाथ की यात्रा करके आचार्य भीजिनमुखहरि सप्त के साथ स्तंभतीर्थ जाने के लिये नाब में बैठे। देवगति से ज्यों ही नाब समुद्र क बीच में पहुँची कि उसके नीचे की लकड़ी टूट गई। ऐसी अवस्था में नाब को खल से मारती हुई देखकर आचार्यभी ने अपने इष्ट देव की आराधना की। तब भीजिनकुशलहरि की सहायता से एकएक उसी समय एक नवीन नौका दिखाई दी। उसके द्वारा वे समुद्र क पार जा सके। फिर वह वहीं अचरय हो गई। इष्ट प्रकार श्री शंखुजय आदि तीर्थों की यात्रा करने वाले सब शास्त्रों के पारगामी तथा शास्त्रार्थ में अनेक बादियों को परास्त करने वाले आचार्य भीजिनमुखहरि तीन दिन का अनशन पूर्ण कर सं० १७८० ज्येष्ठ कृष्णा दशमी को भीरिखी नगर में स्वर्ग सिंघारे। उस समय देशों ने अचरय रूप में बाझे धजाये; जिनक घोष को सुनकर उस नगर के राजा तथा सारी प्रजा चकित हो गई था। अन्त्येष्टि क्रिया के स्थान पर भीसप्त ने एक स्तुत बनाया था; जिसकी प्रतिष्ठा माय शुक्ला पत्नी को जिनमक्तिहरि ने की थी।

### आचार्य जिनमक्तिसूरि

उनके पञ्च पर भीजिनमक्तिहरि आश्रीन हुये। इनके पिता भेष्टि गोश्रीय साह हरिचन्द्र थे, जो इन्द्रपालसर नामक ग्राम के निवासी थे। इनकी माता थी हरमुखदेवी। सं० १७७० ज्येष्ठ सुदि तृतीया को आपका जन्म हुआ था। जन्म नाम आपका भीमराज था और सं० १७७६ माय शुक्ल सप्तमी को दीक्षा ग्रहण के बाद दीक्षा नाम मक्तिचैम डाला गया। सं० १७८०<sup>†</sup> ज्येष्ठ वदि तृतीया के दिन रिखीपुर में भीसप्तकृत महोत्सव करके गुरुदेव ने अपने हाथ से इन्हें पञ्च पर बैठाया था। तदनन्तर आपने अनेक देशों में विषय किया। सादड़ी आदि नगरों में विरोधियों को इस्तिबासनादि प्रकार से (†) परास्त करके विजयलक्ष्मी को प्राप्त करने वाले, सब शास्त्रों में पारंगत, भीविदास आदि सब महात्तियों की पात्रा करने वाले और श्री गूढा नगर में अत्रित्रिन चैत्य क प्रतिष्ठापक, महावेवस्वी, सकलविद्वज्जनशिरामखि आचार्य भीजिनमक्तिहरि के भीताश्रतोमो-पाध्याय, श्रीरामत्रिप्रयोपाध्याय और श्रीमोतिसागरोपाध्याय † आदि कई शिष्य हुये। आर कन्ददेश मयहन श्रीमांडवी बिंदर में सं० १८०४ में ज्येष्ठ सुदि चतुर्थी को दिवङ्गत हुये। उस रात्रि को आपके अग्नि-संस्कार की मृमि ( अनशन ) में देवों ने दीपमाला की।

## आचार्य जिनसाभसूरि

आचार्य श्रीजिनमक्तिहरि के बाद श्रीजिनसाभसूरि भी इनके निवासी बौद्धित्यरा गोत्रीय साह  
 (पायसदास के पुत्र थे। पषादेवी इनकी माता थी। आपका जन्म स० १७८४ भावसा शुक्ला  
 पंचमी को सापेठ ग्राम में हुआ था। जन्म नाम सालचन्द्र था। इनने स० १७९६ ज्येष्ठ  
 शुक्ला पष्ठी को जेसलमेर नगर में दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा नाम सप्तमीसाम रक्खा गया।  
 स० १८०४ ज्येष्ठ सुदि पंचमी को मांडवीबंदर में आपकी पद स्थापना हुई, जिसका पाठ मही-  
 त्सव काबडक गोत्रीय साह मोहराज ने किया था। तदनन्तर जेसलमेर पीछनेर आदि कई देशों  
 में विहार करके आपने स० १८१६ ज्येष्ठ वदि पंचमी को पहापर साधुओं के साथ श्रीमौडी-  
 पार्षनाथ की यात्रा की। फिर स० १८२१ फल्गुन शुक्ला प्रतिपदा को पच्यासी मुनियों के साथ

† ऐतिहासिक सैन काव्य समझ के कारकों का ऐतिहासिक सार पृष्ठ ३१ पर स० १८०४ से १८१४ का रूप  
 इस प्रकार दिया है —

स० १८०४ शुभ वहां स शुद्ध होकर १८०४ में जेसलमेर पधारे, वहां १८०८ से १० तक रहे। इसके  
 पीछे पीछनेर में ( १८१० स १८१४ तक ) ४ वर्ष रहकर स० १८१४ को वहां से विहार कर गारवदेसर  
 शहर में ( १८१४ ) चौमासा किया। वहां ८ महीने बिराजने के पश्चात् मि० व० ३ विहार कर  
 पचीमदेश को बँशाते हुये जेसलमेर में प्रवेश किया। वहां ( १८१६-१७-१८-१९ ) ४ वर्ष अस्थिति कर  
 कोइने तीर्थ में सहस्रकथा पारबैनाथकी की यात्रा की। वहां से पश्चिम की ओर विहार कर गोडीपारसव  
 की यात्रा कर गुडे ( स० १८२० ) में चौमासा किया। जतुमांस के अनन्तर शीघ्र विहार कर महेष्ट  
 प्रदेश को बँशाकर महेष्टे में कोइने पारबैनाथ की यात्रा की वहां से विहार कर जलोड में ( स० १८२१ )  
 जतुमांस किया। वहां से कोइने जारिया रहकर रोहीठ मन्डोर, जोधपुर, तिमरी होकर मेरठे  
 ( १८२३ ) पधारे। वहां ४ महीने रहकर जधपुर शहर पधारे, वह शहर क्या था मानते स्वर्ग की पृष्ठी पर  
 छत्र प्राय्य हो। वहां बच दिन की मांति और दिन पड़ी की मांति व्यतीत होते थे। जधपुर के संघ का  
 आगह होने पर भी पुण्यश्री वहां नहीं ठहरे और मेवाड़ की ओर विहार कर परा प्राप्त किया। जधपुर से १८  
 कोस पर स्थित बूलेषा में श्रद्धाश्री की यात्रा कर जधपुर ( १८२४ ) पधारे और विशेष बिनती से पत्नी-  
 बाध ( १८२५ ) पात्र बिराजे। नागौर ( का संघ ) कोष में अचरम था गंध यह जानते हुए भी साधु  
 ( अपने मन की तीव्र इच्छा से स० १८२६ ) पधारे। इस समय सूरत के पनास्यों ने योग्य व्यवसाय जानकर  
 बिनती व्रतेश और पूज्यश्री भी उस ओर विहार करने से अधिक काम काम ( १८२७ ) सूरत पधारे।

वहां के भावकों को प्रसन्न कर आप पैदा विचरते हुये ( १८२६ ) राजमगर पधारे। वहां ताल्लर  
 से बहुत बहस किये और २ वर्ष तक रात दिन सेवा की। वहां से आबक संघ के साथ शत्रु छत्र निरंतर  
 की यात्रा कर ( १८३० ) बेझावक के संघ को बँध्या। वहां से मांडवी ( १८३१ ) पधारे। वहां अनेक  
 कोट्यापीरा और कश्चिपति व्यापारी निवास करते थे। समुद्र से बन्धन व्यपार कला था। ज्योंते एक  
 वर्ष तक बंधन व्यय किया। वहां से अन्धे मुहूर्त में विहार कर मुझ ( १८३१ ) आये। वहां के संघ ने  
 की भेष्ट मक्ति थी। इस प्रकार १८ वर्ष तक नदीन-नदीन देशों में विचरे। कवि कहता है कि आप ही  
 शीघ्र पधारते। आप साधुनोसे ज्ञात होता है कि मुझ से विहार कर १८३३ का चौमासा मन्ध-  
 स० १८३४ का  
 किया और वही स्वर्ग सिधारे ( गीत सं० ४ )।

श्रीभाषूतीर्थ की यात्रा की। तदनन्तर आप चायेराज, साखड़ी नाम के दो नगरों में खोपड़ा-  
 खतसाह आदि द्वारा किये गये महोत्सव में पधारे। वहाँ बित्त करने के लिये आये हुये वित्तोच्चियों  
 का बुद्धि बल से पराजय करके अप क बाजे बजवाये। उस देश में राखपुरादि पाँच तीर्थों की  
 यात्रा करके वेनातट, मेदिनीठट, रूपनगर, नयपुर, उदयपुर आदि नगरों में भ्रमण करके  
 सं० १८२५ वैशाख शुक्ला पृथ्विमा की अठ्यासी मुनियों के साथ भीषूलेवा गढाचिष्टापक  
 (केशरियाजी) श्रृंगमदेव की यात्रा की। वहाँ से पन्तिका, सत्यपुर, राघनपुर आदि नगरों में  
 विषरख करत हुये भीमखेभर पार्श्वनाथ की यात्रा करके सेठ गुलालचन्द, सेठ मारिदास आदि  
 भीमप के आग्रह से छरतबिंदर में गय। वहाँ सं० १८२७ वैशाख सुदि द्वादशी को आदि गोश्रीय  
 साह नेमीदास के पुत्र शाह मारिदास द्वारा कारित तीन खड बाजे उचम प्रासाद-चैत्य में श्रीशिवल-  
 नाथ, सब्रह्मण्या श्रीगौडीपार्श्वनाथ आदि १८१ प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की और सं० १८२८ वैशाख  
 सुदि द्वादशी को वहाँ पर देवपर में भीमहाबीर आदि विपासी प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की। इस  
 मंदिर के प्रतिमानिर्माण और प्रतिष्ठाविधान दोनों कर्षों में तथा सब के सत्कार आदिक में  
 क्षपीस इशार रुपये व्यय हुये थे। वहाँ से मुनिसुवतस्वामी की यात्रा के लिये भृगुकन्ध (महौंच)  
 गये। वहाँ पर रात में रेवानदी क किनारे किसी योगिनी के द्वारा किये हुये बोर वृष्टि के उत्रव से  
 व्याकुल सब की विन्ता को आपने अपने इष्टदेव का प्यान करके बुर की। वहाँ से रामनगर, मावनगर  
 आदि स्थानों में बिहार करके बोघाबिंदर में नबखण्ड पार्श्वनाथ की यात्रा करके पादक्षिप्तपुर  
 (पालनपुर) गये। वहाँ से सं० १८३० माघ वदि पचमी को पचहचर मुनियों के साथ  
 श्रीशुक्राय यात्रा की। फिर सं० १८३० में जुनागढ आकर फागुन शुक्ला नवमी को १०५  
 मुनियों के साथ थीगिरिनार मण्डन नेमि-जिन की यात्रा की। तदनन्तर बेशाकुल पचन, नवा  
 नगर आदि में विषरख करके, कन्ध देश के माँहवी बिंदर में भीगुरुचरखकमलस्थापना को प्रणाम  
 करके, क्रम से उस देश में भ्रमण करके राउपुर नामक नगर में भविन्वामखि पारवनाथ की वदना  
 की और सं० १८३३ वैश वदि द्वितीया को श्री गौड़ी पार्श्वनाथ की यात्रा की। इस प्रकार परम  
 सौजन्य, सौम्य आदि अनेक सद्गुणों से सुशोभित तथा महोपकारी आचार्य श्रीजिनलाम-  
 सं० १८३४ आरिषन वदि दशमी को भी गूड़ा नगर में देवगति प्राप्त की।



## आचार्य जिनचन्द्रसूरि

आचार्य भीमिनचन्द्रसूरि बीकानेर निवासी बच्छावत मुहता रूपचन्द्र के पुत्र थे। इनकी माता का नाम केसरदेवी था। इनका जन्म सं १८०६ में कल्याणसर नामक गाँव में हुआ था। इनका मूल नाम अनूपचन्द्र था। सं १८२२ में मण्डोबर में दीक्षा हुई। तदनुसार यह दीक्षा नाम था। सं १८३४ के आरिषन वदि १३ सोमवार को शुभ लग्न में गूड़ा नगर में कृष्णा चौपड़ा गोत्रीय दोसी लखा साह कृत उत्सव में आपका सूरि परामितिक हुआ। तदनन्तर आचार्य महेशा आदि पुरों में शैत्यों की कन्दना करके, धी गौड़ी पार्वनाथ को प्रणाम करके, क्रम से बसलमेर, बीकानेर आदि नगरों में चिन्तामणि पार्वनाथादि देव-यात्रा की। बसलमेर में आवश्यक आदि की योग क्रियाएँ कीं। तदनन्तर आपने अयोध्या, कशी, चन्द्रावती, बम्पापुरी, मरुसुदाशार, सम्मतशिखर, पनापुरी, राजशुह, मियिला, द्रुताग पार्वनाथ, चण्डिकुण्ड ग्राम, कच्छदी, इस्तिनागपुर आदि की यात्रा की। उस समय पूर्वीय लखनऊ नगर में नाइटा गोत्रीय सुभाषक बच्छराज नामक राजा ने चातुर्मास ब्रह्म महोत्सव से फरामे। वहाँ बहुत पैसा हुआ प्रसिमो-त्पारक (स्नानकरासी) निहृतमार्ग का आचार्य न बढ़ी युक्ति से निराकरण किया। अनेक भद्राष्ट्रुओं को पुनः समारं में लाये। आपकी बहुत स्थाति हुई। उस नगर के समीपस्थ बगाचे में राजा ने श्री जिनकृष्णसूरि का स्तूप-निर्माण कराया। वहाँ से बिहार करके आपने श्री गिरिनार, शत्रुजय आदि तीर्थों की यात्रा की। पद्मलिप्तपुर में त्रिरोचियों के साथ बड़ा विवाद हुआ; उस में श्रीगुरुद्वय की कृपा से आपकी विजय हुई और विपक्षी लोग परास्त होकर भाग निगले। तब ही वहाँ के राजा एवं प्रजावर्ग ने आपका बहुत अधिक सम्मान किया। आचार्यभी की महिमा बतों और खुब फैल गई। एक वर्ष बाद मोरवाड़ा गाँव में एक लक्ष मनुष्यों से अधिक सख्या बसा भीसप मो अब श्री गौड़ी पार्वनाथ की यात्रा करने आया तब वहाँ के मन्त्री आदि महापुरुषों के करने पर संघ स्थित आचार्य और आपका परस्पर मेल हो गया।

इस प्रकार परम श्रीभाम्यशाली, सक्तसविष्य के मनोहर्ता, सब विद्याओं के, पाठी, संगमपुगभेष, बाष्पी से पृथ्वति की बीवने वाले, पृथ्वखरहरगण्डेतर भीमिनचन्द्रसूरि दक्षिण में अन्तरिण पार्वनाथ की यात्रा करके भी धरतन्दिर में सं १८५६ ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया की दशतोक हुये।

## भावश्यक्रीय निवेदन.—

इस ग्रन्थ का लेखन, संशोधन और सुत्रय एक मास के अत्यल्प काल में हुआ था—अतः सुत्रय दोष और कतिपय अशुद्धियों तथा त्वाद में कई पंक्तियों का झूट जाना स्वाभाविक था, जिसका परिमार्जन अनुयोगाचार्य श्री बुद्धिमुनि जी गणिव ने किया है जिसके लिये संपादक गणिवी का आभारी है। संशोधन निम्न है—

पृ० सं० पंक्ति सं०

१६	१०	ऐसा निबन्ध करके बाबनाचार्य बनाकर और
२२	६	आचार्य अमयदेव सूरि नर्बांग श्रुति रचना द्वारा मठ्य जीवों पर महान् उपकार करके सिद्धान्तोक्त विधि—पूर्वक अनुरान स्वीकार चतुर्थे वचनोक्त में गये।
२६	८	इस पर महाराज ने उस पत्र को फाड़ बाबा और एक चार्वाक श्रवण कर कहा।
३०	१	नेमिनाथ स्वामी के मंदिर व मूर्ति की सजाविधि प्रतिष्ठा की।
३१	१४	विनवस्तम गणिव जी के पास नागोर पत्र भेजा।
३१	१८, २२	सं० १६५—११६०
३८	१७	श्रीरामहृद्य = चारित्र्योपसम्पदा।
३६	१०	” ”
४१	१६	मुनिचन्द्र को उपाम्याय पदवी दी = मुनिचन्द्र जो उपाम्याय पद प्राप्तकीये।
४३	१२	त्रिमुचनसिंह के नरेरा कुमारपाल को न केवल सतुपदेरा ही दिया अपितु सतुपदेरा के प्रतिबोध दिया।
४४	०	मानचन्द्र = चर्चमानचन्द्र
४४	३	म० देवनाग निर्मापित अखिलनाथ
४२	२	अधिल श्री शीखसागर की बहिन की
४३	२३	उय मति, आसमति।
४४	६	दो मन्दिरों, बड़ी दो जिनप्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की।
४६	८	ब्रामी = सप्तमी।
७०	२०	आनुपूर्विक = अनानुपूर्विक।
७६	१४	जिनपाल गणिव = यतिनाथ।
८८	३	अमयक शंभु = शंभुमायक।
८८	१७	भरयोत्तर = भयोत्तर।
९८	६	बड़ी बूम धाम से मनाया = स्वीकार की।
९९	१	मानचन्द्र = मानमह।
१०३	४	पृथ्वीरज = पृथ्वीचन्द्र।
१०८	१८	भेठ सुरी नक्षत्री = सं० १२८६ परमराम बहि पंचमी।
१०८	२४	कन्यायाकलरा = शरदचन्द्र, कुटिलचन्द्र कन्यायाकलरा।
११२	२३	माह सुरी ६ को = माह सुरी ३ को।
११३	२०	पीला की प्रतिमा = अखिलनाथ स्वामी की प्रतिमा।
११४	८	वीधिल = वीधिल।
	१२	चित्रसमाधि = शान्तिनिधि = चित्रसमाधि, शान्तिनिधि।

- १३ तीन मंदिरों— मंदिर के एक गोले में तीन प्रतिमाओं ।  
 १७ पूर्णिमा के दिन = पूर्णिमा के दिन भिन्नपुर में ।  
 ११५ १६ निषदेव = नीषदेव सुत ।  
 २३ बिहार किया = श्री० क० १३ को बिहार किया ।  
 २५ पांच हजार = पन्द्रह सौ ।  
 २८ नौ रूपयों = नब्बे रूपयों ।  
 ११७ ५ एक सौ आठ = एक सौ साठ ।  
 १२५ १५ सेठ हेम = सेठ मोहन ।  
 १२६ १३ फरगुन महीने = फरगुन बीमासी के दिन ।  
 १२८ २२ पं० स्थिरकीर्ति गण्डि सेठ कुमारपाल के पुत्र थे ।  
 १३७ १४ चाहदच मुनि = चारुच मुनि ।  
 १३८ ३ १३०६ = १३०३ ।  
 १३९ १६ मं० मूधराज = मं० कुमरा एवं मूधराज ।  
 १४० ६ हजारों = जैबल सिक्के ३० हजार ।  
 १७ पत्रिकार्ये भेजकर = पत्रिकार्ये भेजी, प्रात कर समस्त स्थानों का भीसंध ।  
 १४४ २७ बिधि = विधि का ।  
 १४७ १६ सौ = शौक्यों ।  
 २१ ठेका = मर्का ।  
 १४८ १६ हेमव्याकराय बृहद्बृति १८००० श्लोक प्रमाय तथा न्यासमहावर्क ३६००० श्लोक प्रमाय  
 ३० इसी दिन = देवगुरु श्री आद्या का पाठक सेठ मरसिंह के पुत्र सेठ श्रीवर्द्ध के मयल से सेठ तेजपाल ।  
 १४९ ४ आदि नाना = आदि गुरुओं की तथा नाना ।  
 १५३ १२ तीर्थकर देव तीर्थ ( संघ ) को प्रणाम करके एक बोजन प्रमाय भूमि में स्पष्टया सुनाई दे सके एवं सभी प्राणिमात्र अपनी अपनी माया में समझ सके, वैसे साधारण शायों में धर्मदेवाना देते हैं ।  
 ५-६-७ अर्द्धवृत्त वही तीर्थ स्वरूप संघ में से होते हैं । अतः संघ को नमस्कार करना, पूजित पूजा यानि इन्द्रादिकर्म से पूजित तीर्थकर देवों द्वारा संघ का पूजा एवं बिनब कर्म है । यदि ऐसा न हो तो वे तीर्थकर देव कृतकृत्य होकर भी धर्मोपदेश क्यों देते हैं और तीर्थ को नमस्कार क्यों करते हैं ।  
 १५५ ५ इस अक्षर पर = आचार्य की के निरुद्धकर में रहने योग्य समस्तस्थय ( सुरिमत्र पद ) एवं आचार्य श्री  
 १५६ १६ मंगलपुर = मांगलपुर ( मांगरोल )  
 १८ मोला = मोलदेव ।  
 १५७ ८ निर्जन अक्षहाव तीन-तीन गरीबों को = समम जनता पर अक्षय आशीर्वाच्य के बनप्राप्ति का उपाय बताने से आरोपण से  
 १५८ ४ साधु राजसिंह = साधुराज धर्मसिंह  
 १८ एवं प्रतिष्ठा = एवं पंचमी को प्रतिष्ठा

२४		इसी प्रकार ख्या = इसी प्रकार शत्रु तय पर सेठ तेजसाक्षादि पसनीय विभिन्नप निर्मापित चैत्य में सा० ख्या
१६३	६	ईसी नगर में = और शम्भानयन में अपने वीणा गुरु युगप्रहरागमाचार्य श्रीजिन भन्त्रसुरि जी म० क्य अम्म महोत्सव एवं स्वयं भा० श्रीजिनकुशासुरि जी का अम्म तथा वीणा महोत्सव हुआ था।
	१०	मंत्रमण्ड = मंत्रमण्ड
	१२	गुह्य = गुह्य
	१७	बैमरगिरी = बैमारगिरी
१६४	३	सं० १३८६ = सं० १३८४
१६६	१३	बाचनाचार्य पद दिया तथा नववीरहित कुस्लक व कुस्लिकरभों की उपस्थापना की।
	२८	बहिरामपुरीय अक्षर समुदाय ने किसी चैत्य या प्रतिमा आदि की प्रतिष्ठा पूज्य जी के करकमलों से करवाई।
१६७	१	आये ये यावत् कमलामण्ड के आक्षर भी सम्मिलित थे।
	६	श्री सारबाह्य = श्रीसिद्धारबाह्य
	२२	महाराज के स्वागत केलिये सेठ भाषिग आदि कमलामण्ड के आक्षर एवं अन्य सरकारी
१७०	३	बेबराजपुर में = बेबराजपुर के बागुमस में
१७१	१३	भनवेव के पोत = भनवेव के पुत्रस्त
१७३	२४	श्रीमाल = श्रीमालपुर
१७७	८	सं० १४०४ = सं० १४००
१८७	२	सं० १४३३ = सं० १४३२
२०१	१७	( पासनपुर ) = ( पासीताना )

### स्पष्टी करब—

प्रस्तुत इतिहास में गण्डनायक आचार्य श्री के लिये आचार्य के नाम के साथ विरोपण के तौर पर प्रत्येक स्थल पर श्रीपूज्य शब्द का प्रयोग हुआ है। यह 'श्रीपूज्य' प्रयोग उपाध्याय भिनयस्त गण्डि आदि समर्थ विद्वानों ने किया है। बहुरत गण्डनायक के लिये 'श्रीपूज्य' विरोपण मुक्त ही है और साथ ही परंपरा मान्य भी है। अतः वक्त मान में इसका जिस रूप में प्रयोग होता है उस पर ध्यान न देकर भूतकालीन 'श्रीपूज्य' शब्द का गौरव समझ कर आहत करना चाहिये।







